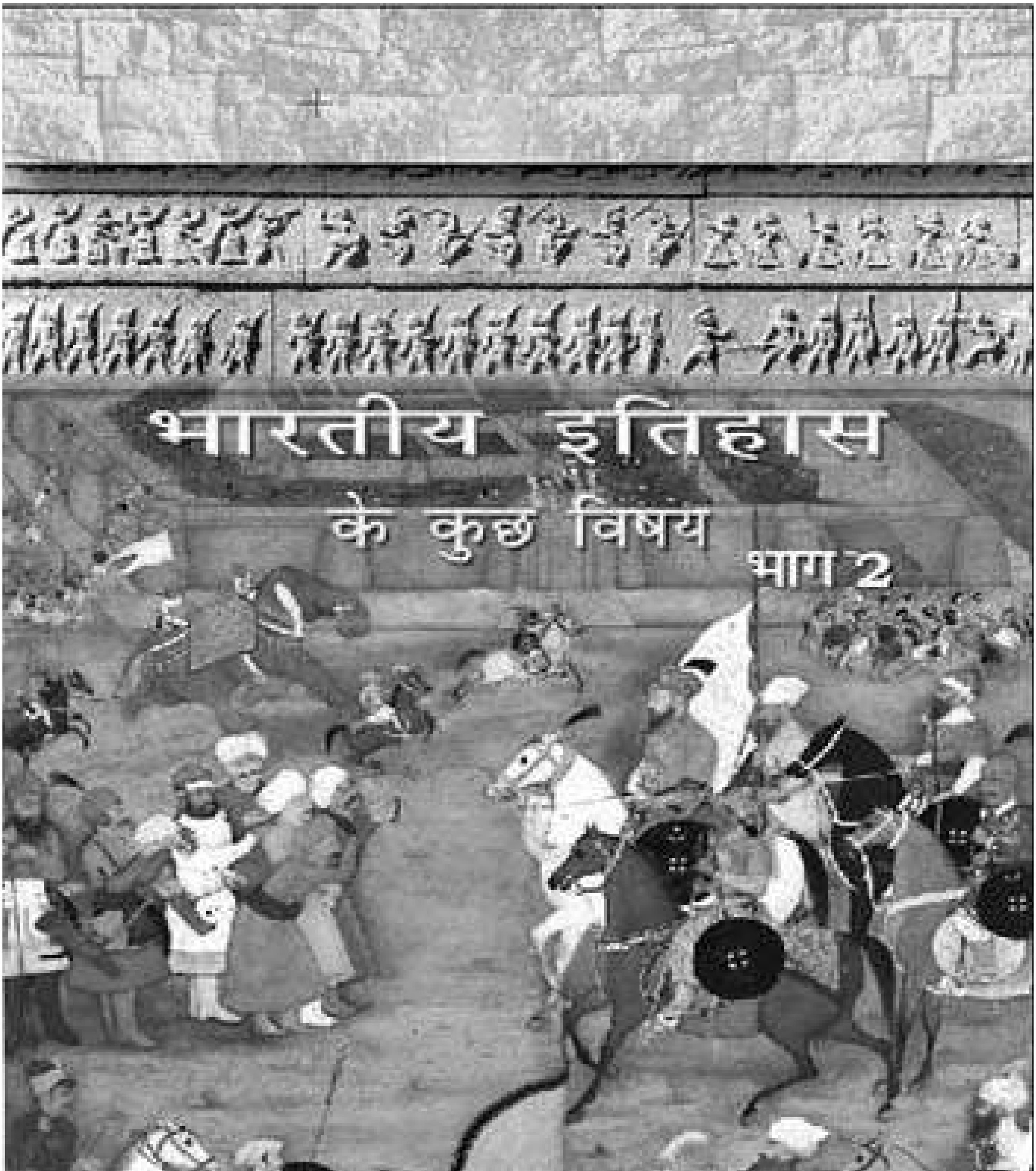
भारतीय इतिहास
के कुछ विषय
भाग 2

भारतीय इतिहास के कुछ विषय

भाग 2

कक्षा 12 के लिए
इतिहास की पाठ्यपुस्तक

भारतीय इतिहास के कुछ विषय

भाग 2

विद्ययाऽमृतमश्नुते

एनसीईआरटी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जून 2007 ज्येष्ठ 1929

पुनर्मुद्रण
नवंबर 2007 कार्तिक 1929
जनवरी 2009 पौष 1930

PD 25T NSY

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007

रु. 65.00

एन.सी.ई.आर.टी. वॉटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा शकुन प्रिन्टर्स, 241 पटपड़ गंज इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली 110 092 द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-700-0 (भाग 1)
81-7450-759-0 (भाग 2)

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
संपादक : *नरेश यादव*
उत्पादन सहायक : *प्रकाश वीर सिंह*

आवरण एवं सज्जा
आर्ट क्रियेशंस, नयी दिल्ली

कार्टोग्राफी
के. वर्गीज़

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और अपने अनुभव पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों व स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेण्डर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान सलाहकार समूह के अध्यक्ष, प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता एवं इतिहास पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार, प्रोफ़ेसर नीलाद्रि भट्टाचार्य, इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई शिक्षकों ने योगदान दिया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं।

हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री और सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

अध्ययन का केंद्रबिंदु निश्चित करना

कौन सी बात इस किताब के केंद्रबिंदु को निर्धारित करती है? आखिर इस किताब का क्या लक्ष्य है? पिछली कक्षाओं की पढ़ाई से यह कैसे जुड़ी हुई है?

कक्षा 6 से 8 तक हमने भारतीय इतिहास के बारे में प्रारंभिक काल से आधुनिक युग तक की जानकारी प्राप्त की। हर वर्ष एक विशेष ऐतिहासिक काल के बारे में पढ़ाई की गई। कक्षा 9 और 10 की किताबों में परीक्षण का दायरा बदल गया। उच्च प्राथमिक कक्षाओं के विपरीत यहाँ हमने एक छोटा सा काल चुनकर समकालीन विश्व का सूक्ष्म अध्ययन किया। क्षेत्रीय सीमाओं को लाँघते हुए, राष्ट्रीय-राज्यों के विस्तार से कहीं आगे बढ़कर, हमने यह जानने की कोशिश की कि दुनिया के अलग-अलग हलकों और मुल्कों के लोगों ने आज की दुनिया बनाने में क्या भूमिका अदा की है। भारतीय इतिहास एक बृहत्तर विश्व के अंतर्संबंधित इतिहास का हिस्सा बन गया। इसके बाद कक्षा 11 में हमने *विश्व इतिहास के कुछ विषयों* का अध्ययन किया। इस दौरान हमने पृथ्वी पर इनसानों के जीवन की शुरुआत से आज तक के लंबे अंतराल के बीच अपनी कालानुक्रमिक दृष्टि को विस्तार दिया। लेकिन हमने विशेष खोज के लिए सिर्फ़ कुछ विषयों को चुना। इस साल हम *भारतीय इतिहास के कुछ विषयों* का अध्ययन करेंगे।

यह किताब हड़प्पा से शुरू होती है और भारतीय संविधान के बनने पर खत्म होती है। इसमें पाँच हज़ार वर्षों का सामान्य सर्वेक्षण नहीं बल्कि कुछ विशेष विषयों का गहन अध्ययन किया गया है। पिछले वर्षों की किताबों ने आपको पहले ही भारतीय इतिहास से परिचित करा दिया है। अब समय आ गया है कि हम कुछ विषयों की गहराई से छानबीन करें।

जहाँ हमने आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विषयों को चुनकर बदलाव के अलग-अलग आयामों को समझने की कोशिश की है वहीं इनके बीच की दीवारों को भी तोड़ने का प्रयास किया है। जहाँ इस किताब के कुछ विषय आपको उस युग की राजनीति तथा सत्ता और शक्ति की प्रकृति से परिचित करवाएँगे, वहीं कुछ में यह समझने का प्रयास है कि समाज कैसे संगठित होता है, कैसे काम करता है और कैसे बदलता है। कुछ और अध्याय बताते हैं धार्मिक जीवन और रीति-रिवाज़ों के बारे में, अर्थव्यवस्थाओं के विषय में और ग्रामीण एवं शहरी समाजों में बदलाव के बारे में।

इनमें से हर विषय आपको इतिहासकारों के शिल्प से अवगत कराएगा। इतिहास को ढूँढ़ निकालने के लिए इतिहासकारों को स्रोतों की ज़रूरत पड़ती है जिनके माध्यम से अतीत के बारे में जाना जा सकता है। लेकिन स्रोत खुद-ब-खुद अतीत को प्रकट नहीं करते। इतिहासकारों को इन स्रोतों के साथ जूझना पड़ता है, इनकी व्याख्या करनी पड़ती है और उनसे अतीत के तथ्य बुलवाने पड़ते हैं। इसीलिए तो इतिहास एक दिलचस्प विषय बन जाता है। पुराने स्रोतों से भी हमें कई नयी जानकारियाँ मिल सकती हैं, यदि हम उनसे नए सवाल पूछें और उन पर अलग तरीके से नज़र दौड़ाएँ। इसलिए हमें यह जानने की ज़रूरत है कि इतिहासकार किस तरह स्रोतों को पढ़ते हैं और कैसे वे पुराने स्रोतों में नयी बातें खोज निकालते हैं।

लेकिन इतिहासकार सिर्फ़ पुराने स्रोतों का ही पुनर्परीक्षण नहीं करते। वे नए स्रोत भी खोज निकालते हैं। कई बार ये स्रोत आकस्मिक रूप से मिल जाते हैं। पुराविदों को कभी-कभी अनजाने में ही कोई मुहर या टीला दिख जाता है जिससे किसी प्राचीन सभ्यता के स्थल का सुराग मिल जाता है।

किसी कलेक्टरेट के धूल-धूसरित दस्तावेज़ों और लेखों के पुलिंदे की छानबीन करते हुए इतिहासकार अनजाने में किसी स्थानीय झगड़े के मुकदमे के कागज़ात पा लेता है और इनसे सदियों पहले के ग्रामीण जीवन का एक नया विश्व सामने खड़ा हो जाता है। क्या ये खोजें

एक संयोग मात्र हैं? हो सकता है किसी अभिलेखागार में आपको अचानक पुराने दस्तावेज़ों का एक पुलिंदा मिल जाए। आप उसे खोल कर देखते हैं लेकिन आपको उसमें कोई महत्वपूर्ण बात नज़र नहीं आती। यदि आपके मन में संबद्ध सवाल नहीं हों तो उस स्रोत का कोई मतलब नज़र नहीं आएगा। आपको स्रोत को खोजना होता है, मूल पाठ को पढ़ना होता है, सुरागों के पीछे लगना पड़ता है और इन सबका अंतर्संबंध ढूँढ़ना होता है तब जाकर आप अतीत का पुनर्निर्माण कर पाते हैं। किसी स्रोत की खोज मात्र से ही अतीत के रहस्य नहीं खुल जाते। जब अलेक्ज़ैंडर कनिंघम ने पहली बार हड़प्पा सभ्यता की एक मुहर देखी तो वे इसका कोई मतलब नहीं निकाल पाए। काफ़ी समय बाद ही उस मुहर का महत्त्व समझ में आया।

वस्तुत: जब इतिहासकार नए सवाल पूछना शुरू करते हैं या नए विषयों की खोज करते हैं तब उन्हें अक्सर नए प्रकार के स्रोतों की खोज करनी पड़ती है। यदि हम क्रांतिकारियों और विद्रोहियों के बारे में जानना चाहते हैं तो सरकारी कागज़ात सिर्फ़ एक अधूरी छवि ही प्रस्तुत कर पाएँगे। एक ऐसी छवि जो सरकारी पक्ष के द्वेष और पूर्वाग्रहों से रँगी हुई होगी। हमें विद्रोहियों की डायरी, उनके व्यक्तिगत पत्र, उनके लेख और उद्घोषणाओं जैसे दस्तावेज़ों को ढूँढ़ने की ज़रूरत पड़ेगी। ये सब आसानी से नहीं मिलते। यदि हम 1947 के विभाजन के सदमे को झेलने वाले लोगों के अनुभवों को समझना चाहते हैं तो लिखित स्रोतों की अपेक्षा मौखिक स्रोत ज़्यादा बातें उद्घाटित कर पाएँगे।

जैसे-जैसे इतिहास की दृष्टि फैलती है वैसे-वैसे अतीत को समझने की कोशिश में लगे इतिहासकार नए सुरागों की तलाश में नए स्रोतों की खोज शुरू कर देते हैं। जब ऐसा होता है तब किन-किन चीज़ों को स्रोत माना जाए – इसकी समझ ही बदल जाती है। एक समय था जब सिर्फ़ लिखित दस्तावेज़ों को ही प्रामाणिक स्रोत माना जाता था। लिखित दस्तावेज़ों को सत्यापित किया जा सकता था, उनका हवाला दिया जा सकता था और उन्हें जाँचा जा सकता था। मौखिक साक्ष्य को एक वैध स्रोत ही नहीं माना जाता था। आखिर उसके सत्यापन या जाँच की गारंटी कौन लेता? मौखिक परंपरा में अविश्वास की यह स्थिति अभी भी पूरी तरह खत्म नहीं हुई है। लेकिन मौखिक परंपरा का अभिनव प्रयोग करके ऐसे अनुभवों को सामने लाया गया है जो दूसरे किसी दस्तावेज़ से प्रकट नहीं होते।

इस साल की किताब से आप इतिहासकारों की दुनिया में प्रवेश करेंगे, उनके साथ नए सूत्रों की तलाश करेंगे और देखेंगे कि वे किस तरह से अतीत के साथ संवाद करते हैं। आप देखेंगे कि वे किस तरह से स्रोतों से सार्थक जानकारी ढूँढ़ निकालते हैं, अभिलेखों को पढ़ते हैं, पुरास्थलों की खुदाई करते हैं, मनकों और हड्डियों के अर्थ निकालते हैं, महाकाव्यों की व्याख्या करते हैं, स्तूपों और इमारतों का निरीक्षण करते हैं, चित्रों और तसवीरों का परीक्षण करते हैं, पुलिस की रपट और राजस्व के दस्तावेज़ों की व्याख्या करते हैं और अतीत की आवाज़ों को सुनते हैं। हर विषयवस्तु एक विशेष किस्म के स्रोत की खासियत और संभावनाओं पर विचार करेगी। यह चर्चा करेगी कि कोई स्रोत क्या बता सकता है और क्या नहीं।

भारतीय इतिहास के कुछ विषय पुस्तक का यह भाग 2 है। भाग 1 प्रकाशित हो चुका है। भाग 3 प्रकाशनाधीन है।

नीलाद्रि भट्टाचार्य
मुख्य सलाहकार
इतिहास

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति
हरि वासुदेवन, *प्रोफ़ेसर,* इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

मुख्य सलाहकार
नीलाद्रि भट्टाचार्य, *प्रोफ़ेसर,* इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (विषय 10)

सलाहकार
कुमकुम रॉय, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (विषय 2)
मोनिका जुनेजा, *गेस्ट प्रोफ़ेसर,* इंस्टीट्यूट फ़ूरगेशीख़्ट (इतिहास संबंधी अध्ययन के लिए संस्था), विएना, ऑस्ट्रिया

सदस्य
उमा चक्रवर्ती, *रीडर* (अवकाशप्राप्त), इतिहास, मिरांडा हाऊस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (विषय 4)
कुणाल चक्रवर्ती, *प्रोफ़ेसर,* इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (विषय 3)
जया मेनन, *रीडर,* इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (विषय 1)
नजफ़ हैदर, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (विषय 9)
पार्थो दत्ता, *रीडर,* इतिहास विभाग, ज़ाकिर हुसैन कॉलेज (सांध्य कक्षाएँ), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (विषय 12)
प्रभा सिंह, *पी.जी.टी.,* केंद्रीय विद्यालय, ओल्ड कैंट, तेलियरगंज, इलाहाबाद
फ़रहत हसन, *रीडर,* इतिहास विभाग, अलीगढ़ (विषय 5)
बीबा सोब्ती, *पी.जी.टी.,* मॉडर्न स्कूल, बाराखंबा रोड, नयी दिल्ली
मुज़फ़्फ़र आलम, *प्रोफ़ेसर,* दक्षिण-एशियाई इतिहास, शिकागो विश्वविद्यालय, शिकागो, यू.एस.ए.
मीनाक्षी खन्ना, *रीडर* (इतिहास), इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (विषय 6)
रजत दत्ता, *प्रोफ़ेसर,* इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (विषय 8)
रामचंद्र गुहा, *स्वतंत्र लेखक, मानवविज्ञानी एवं इतिहासकार,* बंगलौर (विषय 13)
रश्मि पालीवाल, एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद
रूद्रांग्शू मुखर्जी, *कार्यकारी संपादक, दि टेलीग्राफ़,* कोलकाता (विषय 11)
विजया रामास्वामी, *प्रोफ़ेसर,* इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (विषय 7)
सी.एन. सुब्रमण्यम, एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद (विषय 7)
स्मिता सहाय भट्टाचार्य, *पी.जी.टी.,* ब्लू बेल्स स्कूल, कैलाश कॉलोनी, नयी दिल्ली
सुमित सरकार, *प्रोफ़ेसर*-इतिहास (अवकाशप्राप्त), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (विषय 15)

अनुवादक
अनिल सेठी
पंकज झा, *लेक्चरर,* लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
शालिनी शाह, *रीडर,* इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
संजय शर्मा, *लेक्चरर,* आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
सीमा एस. ओझा

सदस्य-समन्वयक
अनिल सेठी, *प्रोफ़ेसर,* सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नयी दिल्ली (विषय 14)
सीमा एस. ओझा, *लेक्चरर,* सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली

आभार

इस पुस्तक के भाग 1 की ही तरह *भारतीय इतिहास के कुछ विषय भाग 2* को बनाने में भी कई व्यक्तियों और संस्थाओं की बड़ी उत्साहपूर्ण हिस्सेदारी रही। इन सभी को धन्यवाद देते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

अध्यायों की पांडुलिपि पर विस्तृत और लाभदायक टिप्पणियों के लिए हम जॉन फ्रिट्ज़, सुनील कुमार और सुप्रिया वर्मा के आभारी हैं। कुछ मुद्दों पर प्रकाश डालकर तुरंत मदद के लिए हम मीना भार्गव, रणबीर चक्रवर्ती, रंजीता दत्ता, भारती जगन्नाथन एवं नंदिता प्रसाद सहाय का धन्यवाद करते हैं। राष्ट्रीय निगरानी समिति के सदस्य प्रोफ़ेसर जे.एस. ग्रेवाल और शोभा वाजपेयी के सुझाव बहुत लाभदायक रहे।

पुस्तक के लिए दृश्य-सामग्री विभिन्न व्यक्तियों और संस्थाओं से प्राप्त की गई। खासतौर से हम जॉर्ज मिशेल और जॉन फ्रिट्ज़ का शुक्रिया अदा करना चाहेंगे जिनकी उदारता के कारण हम उनके विजयनगर संबंधी संसाधनों के समृद्ध भंडार का उपयोग कर पाए।

आर्ट क्रियेशंस के ऋतु टोपा और अनिमेष रॉय ने बड़े धीरज और निपुणता के साथ पुस्तक को डिज़ाइन किया। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के के. वर्गीस ने मानचित्र तैयार किए। एलबिनस टर्की और मनोज हलदर ने तकनीकी सहायता प्रदान की। समीरा वर्मा ने कई तरह से महत्वपूर्ण मदद की। उनकी खुशमिजाज़ी भी कई मायनों में मददगार साबित हुई।

दिनेश कुमार, *प्रभारी,* कंप्यूटर कक्ष; ईश्वर सिंह, मुकद्दस आज़म, अनिल शर्मा, अरविंद शर्मा तथा सरिता किमोठी *डी.टी.पी. ऑपरेटर;* मनोज मोहन, यतेन्द्र कुमार यादव तथा नौशाद अहमद *कॉपी एडीटर;* अचल कुमार *प्रूफ रीडर* ने इस पुस्तक के निर्माण में सहयोग दिया। हम इन सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं।

पुस्तक के प्रयोगकर्ताओं से पुनर्निवेशन की हम उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करते हैं। इससे भावी संस्करणों को सुधारने में सहायता मिलेगी।

विषय सूची

भाग 2

विषय पाँच
यात्रियों के नज़रिए 115
समाज के बारे में उनकी समझ
(लगभग दसवीं से सत्रहवीं सदी तक)

विषय छः
भक्ति–सूफी परंपराएँ 140
धार्मिक विश्वासों में बदलाव और श्रद्धा ग्रंथ
(लगभग आठवीं से अठारहवीं सदी तक)

विषय सात
एक साम्राज्य की राजधानी : विजयनगर 170
(लगभग चौदहवीं से सोलहवीं सदी तक)

विषय आठ
किसान, ज़मींदार और राज्य 196
कृषि समाज और मुगल साम्राज्य
(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

विषय नौ
शासक और विभिन्न इतिवृत्त 224
मुग़ल दरबार
(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

भाग 3*

विषय दस
उपनिवेशवाद और देहात
सरकारी अभिलेखों का अध्ययन

विषय ग्यारह
विद्रोही और राज
1857 का आंदोलन और उसके व्याख्यान

*भाग 3 इसी क्रम में होगा

विषय बारह
औपनिवेशिक शहर
नगरीकरण, नगर-योजना, स्थापत्य

विषय तेरह
महात्मा गांधी और राष्ट्रीय आंदोलन
सविनय अवज्ञा और उससे आगे

विषय चौदह
विभाजन को समझना
राजनीति, स्मृति, अनुभव

विषय पंद्रह
संविधान का निर्माण
एक नए युग की शुरुआत

भाग 1
(पृष्ठ 1-114)

विषय एक
ईंटें, मनके तथा अस्थियाँ
हड़प्पा सभ्यता

विषय दो
राजा, किसान और नगर
आरंभिक राज्य और अर्थव्यवस्थाएँ
(लगभग 600 ई.पू. से 600 ईसवी)

विषय तीन
बंधुत्व, जाति तथा वर्ग
आरंभिक समाज
(लगभग 600 ई.पू. से 600 ईसवी)

विषय चार
विचारक, विश्वास और इमारतें
सांस्कृतिक विकास
(लगभग 600 ईसा पूर्व से ईसवी 600 तक)

इस पुस्तक का कैसे प्रयोग किया जाए?

यह पुस्तक *भारतीय इतिहास के कुछ विषय* का भाग 2 है। भाग 3 इसी क्रम में होगा।

- ☑ अध्ययन में मदद हेतु प्रत्येक अध्याय को कई भागों और उपभागों में बाँटा गया है। सरल पाठन के लिए इन भागों और उपभागों को संख्याएँ दी गई हैं।
- ☑ इसके अलावा कुछ सामग्री तीन तरह के बॉक्सों के अंतर्गत दी गई है।

संक्षेप में अर्थ

अतिरिक्त जानकारी

विस्तृत परिभाषाएँ

यह सामग्री ***परीक्षा में मूल्यांकन हेतु नहीं है।***
यह केवल समझने की प्रक्रिया पुख़्ता बनाने और उसमें मदद करने के लिए है।

- ☑ प्रत्येक अध्याय के अंत में ***कालरेखाएँ*** दी गई हैं। ये परीक्षा में ***मूल्यांकन हेतु नहीं हैं।*** यह पाठ की सामग्री की पृष्ठभूमि की जानकारी के लिए हैं।
- ☑ प्रत्येक अध्याय में ***चित्र/रेखाचित्र, मानचित्र*** और ***स्रोत*** दिए गए हैं।

(क) **चित्रों** के अंतर्गत औज़ारों, मृद्‌भाण्डों, मुहरों, सिक्कों, आभूषणों आदि पुरावस्तुओं के चित्र एवं अभिलेखों, मूर्तियों, पेंटिंग, इमारतों, पुरास्थलों, नक्शों, लोगों तथा जगहों की तसवीरें हैं। इन सभी का इस्तेमाल इतिहासकार स्रोतों के रूप में करते हैं।

(ख) आवश्यकतानुसार अध्यायों में ***मानचित्र*** दिए गए हैं।

स्रोत

(ग) स्रोत अलग तरह के बॉक्स में दिए गए हैं। तरह-तरह की लिखित सामग्री एवं अभिलेखों से अंश इनके अंतर्गत दिए गए हैं। लिखित साक्ष्यों के साथ ही चित्रों के साक्ष्य उन सुरागों से परिचित कराएँगे जिनका इतिहासकार इस्तेमाल करते हैं। आप यह भी देखेंगे कि इतिहासकार इनका विश्लेषण कैसे करते हैं। **अंतिम परीक्षा में समान/मिलती-जुलती सामग्री के अंश या फिर चित्र दिए जा सकते हैं। इस तरह आपको ऐसी सामग्री के प्रयोग का अवसर मिलेगा।**

☑ पाठ के अंतर्गत दो तरह के प्रश्न दिए गए हैं।

(क) पीले रंग के बॉक्स में वे प्रश्न दिए गए हैं जिनका ***मूल्यांकन हेतु अभ्यास*** किया जा सकता है।

(ख) ➲ चर्चा कीजिए... के अंतर्गत वे प्रश्न दिए गए हैं जो ***मूल्यांकन के लिए नहीं हैं।***

☑ प्रत्येक अध्याय के अंत में ***चार तरह*** के अभ्यास कार्य दिए गए हैं :

लघु प्रश्न

लघु निबंध

मानचित्र कार्य

परियोजना कार्य

ये अंतिम परीक्षा व मूल्यांकन हेतु अभ्यास के लिए दिए गए हैं।

आशा है आपको इस पुस्तक का प्रयोग दिलचस्प लगेगा।

विषय पाँच

यात्रियों के नज़रिए
समाज के बारे में उनकी समझ
(लगभग दसवीं से सत्रहवीं सदी तक)

महिलाओं और पुरुषों ने कार्य की तलाश में, प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के लिए व्यापारियों, सैनिकों, पुरोहितों और तीर्थयात्रियों के रूप में या फिर साहस की भावना से प्रेरित होकर यात्राएँ की हैं। वे, जो किसी नए स्थान पर आते हैं अथवा बस जाते हैं, निश्चित रूप से एक ऐसी दुनिया को समक्ष पाते हैं जो भूदृश्य या भौतिक परिवेश के संदर्भ में और साथ ही लोगों की प्रथाओं, भाषाओं, आस्था तथा व्यवहार में भिन्न होती है। इनमें से कुछ इन भिन्नताओं के अनुरूप ढल जाते हैं और अन्य जो कुछ हद तक विशिष्ट होते हैं, इन्हें ध्यानपूर्वक अपने वृत्तांतों में लिख लेते हैं, जिनमें असामान्य तथा उल्लेखनीय बातों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। दुर्भाग्य से हमारे पास महिलाओं द्वारा छोड़े गए वृत्तांत लगभग न के बराबर हैं, हालाँकि हम यह जानते हैं कि वे भी यात्राएँ करती थीं। सुरक्षित मिले वृत्तांत अपनी विषयवस्तु के संदर्भ में अलग-अलग प्रकार के होते हैं। कुछ दरबार की गतिविधियों से संबंधित होते हैं, जबकि अन्य धार्मिक विषयों, या स्थापत्य के तत्वों और स्मारकों पर केंद्रित होते हैं। उदाहरण के लिए, पंद्रहवीं शताब्दी में विजयनगर शहर (अध्याय 7) के सबसे महत्त्वपूर्ण विवरणों में से एक, हेरात से आए एक राजनयिक अब्दुर रज़्ज़ाक समरकंदी से प्राप्त होता है।

चित्र 5.1 (क)
पान के पत्ते

कई बार यात्री सुदूर क्षेत्रों में नहीं जाते हैं। उदाहरण के लिए, मुग़ल साम्राज्य (अध्याय 8 और 9) में प्रशासनिक अधिकारी कभी-कभी साम्राज्य के भीतर ही भ्रमण करते थे और अपनी टिप्पणियाँ दर्ज करते थे। इनमें से कुछ अपने ही देश की लोकप्रिय प्रथाओं तथा जन-वार्ताओं और परंपराओं को समझना चाहते थे।

इस अध्याय में हम यह देखेंगे कि उपमहाद्वीप में आए यात्रियों द्वारा दिए गए सामाजिक जीवन के विवरणों के अध्ययन से किस प्रकार हम अपने अतीत के विषय में ज्ञान बढ़ा सकते हैं। इसके लिए हम तीन व्यक्तियों के वृत्तांतों पर ध्यान देंगे: अल-बिरूनी, जो ग्यारहवीं शताब्दी में उज़्बेकिस्तान आया था, इब्न बतूता (चौदहवीं शताब्दी), मोरक्को से तथा फ्रांसीसी यात्री फ्रांस्वा बर्नियर (सत्रहवीं शताब्दी)।

चित्र 5.1 (ख)
नारियल
कई यात्रियों ने नारियल तथा पान जैसी चीज़ों को असामान्य माना।

पूरी तरह से भिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने के कारण ये लेखक दैनिक गतिविधियों तथा प्रथाओं के प्रति अधिक सावधान रहते थे। देशज लेखकों के लिए ये सभी विषय सामान्य थे जो वृत्तांतों में दर्ज करने योग्य नहीं थे। नज़रिये में यही भिन्नता ही यात्रा-वृत्तांतों को अधिक रोचक बनाती है। ये यात्री किसके लिए लिखते थे? जैसा कि हम देखेंगे, इस प्रश्न का उत्तर अलग-अलग दृष्टांतों में अलग था।

स्रोत 1

अल-बिरूनी के उद्देश्य

अल-बिरूनी ने अपने कार्य का वर्णन इस प्रकार किया:

> उन लोगों के लिए सहायक जो उनसे (हिंदुओं) धार्मिक विषयों पर चर्चा करना चाहते हैं और ऐसे लोगों के लिए एक सूचना का संग्रह जो उनके साथ संबद्ध होना चाहते हैं।

➲ अल-बिरूनी की कृति का अंश पढ़िए (स्रोत 5) तथा चर्चा कीजिए कि क्या यह कृति इन उद्देश्यों को पूरा करती है।

1. अल-बिरूनी तथा किताब-उल-हिन्द

1.1 *ख़्वारिज़्म से पंजाब तक*

अल-बिरूनी का जन्म आधुनिक उज़्बेकिस्तान में स्थित ख़्वारिज़्म में सन् 973 में हुआ था। ख़्वारिज़्म शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था और अल-बिरूनी ने उस समय उपलब्ध सबसे अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी। वह कई भाषाओं का ज्ञाता था जिनमें सीरियाई, फ़ारसी, हिब्रू तथा संस्कृत शामिल हैं। हालाँकि वह यूनानी भाषा का जानकार नहीं था पर फिर भी वह प्लेटो तथा अन्य यूनानी दार्शनिकों के कार्यों से पूरी तरह परिचित था जिन्हें उसने अरबी अनुवादों के माध्यम से पढ़ा था। सन् 1017 ई. में ख़्वारिज़्म पर आक्रमण के पश्चात सुल्तान महमूद यहाँ के कई विद्वानों तथा कवियों को अपने साथ अपनी राजधानी ग़ज़नी ले गया। अल-बिरूनी भी उनमें से एक था। वह बंधक के रूप में ग़ज़नी आया था पर धीरे-धीरे उसे यह शहर पसंद आने लगा और सत्तर वर्ष की आयु में अपनी मृत्यु तक उसने अपना बाकी जीवन यहीं बिताया।

ग़ज़नी में ही अल-बिरूनी की भारत के प्रति रुचि विकसित हुई। यह कोई असामान्य बात नहीं थी। आठवीं शताब्दी से ही संस्कृत में रचित खगोल-विज्ञान, गणित और चिकित्सा संबंधी कार्यों का अरबी भाषा में अनुवाद होने लगा था। पंजाब के ग़ज़नवी साम्राज्य का हिस्सा बन जाने के बाद स्थानीय लोगों से हुए संपर्कों ने आपसी विश्वास और समझ का वातावरण बनाने में मदद की। अल-बिरूनी ने ब्राह्मण पुरोहितों तथा विद्वानों के साथ कई वर्ष बिताए और संस्कृत, धर्म तथा दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। हालाँकि उसका यात्रा-कार्यक्रम स्पष्ट नहीं है फिर भी प्रतीत होता है कि उसने पंजाब और उत्तर भारत के कई हिस्सों की यात्रा की थी।

ग्रंथों का अनुवाद, विचारों का आदान-प्रदान

कई भाषाओं में दक्षता हासिल करने के कारण अल-बिरूनी भाषाओं की तुलना तथा ग्रंथों का अनुवाद करने में सक्षम रहा। उसने कई संस्कृत कृतियों, जिनमें पतंजलि का व्याकरण पर ग्रंथ भी शामिल है, का अरबी में अनुवाद किया। अपने ब्राह्मण मित्रों के लिए उसने यूक्लिड (एक यूनानी गणितज्ञ) के कार्यों का संस्कृत में अनुवाद किया।

उसके लिखने के समय यात्रा वृत्तांत अरबी साहित्य का एक मान्य हिस्सा बन चुके थे। ये वृत्तांत पश्चिम में सहारा रेगिस्तान से लेकर उत्तर में वोल्गा नदी तक फैले क्षेत्रों से संबंधित थे। इसलिए, हालाँकि

1500 ई. से पहले भारत में अल-बिरूनी को कुछ ही लोगों ने पढ़ा होगा, भारत से बाहर कई अन्य लोग संभवतः ऐसा कर चुके हैं।

मापतंत्र विज्ञान मापने के विज्ञान से संबंध रखता है।

1.2 *किताब-उल-हिन्द*

अरबी में लिखी गई अल-बिरूनी की कृति *किताब-उल-हिन्द* की भाषा सरल और स्पष्ट है। यह एक विस्तृत ग्रंथ है जो धर्म और दर्शन, त्योहारों, खगोल-विज्ञान, कीमिया, रीति-रिवाजों तथा प्रथाओं, सामाजिक-जीवन, भार-तौल तथा मापन विधियों, मूर्तिकला, कानून, मापतंत्र विज्ञान आदि विषयों के आधार पर अस्सी अध्यायों में विभाजित है।

सामान्यतः (हालाँकि हमेशा नहीं) अल-बिरूनी ने प्रत्येक अध्याय में एक विशिष्ट शैली का प्रयोग किया जिसमें आरंभ में एक प्रश्न होता था, फिर संस्कृतवादी परंपराओं पर आधारित वर्णन और अंत में अन्य संस्कृतियों के साथ एक तुलना। आज के कुछ विद्वानों का तर्क है कि इस लगभग ज्यामितीय संरचना, जो अपनी स्पष्टता तथा पूर्वानुमेयता के लिए उल्लेखनीय है, का एक मुख्य कारण अल-बिरूनी का गणित की ओर झुकाव था।

अल-बिरूनी जिसने लेखन में भी अरबी भाषा का प्रयोग किया था, ने संभवतः अपनी कृतियाँ उपमहाद्वीप के सीमांत क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए लिखी थीं। वह संस्कृत, पाली तथा प्राकृत ग्रंथों के अरबी भाषा में अनुवादों तथा रूपांतरणों से परिचित था-इनमें दंतकथाओं से लेकर खगोल-विज्ञान और चिकित्सा संबंधी कृतियाँ सभी शामिल थीं। पर साथ ही इन ग्रंथों की लेखन-सामग्री शैली के विषय में उसका दृष्टिकोण आलोचनात्मक था और निश्चित रूप से वह उनमें सुधार करना चाहता था।

हिंदू

"हिंदू" शब्द लगभग छठी-पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में प्रयुक्त होने वाले एक प्राचीन फ़ारसी शब्द, जिसका प्रयोग सिंधु नदी (Indus) के पूर्व के क्षेत्र के लिए होता था, से निकला था। अरबी लोगों ने इस फ़ारसी शब्द को जारी रखा और इस क्षेत्र को "अल-हिंद" तथा यहाँ के निवासियों को "हिंदी" कहा। कालांतर में तुर्कों ने सिंधु से पूर्व में रहने वाले लोगों को "हिंदू"; उनके निवास क्षेत्र को "हिंदुस्तान" तथा उनकी भाषा को "हिंदवी" का नाम दिया। इनमें से कोई भी शब्द लोगों की धार्मिक पहचान का द्योतक नहीं था। इस शब्द का धार्मिक संदर्भ में प्रयोग बहुत बाद की बात है।

➲ चर्चा कीजिए...

यदि अल-बिरूनी इक्कीसवीं शताब्दी में रहता, तो वही भाषाएँ जानने पर भी उसे विश्व के किन क्षेत्रों में आसानी से समझा जा सकता था?

चित्र 5.2
तेरहवीं शताब्दी की अरबी पांडुलिपि का एक चित्र जिसमें छठी शताब्दी ईसा पूर्व एथेंस के राजनेता एवं कवि सोलोन को विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए दिखाया गया है।
सोलोन एवं उनके विद्यार्थियों के कपड़ों को ध्यान से देखिए।

➲ क्या ये कपड़े यूनानी हैं अथवा अरबी?

स्रोत 2

घोंसले से निकलता पक्षी

यह रिह्‌ला से लिया गया एक उद्धरण है:

अपने जन्म स्थान तैंजियर से मेरा प्रस्थान गुरुवार को हुआ... मैं अकेला ही निकल पड़ा, बिना किसी साथी यात्री... या कारवाँ के जिसकी टोली में मैं शामिल हो सकूँ, लेकिन अपने अंदर एक अधिप्रभावी आवेग और इन प्रसिद्ध पुण्यस्थानों को देखने की इच्छा जो लंबे समय से मेरे अंत:करण में थी, से प्रभावित होकर। इसलिए मैंने अपने प्रियजनों को छोड़ जाने के निश्चय को दृढ़ किया और अपने घर को ऐसे ही छोड़ दिया जैसे पक्षी अपने घोंसलों को छोड़ देते हैं... उस समय मेरी उम्र बाईस वर्ष थी।

इब्न बतूता 1354 में घर वापस पहुँचा, अपनी यात्रा आरंभ करने के लगभग तीस वर्ष बाद।

चित्र 5.3
डाकू यात्रियों पर हमला कर रहे हैं, सोलहवीं शताब्दी का मुग़ल चित्र

➲ आप डाकुओं को यात्रियों से कैसे अलग करेंगे?

2. इब्न बतूता का *रिह्‌ला*

2.1 *एक आरंभिक विश्व-यात्री*

इब्न बतूता द्वारा अरबी भाषा में लिखा गया उसका यात्रा वृत्तांत जिसे *रिह्‌ला* कहा जाता है, चौदहवीं शताब्दी में भारतीय उपमहाद्वीप के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के विषय में बहुत ही प्रचुर तथा रोचक जानकारियाँ देता है। मोरक्को के इस यात्री का जन्म तैंजियर के सबसे सम्मानित तथा शिक्षित परिवारों में से एक, जो इस्लामी कानून अथवा *शरिया* पर अपनी विशेषज्ञता के लिए प्रसिद्ध था, में हुआ था। अपने परिवार की परंपरा के अनुसार इब्न बतूता ने कम उम्र में ही साहित्यिक तथा शास्त्ररूढ़ शिक्षा हासिल की।

अपनी श्रेणी के अन्य सदस्यों के विपरीत, इब्न बतूता पुस्तकों के स्थान पर यात्राओं से अर्जित अनुभव को ज्ञान का अधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत मानता था। उसे यात्राएँ करने का बहुत शौक था और वह नए-नए देशों और लोगों के विषय में जानने के लिए दूर-दूर के क्षेत्रों तक गया। 1332-33 में भारत के लिए प्रस्थान करने से पहले वह मक्का की तीर्थ यात्राएँ और सीरिया, इराक, फारस, यमन, ओमान तथा पूर्वी अफ्रीका के कई तटीय व्यापारिक बंदरगाहों की यात्राएँ कर चुका था।

मध्य एशिया के रास्ते होकर इब्न बतूता सन् 1333 में स्थलमार्ग से सिंध पहुँचा। उसने दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के बारे में सुना था और कला और साहित्य के एक दयाशील संरक्षक के रूप में उसकी ख्याति से आकर्षित हो बतूता ने मुल्तान और उच्छ के रास्ते होकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। सुल्तान उसकी विद्वता से प्रभावित हुआ और उसे दिल्ली का क़ाज़ी या न्यायाधीश नियुक्त किया। वह इस पद पर कई वर्षों तक रहा, पर फिर उसने विश्वास खो दिया और उसे कारागार में कैद कर दिया गया। बाद में सुल्तान और उसके बीच की गलतफहमी दूर होने के बाद उसे राजकीय सेवा में पुनर्स्थापित किया गया और 1342 ई. में मंगोल शासक के पास सुल्तान के दूत के रूप में चीन जाने का आदेश दिया गया।

अपनी नयी नियुक्ति के साथ इब्न बतूता मध्य भारत के रास्ते मालाबार तट की ओर बढ़ा। मालाबार से वह मालद्वीप गया जहाँ वह अठारह महीनों तक क़ाज़ी के पद पर रहा पर अंतत: उसने श्रीलंका जाने का निश्चय किया। बाद में एक बार फिर वह मालाबार तट तथा मालद्वीप गया और चीन जाने के अपने कार्य को दोबारा शुरू करने से पहले वह बंगाल तथा असम भी गया। वह जहाज से सुमात्रा गया और सुमात्रा से एक अन्य जहाज से चीनी बंदरगाह नगर

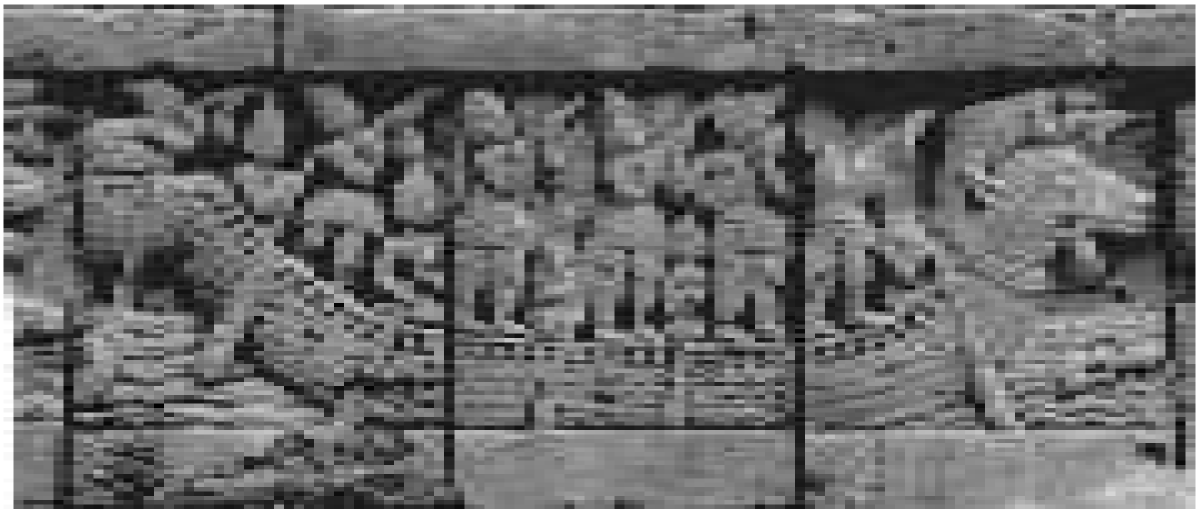

चित्र 5.4
नाव में यात्री, बंगाल के एक मंदिर की मृण मूर्तिकला।
(लगभग सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दियाँ)

➲ आपके मत में कुछ यात्रियों के हाथों में हथियार क्यों हैं?

जायतुन (जो आज क्वानझू के नाम से जाना जाता है) गया। उसने व्यापक रूप से चीन में यात्रा की और वह बीजिंग तक गया, लेकिन वहाँ लंबे समय तक नहीं ठहरा। 1347 में उसने वापस अपने घर जाने का निश्चय किया। चीन के विषय में उसके वृत्तांत की तुलना मार्को पोलो, जिसने तेरहवीं शताब्दी के अंत में वेनिस से चलकर चीन (और भारत की भी) की यात्रा की थी, के वृत्तांत से की जाती है।

इब्न बतूता ने नवीन संस्कृतियों, लोगों, आस्थाओं, मान्यताओं आदि के विषय में अपने अभिमत को सावधानी तथा कुशलतापूर्वक दर्ज किया। हमें यह ध्यान में रखना होगा कि यह विश्व-यात्री चौदहवीं शताब्दी में यात्राएँ कर रहा था, जब आज की तुलना में यात्रा करना अधिक कठिन तथा जोखिम भरा कार्य था। इब्न बतूता के अनुसार उसे मुल्तान से दिल्ली की यात्रा में चालीस और सिंध से दिल्ली की यात्रा में लगभग पचास दिन का समय लगा था। दौलताबाद से दिल्ली की दूरी चालीस, जबकि ग्वालियर से दिल्ली की दूरी दस दिन में तय की जा सकती थी।

एकाकी यात्री

लंबी यात्राओं में लुटेरे ही एकमात्र खतरा नहीं थे: यात्री गृहातुर हो सकता था और बीमार हो सकता था। यह *रिह्ला* से लिया गया एक उद्धरण है:

मुझे ज्वर ने जकड़ लिया था, और मैंने अपने आप को कमज़ोरी के कारण गिरने से बचाने के लिए पगड़ी के कपड़े को जीन से बाँध लिया... अंतत: हम ट्यूनिस शहर पहुँचे और वहाँ के निवासी शेख... और... क़ाज़ी के पुत्र का स्वागत करने के लिए बाहर आए। वे हर ओर एक दूसरे के लिए अभिवादन और प्रश्नों के साथ आगे आए, लेकिन उनमें से किसी ने भी मेरा अभिवादन नहीं किया क्योंकि वहाँ कोई भी ऐसा नहीं था जिससे मेरा परिचय हो। अपने एकाकीपन से मैं इतना उदास हुआ कि अपनी आँखों में आए आँसुओं को रोक नहीं सका, और बहुत रोया। पर एक तीर्थयात्री मेरी कुंठा का कारण जानकर मेरे पास आया और अभिवादन किया...।

मानचित्र 1
अफ़गानिस्तान, सिंध और पंजाब में इब्न बतूता द्वारा भ्रमण किए गए स्थान। कई जगहों के नाम उस तरह से लिखे गए हैं जिस तरह से इब्न बतूता उन्हें जानता होगा।

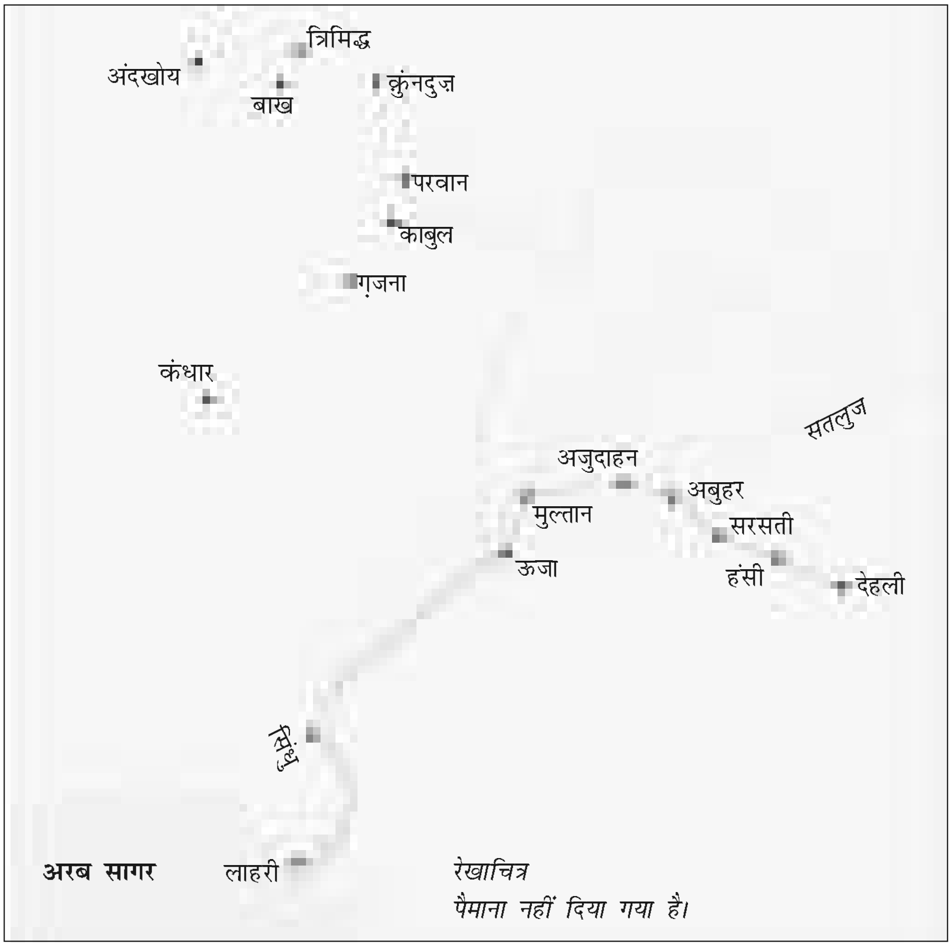

यात्रा करना अधिक असुरक्षित भी था; इब्न बतूता ने कई बार डाकुओं के समूहों द्वारा किए गए आक्रमण झेले थे। यहाँ तक कि वह अपने साथियों के साथ कारवाँ में चलना पसंद करता था, पर इससे भी राजमार्गों के लुटेरों को रोका नहीं जा सका। मुल्तान से दिल्ली की यात्रा के दौरान उसके कारवाँ पर आक्रमण हुआ, और उसके कई साथी यात्रियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा: जो जीवित बचे, जिनमें इब्न बतूता भी शामिल था, बुरी तरह से घायल हो गए थे।

2.2 जिज्ञासाओं का उपभोग

जैसाकि हमने देखा है कि इब्न बतूता एक हठीला यात्री था जिसने उत्तर पश्चिमी अफ़्रीका में अपने निवास स्थान मोरक्को वापस जाने से पूर्व कई वर्ष उत्तरी अफ़्रीका, पश्चिम एशिया, मध्य एशिया के कुछ भाग (हो सकता है वह रूस भी गया हो), भारतीय उपमहाद्वीप तथा चीन की यात्रा की थी। जब वह वापस आया तो स्थानीय शासक ने निर्देश दिए कि उसकी कहानियों को दर्ज किया जाए।

स्रोत 3

शिक्षा तथा मनोरंजन

इब्न जुज़ाई जिसे इब्न बतूता के श्रुतलेखों को लिखने के लिए नियुक्त किया गया था, अपनी प्रस्तावना में लिखता है:

(राजा के द्वारा) एक शालीन निर्देश दिया गया कि वे (इब्न बतूता) अपनी यात्रा में देखे गए शहरों का, तथा अपनी स्मृति में बैठ गई रोचक घटनाओं का एक वृत्तांत लिखवाएँ, और साथ ही विभिन्न देशों के शासकों में से जिनसे वे मिले, उनके महान साहित्यकारों के तथा उनके धर्मनिष्ठ संतों के विषय में बताएँ। तदनुसार उन्होंने इन सभी विषयों पर एक कथानक लिखवाया जिसने मस्तिष्क को मनोरंजन तथा कान और आँख को प्रसन्नता दी। साथ ही उन्होंने कई प्रकार के असाधारण विवरण जिनके प्रतिपादन से लाभप्रद उपदेश मिलते हैं, दिए तथा असाधारण चीज़ों के बारे में बताया जिनके संदर्भ से अभिरुचि जगी।

इब्न बतूता के पदचिह्नों पर

1400 से 1800 के बीच भारत आए यात्रियों ने फ़ारसी में कई यात्रा वृत्तांत लिखे। उसी समय भारत से मध्य एशिया, ईरान तथा ऑटोमन साम्राज्य की यात्रा करने वालों ने भी कभी-कभी अपने अनुभव लिखे। इन लेखकों ने अल-बिरूनी और इब्न बतूता के पदचिह्नों का अनुसरण किया। इनमें से कुछ ने इन पूर्ववर्ती लेखकों को पढ़ा भी था।

इनमें से सबसे प्रसिद्ध लेखकों में अब्दुर रज़्ज़ाक समरकंदी जिसने 1440 के दशक में दक्षिण भारत की यात्रा की थी, महमूद वली बल्खी, जिसने 1620 के दशक में व्यापक रूप से यात्राएँ की थीं तथा शेख़ अली हाज़िन जो 1740 के दशक में उत्तर भारत आया था, शामिल हैं। इनमें से कुछ लेखक भारत से सम्मोहित थे, और यहाँ तक कि उनमें से एक महमूद बल्ख़ी तो कुछ समय के लिए सन्यासी भी बन गया था। कुछ अन्य जैसे कि हाज़िन भारत से निराश हुए और यहाँ तक कि घृणा भी करने लगे। वे भारत में अपने लिए एक उत्सवीय स्वागत की आशा कर रहे थे। उनमें से अधिकांश ने भारत को अचंभों के देश के रूप में देखा।

चित्र 5.5
अठारहवीं शताब्दी का एक चित्र जिसमें यात्रियों को आग के आस-पास इकट्ठा हुआ दिखाया गया है।

➲ चर्चा कीजिए...

आपके विचार में अल-बिरूनी और इब्न बतूता के उद्देश्य किन मायनों में समान/भिन्न थे?

3. फ्रांस्वा बर्नियर : एक विशिष्ट चिकित्सक

लगभग 1500 ई. में भारत में पुर्तगालियों के आगमन के पश्चात उनमें से कई लोगों ने भारतीय सामाजिक रीति-रिवाजों तथा धार्मिक प्रथाओं के विषय में विस्तृत वृत्तांत लिखे। उनमें से कुछ चुनिंदा लोगों, जैसे जेसुइट रॉबर्टो नोबिली, ने तो भारतीय ग्रंथों को यूरोपीय भाषाओं में अनुवादित भी किया।

सबसे प्रसिद्ध यूरोपीय लेखकों में एक नाम दुआर्ते बरबोसा का है जिसने दक्षिण भारत में व्यापार और समाज का एक विस्तृत विवरण लिखा। कालान्तर में 1600 ई. के बाद भारत में आने वाले डच, अंग्रेज़ तथा फ्रांसीसी यात्रियों की संख्या बढ़ने लगी थी। इनमें एक प्रसिद्ध नाम फ्रांसीसी जौहरी ज्यौं-बैप्टिस्ट तैवर्नियर का था जिसने कम से कम छह बार भारत की यात्रा की। वह विशेष रूप से भारत की व्यापारिक स्थितियों से बहुत प्रभावित था और उसने भारत की तुलना ईरान और ऑटोमन साम्राज्य से की। इनमें से कई यात्री जैसे इतालवी चिकित्सक मनूकी, कभी भी यूरोप वापस नहीं गए और भारत में ही बस गए।

फ्रांस का रहने वाला फ्रांस्वा बर्नियर एक चिकित्सक, राजनीतिक दार्शनिक तथा एक इतिहासकार था। कई और लोगों की तरह ही वह मुग़ल साम्राज्य में अवसरों की तलाश में आया था। वह 1656 से 1668 तक भारत में बारह वर्ष तक रहा और मुग़ल दरबार से नज़दीकी रूप से जुड़ा रहा-पहले सम्राट शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह के चिकित्सक के रूप में, और बाद में मुग़ल दरबार के एक आर्मीनियाई अमीर दानिशमंद ख़ान के साथ एक बुद्धिजीवी तथा वैज्ञानिक के रूप में।

चित्र 5.6
सातवीं शताब्दी के एक चित्र में बर्नियर को यूरोपीय पोशाक में दर्शाया गया है।

3.1 "पूर्व" और "पश्चिम" की तुलना

बर्नियर ने देश के कई भागों की यात्रा की और जो देखा उसके विषय में विवरण लिखे। वह सामान्यतः भारत में जो देखता था उसकी तुलना यूरोपीय स्थिति से करता था। उसने अपनी प्रमुख कृति को फ्रांस के शासक लुई XIV को समर्पित किया था और उसके कई अन्य कार्य प्रभावशाली आधिकारियों और मंत्रियों को पत्रों के रूप में लिखे गए थे। लगभग प्रत्येक दृष्टांत में बर्नियर ने भारत की स्थिति को यूरोप में हुए विकास की तुलना में दयनीय बताया। जैसाकि हम देखेंगे उसका आकलन हमेशा सटीक नहीं था फिर भी जब उसके कार्य प्रकाशित हुए तो बर्नियर के वृत्तांत अत्यधिक प्रसिद्ध हुए।

चित्र 5.7
भारतीय पोशाक में तैवर्नियर का चित्र

स्रोत 4

मुग़ल सेना के साथ यात्रा

बर्नियर ने कई बार मुग़ल सेना के साथ यात्राएँ की। यहाँ सेना के कश्मीर कूच के संबंध में दिए गए विवरण से एक अंश दिया जा रहा है:

इस देश की प्रथा के अनुसार मुझसे दो अच्छे तुर्कमान घोड़े देखने की अपेक्षा की जाती है और मैं अपने साथ एक शक्तिशाली फ़ारसी ऊँट तथा चालक, अपने घोड़ों के लिए एक साईस, एक खानसामा तथा एक सेवक जो हाथ में पानी का पात्र लेकर मेरे घोड़े के आगे चलता है, भी रखता हूँ। मुझे हर उपयोगी वस्तु दी गई है जैसे औसत आकार का एक तंबू, एक दरी, चार बहुत कठोर पर हलके बेतों से बना एक छोटा बिस्तर, एक तकिया, एक बिछौना, भोजन के समय प्रयुक्त गोलाकार चमड़े के मेज़पोश, रँगे हुए कपड़ों के कुछ अंगौछे/नैपकिन, खाना बनाने के सामान से भरे तीन छोटे झोले जो सभी एक बड़े झोले में रखे हुए थे, और यह झोला भी एक लंबे-चौड़े तथा सुदृढ़ दुहरे बोरे अथवा चमड़े के पट्टों से बने जाल में रखा है। इसी तरह इस दुहरे बोरे में स्वामी और सेवकों की खाद्य सामग्री, साम्राज्य कपड़े तथा वस्त्र रखे गए हैं। मैंने ध्यानपूर्वक पाँच या छह दिनों के उपभोग के लिए बढ़िया चावल; सौंफ (एक प्रकार का शाक/पौधा) की सुगंध वाली मीठी रोटी, नींबू तथा चीनी का भंडार साथ रखा है। साथ ही मैं दही को टाँगने और पानी निकालने के लिए प्रयुक्त छोटे, लोहे के अंकुश वाला झोला लेना भी नहीं भूला हूँ। इस देश में नींबू के शरबत और दही से अधिक ताज़गी भरी वस्तु कोई नहीं मानी जाती।

➲ बर्नियर द्वारा दी गई सूची में कौन सी वस्तुएँ हैं जो आज आप यात्रा में साथ ले जाएँगे?

बर्नियर के कार्य फ्रांस में 1670-71 में प्रकाशित हुए थे, और अगले पाँच वर्षों के भीतर ही अंग्रेज़ी, डच, जर्मन तथा इतालवी भाषाओं में इनका अनुवाद हो गया। 1670 और 1725 के बीच उसका वृत्तांत फ्रांसीसी में आठ बार पुनर्मुद्रित हो चुका था और 1684 तक यह तीन बार अंग्रेज़ी में पुनर्मुद्रित हुआ था। यह अरबी और फ़ारसी वृत्तांतों जिनका प्रसार हस्तलिपियों के रूप में होता था और जो 1800 से पहले सामान्यतः प्रकाशित नहीं होते थे, के पूरी तरह विपरीत था।

भारत के विषय में विचारों का निर्माण व प्रसार

भारत के विषय में विचारों का सृजन और प्रसार कर यूरोपीय यात्रियों के वृत्तांतों ने उनकी पुस्तकों के प्रकाशन और प्रसार के माध्यम से यूरोपीय लोगों के लिए भारत की एक छवि के सृजन में सहायता की। बाद में, 1750 के बाद, जब शेख इतिसमुद्दीन तथा मिर्ज़ा अबु तालिब जैसे भारतीयों ने यूरोप की यात्रा की तो उन्हें यूरोपीय लोगों की भारतीय समाज की छवि का सामना करना पड़ा और उन्होंने तथ्यों की अपनी अलग व्याख्या के माध्यम से इसे प्रभावित करने का प्रयास किया।

➲ चर्चा कीजिए...

भारतीय भाषाओं में बहुत प्रचुर यात्रा वृत्तांत साहित्य उपलब्ध है। आप अपने घर में बोली जाने वाली भाषा के यात्री-लेखकों के विषय में पता कीजिए। किसी एक ऐसे वृत्तांत को पढ़िए और यात्री द्वारा देखे गए क्षेत्रों, उसने जो देखा और उसके द्वारा वृत्तांत लिखे जाने के कारणों पर टिप्पणी लिखिए।

4. एक अपरिचित संसार की समझ
अल-बिरूनी तथा संस्कृतवादी परंपरा

विशाल पहुँच वाली एक भाषा

संस्कृत के विषय में अल-बिरूनी यह लिखता है:

> यदि आप इस कठिनाई (संस्कृत भाषा सीखने की) से पार पाना चाहते हैं तो यह आसान नहीं होगा क्योंकि अरबी भाषा की तरह ही, शब्दों तथा विभक्तियों, दोनों में ही इस भाषा की पहुँच बहुत विस्तृत है। इसमें एक ही वस्तु के लिए कई शब्द, मूल तथा व्युत्पन्न दोनों, प्रयुक्त होते हैं और एक ही शब्द का प्रयोग कई वस्तुओं के लिए होता है, जिन्हें भली प्रकार समझने के लिए विभिन्न विशेषक संकेतपदों के माध्यम से एक दूसरे से अलग किया जाना आवश्यक है।

4.1 समझने में बाधाएँ और उन पर विजय

जैसा कि हमने देखा है, यात्रियों ने उपमहाद्वीप में जो भी देखा, सामान्यत: उसकी तुलना उन्होंने उन प्रथाओं से की जिनसे वे परिचित थे। प्रत्येक यात्री ने जो देखा उसे समझने के लिए एक अलग विधि अपनाई। उदाहरण के लिए, अल-बिरूनी अपने लिए निर्धारित उद्देश्य में निहित समस्याओं से परिचित था। उसने कई "अवरोधों" की चर्चा की है जो उसके अनुसार समझ में बाधक थे। इनमें से पहला अवरोध भाषा थी। उसके अनुसार संस्कृत, अरबी और फ़ारसी से इतनी भिन्न थी कि विचारों और सिद्धांतों को एक भाषा से दूसरी में अनुवादित करना आसान नहीं था।

उसके द्वारा चिह्नित दूसरा अवरोध धार्मिक अवस्था और प्रथा में भिन्नता थी। उसके अनुसार तीसरा अवरोध अभिमान था। यहाँ रोचक बात यह है कि इन समस्याओं की जानकारी होने पर भी, अल-बिरूनी लगभग पूरी तरह से ब्राह्मणों द्वारा रचित कृतियों पर आश्रित रहा। उसने भारतीय समाज को समझने के लिए अकसर वेदों, पुराणों, भगवद्गीता, पतंजलि की कृतियों तथा मनुस्मृति आदि से अंश उद्धृत किए।

4.2 अल-बिरूनी का जाति व्यवस्था का विवरण

अल-बिरूनी ने अन्य समुदायों में प्रतिरूपों की खोज के माध्यम से जाति व्यवस्था को समझने और व्याख्या करने का प्रयास किया। उसने लिखा कि प्राचीन फ़ारस में चार सामाजिक वर्गों को मान्यता थी: घुड़सवार और शासक वर्ग, भिक्षु, आनुष्ठानिक पुरोहित तथा चिकित्सक, खगोल शास्त्री तथा अन्य वैज्ञानिक और अंत में कृषक तथा शिल्पकार। दूसरे शब्दों में, वह यह दिखाना चाहता था कि ये सामाजिक वर्ग केवल भारत तक ही सीमित नहीं थे। इसके साथ ही, उसने यह दर्शाया कि इस्लाम में सभी लोगों को समान माना जाता था और उनमें भिन्नताएँ केवल धार्मिकता के पालन में थीं।

ईश्वर ही जानता है!

यात्री हमेशा उन्हें बताई गई बातों पर विश्वास नहीं करते थे। अल-बिरूनी को जब ऐसी लकड़ी की मूर्ति की कहानी के बारे में पता चला जो तथाकथित रूप से 216,432 वर्षों तक अस्तित्व में रही, तो वह पूछता है:

> फिर लकड़ी इतने लंबे समय तक अस्तित्व में कैसे रही होगी, विशेष रूप से ऐसे स्थान पर जहाँ हवा और मिट्टी काफ़ी आर्द्र होती है? ईश्वर ही जानता है!

जाति व्यवस्था के संबंध में ब्राह्मणवादी व्याख्या को मानने के बावजूद, अल-बिरूनी ने अपवित्रता की मान्यता को अस्वीकार किया। उसने लिखा कि हर वह वस्तु जो अपवित्र हो जाती है, अपनी पवित्रता की मूल स्थिति को पुन: प्राप्त करने का प्रयास करती है और सफल होती है। सूर्य हवा को स्वच्छ करता है और समुद्र में नमक पानी को गंदा होने से बचाता है। अल-बिरूनी ज़ोर देकर कहता है कि यदि ऐसा

नहीं होता तो पृथ्वी पर जीवन असंभव होता। उसके अनुसार जाति व्यवस्था में सन्निहित अपवित्रता की अवधारणा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध थी।

स्रोत 5

वर्ण व्यवस्था

अल-बिरूनी वर्ण व्यवस्था का इस प्रकार उल्लेख करता है:

सबसे ऊँची जाति ब्राह्मणों की है जिनके विषय में हिंदुओं के ग्रंथ हमें बताते हैं कि वे ब्रह्मन् के सिर से उत्पन्न हुए थे और क्योंकि ब्रह्म, प्रकृति नामक शक्ति का ही दूसरा नाम है, और सिर.... शरीर का सबसे ऊपरी भाग है, इसलिए ब्राह्मण पूरी प्रजाति के सबसे चुनिंदा भाग हैं। इसी कारण से हिंदू उन्हें मानव जाति में सबसे उत्तम मानते हैं।

अगली जाति क्षत्रियों की है जिनका सृजन, ऐसा कहा जाता है, ब्रह्मन् के कंधों और हाथों से हुआ था। उनका दर्जा ब्राह्मणों से अधिक नीचे नहीं है।

उनके पश्चात वैश्य आते हैं जिनका उद्‌भव ब्रह्मन् की जंघाओं से हुआ था।

शूद्र, जिनका सृजन उनके चरणों से हुआ था।

अंतिम दो वर्गों के बीच अधिक अंतर नहीं है। लेकिन इन वर्गों के बीच भिन्नता होने पर भी ये एक साथ एक ही शहरों और गाँवों में रहते हैं, समान घरों और आवासों में मिल-जुल कर।

➲ अल-बिरूनी ने जो लिखा उसकी तुलना अध्याय 3 स्रोत 6 से कीजिए। क्या आप कुछ समानताएँ और भिन्नताएँ देखते हैं? क्या आप को लगता है कि अल-बिरूनी भारतीय समाज के विषय में अपनी जानकारी और समझ के लिए केवल संस्कृत के ग्रंथों पर आश्रित रहा?

जैसाकि हमने देखा है, जाति व्यवस्था के विषय में अल-बिरूनी का विवरण उसके नियामक संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन से पूरी तरह से गहनता से प्रभावित था। इन ग्रंथों में ब्राह्मणों के दृष्टिकोण से जाति व्यवस्था को संचालित करने वाले नियमों का प्रतिपादन किया गया था। लेकिन वास्तविक जीवन में यह व्यवस्था इतनी भी कड़ी नहीं थी। उदाहरण के लिए, अंत्यज (शाब्दिक रूप में व्यवस्था से परे) नामक श्रेणियों से सामान्यतया यह अपेक्षा की जाती थी कि वे किसानों और ज़मींदारों के लिए सस्ता श्रम उपलब्ध करें (अध्याय 8 भी देखिए)। दूसरे शब्दों में, हालाँकि ये अक्सर सामाजिक प्रताड़ना का शिकार होते थे, फिर भी इन्हें आर्थिक तंत्र में शामिल किया जाता था।

➲ चर्चा कीजिए...

एक अन्य क्षेत्र से आए यात्री के लिए स्थानीय क्षेत्र की भाषा का ज्ञान कितना आवश्यक है?

5. इब्न बतूता तथा अनजाने को जानने की उत्कंठा

जब चौदहवीं शताब्दी में इब्न बतूता दिल्ली आया था उस समय तक पूरा उपमहाद्वीप एक ऐसे वैश्विक संचार तंत्र का हिस्सा बन चुका था जो पूर्व में चीन से लेकर पश्चिम में उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीका तथा यूरोप तक फैला हुआ था। जैसाकि हमने देखा है, इब्न बतूता ने स्वयं इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर यात्राएँ की, पवित्र पूजास्थलों को देखा, विद्वान लोगों तथा शासकों के साथ समय बिताया, कई बार क़ाज़ी के पद पर रहा, तथा शहरी केन्द्रों की विश्ववादी संस्कृति का उपभोग किया जहाँ अरबी, फ़ारसी, तुर्की तथा अन्य भाषाएँ बोलने वाले लोग विचारों, सूचनाओं तथा उपाख्यानों का आदान-प्रदान करते थे। इनमें अपनी धर्मनिष्ठता के लिए प्रसिद्ध लोगों की, ऐसे राजाओं जो निर्दयी तथा दयावान दोनों हो सकते थे की, तथा समान्य पुरुषों और महिलाओं तथा उनके जीवन की कहानियाँ सम्मिलित थीं; जो भी कुछ अपरिचित था उसे विशेष रूप से रेखांकित किया जाता था। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता था कि श्रोता अथवा पाठक सुदूर पर सुगम्य देशों के वृत्तांतों से पूरी तरह प्रभावित हो सकें।

5.1 नारियल तथा पान

इब्न बतूता की चित्रण की विधियों के कुछ बेहतरीन उदाहरण उन तरीकों में मिलते हैं जिनसे वह नारियल और पान, दो ऐसी वानस्पतिक उपज जिनसे उसके पाठक पूरी तरह से अपरिचित थे, का वर्णन करता है।

स्रोत 6

मानव सिर जैसे गिरिदार फल

नारियल का वर्णन इब्न बतूता इस प्रकार करता है:

> ये वृक्ष स्वरूप से सबसे अनोखे तथा प्रकृति में सबसे विस्मयकारी वृक्षों में से एक हैं। ये हू-बहू खजूर के वृक्ष जैसे दिखते हैं। इनमें कोई अंतर नहीं है सिवाय एक अपवाद के – एक से काष्ठफल प्राप्त होता है और दूसरे से खजूर। नारियल के वृक्ष का फल मानव सिर से मेल खाता है क्योंकि इसमें भी मानो दो आँखें तथा एक मुख है और अंदर का भाग हरा होने पर मस्तिष्क जैसा दिखता है और इससे जुड़ा रेशा बालों जैसा दिखाई देता है। वे इससे रस्सी बनाते हैं। लोहे की कीलों के प्रयोग के बजाय इनसे जहाज़ को सिलते हैं। वे इससे बर्तनों के लिए रस्सी भी बनाते हैं।

➲ किस तरह की तुलनाओं से इब्न बतूता अपने पाठकों को ये बताने की कोशिश कर रहे हैं कि नारियल देखने में कैसे होते हैं?

नारियल कैसे होते हैं – अपने पाठकों को यह समझाने के लिए इब्न बतूता किस तरह की तुलनाएँ प्रस्तुत करता है? क्या ये तुलनाएँ वाजिब हैं? वो किस तरह से ये दिखाता है कि नारियल असाधारण फल है? बतूता का वर्णन कितना सटीक है?

स्रोत 7

पान

इब्न बतूता द्वारा दिया गया पान का वर्णन पढ़िए:

> पान एक ऐसा वृक्ष है जिसे अंगूर-लता की तरह ही उगाया जाता है;... पान का कोई फल नहीं होता और इसे केवल इसकी पत्तियों के लिए ही उगाया जाता है... इसे प्रयोग करने की विधि यह है कि इसे खाने से पहले सुपारी ली जाती है; यह जायफल जैसी ही होती है पर इसे तब तक तोड़ा जाता है जब तक इसके छोटे-छोटे टुकड़े नहीं हो जाते; और इन्हें मुँह में रख कर चबाया जाता है। इसके बाद पान की पत्तियों के साथ इन्हें चबाया जाता है।

➲ आपके विचार में इसने इब्न बतूता का ध्यान क्यों खींचा? क्या आप इस विवरण में कुछ और जोड़ना चाहेंगे?

5.2 इब्न बतूता और भारतीय शहर

इब्न बतूता ने उपमहाद्वीप के शहरों को उन लोगों के लिए व्यापक अवसरों से भरपूर पाया जिनके पास आवश्यक इच्छा, साधन तथा कौशल था। ये शहर घनी आबादी वाले तथा समृद्ध थे सिवाय कभी-कभी युद्धों तथा अभियानों से होने वाले विध्वंस के। इब्न बतूता के वृत्तांत से ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश शहरों में भीड़-भाड़ वाली सड़कें तथा चमक-दमक वाले और रंगीन बाज़ार थे जो विविध प्रकार की वस्तुओं से भरे रहते थे। इब्न बतूता दिल्ली को एक बड़ा शहर, विशाल आबादी वाला तथा भारत में सबसे बड़ा बताता है। दौलताबाद (महाराष्ट्र में) भी कम नहीं था और आकार में दिल्ली को चुनौती देता था।

➲ स्थापत्य के कौन से अभिलक्षणों पर इब्न बतूता ने ध्यान दिया?

चित्र 5.8 तथा 5.9 से इस वर्णन की तुलना कीजिए।

स्रोत 8

देहली

दिल्ली, जिसे तत्कालीन ग्रंथों में अक्सर देहली नाम से उद्धृत किया गया था, का वर्णन इब्न बतूता इस प्रकार करता है:

दिल्ली बड़े क्षेत्र में फैला घनी जनसंख्या वाला शहर है... शहर के चारों ओर बनी प्राचीर अतुलनीय है, दीवार की चौड़ाई ग्यारह हाथ (एक हाथ लगभग 20 इंच के बराबर) है; और इसके भीतर रात्रि के पहरेदार तथा द्वारपालों के कक्ष हैं। प्राचीरों के अंदर खाद्यसामग्री, हथियार, बारूद, प्रक्षेपास्त्र तथा घेरेबंदी में काम आने वाली मशीनों के संग्रह के लिए भंडारगृह बने हुए थे... प्राचीर के भीतरी भाग में घुड़सवार तथा पैदल सैनिक शहर के एक से दूसरे छोर तक आते-जाते हैं। प्राचीर में खिड़कियाँ बनी हैं जो शहर की ओर खुलती हैं और इन्हीं खिड़कियों के माध्यम से प्रकाश अंदर आता है। प्राचीर का निचला भाग पत्थर से बना है जबकि ऊपरी भाग ईंटों से। इसमें एक दूसरे के पास-पास बनी कई मीनारें हैं। इस शहर के अट्ठाईस द्वार हैं जिन्हें दरवाज़ा कहा जाता है, और इनमें से बदायूँ दरवाज़ा सबसे विशाल है; मांडवी दरवाज़े के भीतर एक अनाज मंडी है; गुल दरवाज़े की बगल में एक फलों का बगीचा है... इस (देहली शहर) में एक बेहतरीन क़ब्रगाह है जिसमें बनी क़ब्रों के ऊपर गुंबद बनाई गई है और जिन क़ब्रों पर गुंबद नहीं है उनमें निश्चित रूप से मेहराब है। क़ब्रगाह में कंदाकार चमेली तथा जंगली गुलाब जैसे फूल उगाए जाते हैं; और फूल सभी मौसमों में खिले रहते हैं।

चित्र 5.8 (ऊपर)
तुग़लक़ाबाद, दिल्ली का एक मेहराब।

चित्र 5.9 (बाएँ)
बस्ती की किलेबंदी की दीवार का एक हिस्सा।

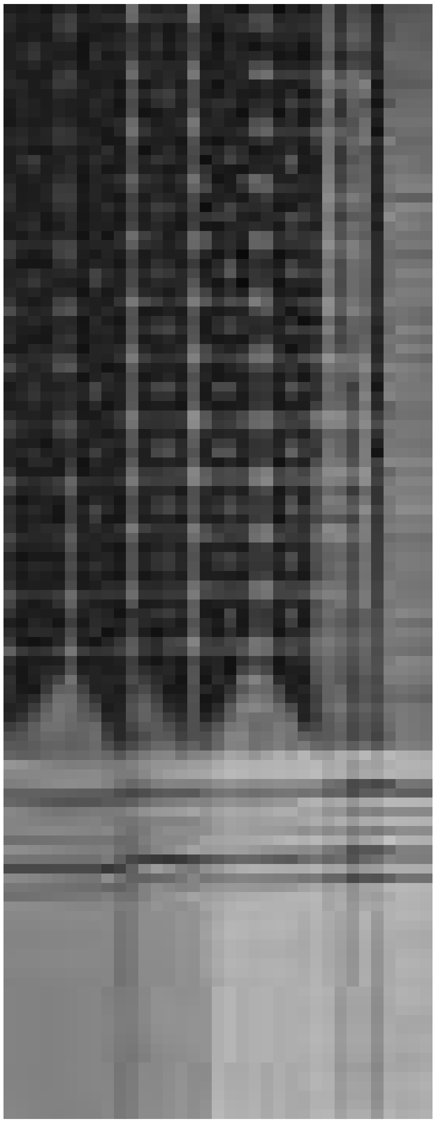

चित्र 5.10
इस तरह की इक़त बुनाई की अभिरचनाओं को उपमहाद्वीप तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के कई तटीय उत्पादन केंद्रों में अपनाया गया तथा उनमें सुधार किए गए।

➲ अपने वर्णन में इब्न बतूता ने इन गतिविधियों को उजागर क्यों किया?

बाज़ार मात्र आर्थिक विनिमय के स्थान ही नहीं थे बल्कि ये सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। अधिकांश बाज़ारों में एक मस्जिद तथा एक मंदिर होता था और उनमें से कम से कम कुछ में तो नर्तकों, संगीतकारों तथा गायकों के सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए स्थान भी चिह्नित थे।

हालाँकि इब्न बतूता की शहरों की समृद्धि का वर्णन करने में अधिक रुचि नहीं थी, इतिहासकारों ने उसके वृत्तांत का प्रयोग यह तर्क देने में किया है कि शहर अपनी संपत्ति का एक बड़ा भाग गाँवों से अधिशेष के अधिग्रहण से प्राप्त करते थे। इब्न बतूता ने पाया कि भारतीय कृषि के इतना अधिक उत्पादनकारी होने का कारण मिट्टी का उपजाऊपन था, जो किसानों के लिए वर्ष में दो फसलें उगाना संभव करता था। उसने यह भी ध्यान दिया कि उपमहाद्वीप व्यापार तथा वाणिज्य के अंतर एशियाई तंत्रों से भली-भाँति जुड़ा हुआ था। भारतीय माल की मध्य तथा दक्षिण-पूर्व एशिया, दोनों में बहुत माँग थी जिससे शिल्पकारों तथा व्यापारियों को भारी मुनाफ़ा होता था। भारतीय कपड़ों, विशेषरूप से सूती कपड़ा, महीन मलमल, रेशम, ज़री तथा साटन की अत्यधिक माँग थी। इब्न बतूता हमें बताता है कि महीन मलमल की कई किस्में इतनी अधिक मँहगी थीं कि उन्हें अमीर वर्ग के तथा बहुत धनाढ्य लोग ही पहन सकते थे।

स्रोत 9

बाज़ार में संगीत

यहाँ इब्न बतूता द्वारा दौलताबाद के विवरण से एक अंश दिया जा रहा है:

दौलताबाद में पुरुष और महिला गायकों के लिए एक बाज़ार है जिसे *ताराबबाद* कहते हैं। यह सबसे विशाल और सुंदर बाज़ारों में से एक है। यहाँ बहुत सी दुकानें हैं और प्रत्येक दुकान में एक ऐसा दरवाज़ा है जो मालिक के आवास में खुलता है... दुकानों को कालीनों से सजाया गया है और दुकान के मध्य में झूला है जिस पर गायिका बैठती है। वह सभी प्रकार की भव्य वस्तुओं से सजी होती है और उसकी सेविकाएँ उसे झूला झुलाती हैं। बाज़ार के मध्य में एक विशाल गुंबद खड़ा है जिसमें कालीन बिछाए गए हैं और सजाया गया है इसमें प्रत्येक गुरुवार सुबह की इबादत के बाद संगीतकारों के प्रमुख, अपने सेवकों और दासों के साथ स्थान ग्रहण करते हैं। गायिकाएँ एक के बाद एक झुंडों में उनके समक्ष आकर सूर्यास्त का गीत गाती और नाचती हैं जिसके पश्चात वे चले जाते हैं। इस बाज़ार में इबादत के लिए मस्जिदें बनी हुई हैं... हिंदू शासकों में से एक... जब भी बाज़ार से गुजरता था, गुंबद में उतर कर आता था और गायिकाएँ उसके समक्ष गान प्रस्तुत करती थी। यहाँ तक कि कई मुस्लिम शासक भी ऐसा ही करते थे। आपके विचार में इब्न बतूता ने अपने विवरण में इन गतिविधियों को रेखांकित क्यों किया?

5.3. संचार की एक अनूठी प्रणाली

व्यापारियों को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य विशेष उपाय करता था। लगभग सभी व्यापारिक मार्गों पर सराय तथा विश्राम गृह स्थापित किए गए थे। इब्न बतूता डाक प्रणाली की कार्यकुशलता देखकर चकित हुआ। इससे व्यापारियों के लिए न केवल लंबी दूरी तक सूचना भेजना और उधार प्रेषित करना संभव हुआ बल्कि अल्प सूचना पर माल भेजना भी। डाक प्रणाली इतनी कुशल थी कि जहाँ सिंध से दिल्ली की यात्रा में पचास दिन लगते थे वहीं गुप्तचरों की खबरें सुलतान तक इस डाक व्यवस्था के माध्यम से मात्र पाँच दिनों में पहुँच जाती थीं।

स्रोत 10

घोड़े पर और पैदल

डाक व्यवस्था का वर्णन इब्न बतूता इस प्रकार करता है:

भारत में दो प्रकार की डाक व्यवस्था है। अश्व डाक व्यवस्था जिसे *उलुक* कहा जाता है, हर चार मील की दूरी पर स्थापित राजकीय घोड़ों द्वारा चालित होती है। पैदल डाक व्यवस्था के प्रति मील तीन अवस्थान होते हैं; इसे *दावा* कहा जाता है, और यह एक मील का एक-तिहाई होता है... अब, हर तीन मील पर घनी आबादी वाला एक गाँव होता है जिसके बाहर तीन मंडप होते हैं जिनमें लोग कार्य आरंभ के लिए तैयार बैठे रहते हैं। उनमें से प्रत्येक के पास दो हाथ लंबी एक छड़ होती है जिसके ऊपर ताँबे की घंटियाँ लगी होती हैं। जब संदेशवाहक शहर से यात्रा आरंभ करता है तो एक हाथ में पत्र तथा दूसरे में घंटियों सहित छड़ लिए वह क्षमतानुसार तेज़ भागता है। जब मंडप में बैठे लोग घंटियों की आवाज़ सुनते हैं तो वे तैयार हो जाते हैं। जैसे ही संदेशवाहक उनके पास पहुँचता है, उनमें से एक उससे पत्र लेता है और वह छड़ हिलाते हुए पूरी ताकत से दौड़ता है, जब तक वह अगले दावा तक नहीं पहुँच जाता। पत्र के अपने गंतव्य स्थान तक पहुँचने तक यही प्रक्रिया चलती रहती है। यह पैदल डाक व्यवस्था अश्व डाक व्यवस्था से अधिक-तीव्र होती है; और इसका प्रयोग अकसर खुरासान के फलों के परिवहन के लिए होता है, जिन्हें भारत में बहुत पसंद किया जाता है।

➲ क्या आपको लगता है कि पैदल डाक व्यवस्था पूरे उपमहाद्वीप में संचालित की जाती होगी?

➲ चर्चा कीजिए...

इब्न बतूता लोगों के लिए ऐसी वस्तुओं और स्थितियों के वर्णन की समस्या को कैसे हल करता था, जिनसे वे अनभिज्ञ थे और जिन्हें उन्होंने अनुभव नहीं किया था?

एक विचित्र देश?

1440 के दशक में लिखा गया अब्दुर रज़्ज़ाक़ का यात्रा वृत्तांत संवेगों और अवबोधनों का एक रोचक मिश्रण है। एक ओर केरल में कालीकट (आधुनिक कोज़ीकोड), बंदरगाह पर उसने जो देखा उसे प्रशंसनीय नहीं माना, "यहाँ ऐसे लोग बसे हुए थे जिनकी कल्पना मैने कभी भी नहीं की थी।" इन लोगों को उसने एक 'विचित्र देश' बताया। कालांतर में अपनी भारत यात्रा के दौरान वह मंगलौर आया, और पश्चिमी घाट को पार किया। यहाँ उसने एक मंदिर देखा जिसने उसे प्रशंसा से भर दिया–

> मंगलौर से नौ मील के भीतर ही, मैंने एक ऐसा पूजा-स्थल देखा जो पूरे विश्व में अतुलनीय है। यह वर्गाकार था जिसकी प्रत्येक भुजा लगभग दस गज, ऊँचाई पाँच गज़ थी और जो चार द्वार-मंडपों के साथ, पूरी तरह से ढले हुए काँसे से ढँका हुआ था। प्रवेशद्वार के द्वार-मंडप में सोने की बनी एक मूर्ति थी जो मानव आकृति जैसी तथा आदमकद थी। इसकी दोनों आँखों में काले रंग के माणिक इतनी चतुराई से लगाए गए थे कि प्रतीत होता था मानो वह देख सकती हों। इस शिल्प और कारीगरी के क्या कहने!

6. बर्नियर तथा "अपविकसित" पूर्व

जहाँ इब्न बतूता ने हर उस चीज़ का वर्णन करने का निश्चय किया जिसने उसे अपने अनूठेपन के कारण प्रभावित और उत्सुक किया, वहीं बर्नियर एक भिन्न बुद्धिजीवी परंपरा से संबंधित था। उसने भारत में जो भी देखा, वह उसकी सामान्य रूप से यूरोप और विशेष रूप से फ्रांस में व्याप्त स्थितियों से तुलना तथा भिन्नता को उजागर करने के प्रति अधिक चिंतित था, विशेष रूप से वे स्थितियाँ जिन्हें उसने अवसादकारी पाया। उसका विचार नीति-निर्माताओं तथा बुद्धिजीवी वर्ग को प्रभावित करने का था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे ऐसे निर्णय ले सकें जिन्हें वह ''सही'' मानता था।

बर्नियर के ग्रंथ *ट्रैवल्स इन द मुग़ल एम्पायर* अपने गहन प्रेक्षण, आलोचनात्मक अंतर्दृष्टि तथा गहन चिंतन के लिए उल्लेखनीय है। उसके वृत्तांत में की गई चर्चाओं में मुग़लों के इतिहास को एक प्रकार के वैश्विक ढाँचे में स्थापित करने का प्रयास किया गया है। वह निरंतर मुग़लकालीन भारत की तुलना तत्कालीन यूरोप से करता रहा, सामान्यतया यूरोप की श्रेष्ठता को रेखांकित करते हुए। उसका भारत का चित्रण द्वि-विपरीतता के नमूने पर आधारित है, जहाँ भारत को यूरोप के प्रतिलोम के रूप में दिखाया गया है, या फिर यूरोप का ''विपरीत'' जैसा कि कुछ इतिहासकार परिभाषित करते हैं। उसने जो भिन्नताएँ महसूस कीं उन्हें भी पदानुक्रम के अनुसार क्रमबद्ध किया, जिससे भारत, पश्चिमी दुनिया को निम्न कोटि का प्रतीत हो।

6.1 भूमि स्वामित्व का प्रश्न

बर्नियर के अनुसार भारत और यूरोप के बीच मूल भिन्नताओं में से एक भारत में निजी भूस्वामित्व का अभाव था। उसका निजी स्वामित्व के गुणों में दृढ़ विश्वास था और उसने भूमि पर राजकीय स्वामित्व को राज्य तथा उसके निवासियों, दोनों के लिए हानिकारक माना। उसे यह लगा कि मुग़ल साम्राज्य में सम्राट सारी भूमि का स्वामी था जो इसे अपने अमीरों के बीच बाँटता था, और इसके अर्थव्यवस्था और समाज के लिए अनर्थकारी परिणाम होते थे। इस प्रकार का अवबोधन बर्नियर तक ही सीमित नहीं था बल्कि सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी के अधिकांश यात्रियों के वृत्तांतों में मिलता है।

राजकीय भूस्वामित्व के कारण, बर्नियर तर्क देता है, भूधारक अपने बच्चों को भूमि नहीं दे सकते थे। इसलिए वे उत्पादन के स्तर को बनाए रखने और उसमें बढ़ोत्तरी के लिए दूरगामी निवेश के प्रति उदासीन थे।

व्यापक गरीबी

पेलसर्ट नामक एक डच यात्री ने सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में उपमहाद्वीप की यात्रा की थी। बर्नियर की ही तरह वह भी लोगों में व्यापक गरीबी देखकर अचंभित था। लोग "इतनी अधिक तथा दुखद गरीबी" में रहते हैं कि "इनके जीवन को मात्र नितांत अभाव के घर तथा कठोर कष्ट दुर्भाग्य के आवास के रूप में चित्रित अथवा ठीक प्रकार से वर्णित किया जा सकता है।" राज्य को उत्तरदायी ठहराते हुए, वह कहता है: "कृषकों को इतना अधिक निचोड़ा जाता है कि पेट भरने के लिए उनके पास सूखी रोटी भी मुश्किल से बचती है।"

इस प्रकार, निजी भूस्वामित्व के अभाव ने ''बेहतर'' भूधारकों के वर्ग के उदय (जैसा कि पश्चिमी यूरोप में) को रोका जो भूमि के रखरखाव व बेहतरी के प्रति सजग रहते। इसी के चलते कृषि का समान रूप से विनाश, किसानों का असीम उत्पीड़न तथा समाज के सभी वर्गों के जीवन स्तर में अनवरत पतन की स्थिति उत्पन्न हुई है, सिवाय शासक वर्ग के।

स्रोत 11

ग़रीब किसान

यहाँ बर्नियर द्वारा ग्रामीण अंचल में कृषकों के विषय में दिए गए विवरण से एक उद्धरण दिया जा रहा है:

> हिंदुस्तान के साम्राज्य के विशाल ग्रामीण अंचलों में से कई केवल रेतीली भूमियाँ या बंजर पर्वत ही हैं। यहाँ की खेती अच्छी नहीं है और इन इलाकों की आबादी भी कम है। यहाँ तक कि कृषियोग्य भूमि का एक बड़ा हिस्सा भी श्रमिकों के अभाव में कृषि विहीन रह जाता है; इनमें से कई श्रमिक गवर्नरों द्वारा किए गए बुरे व्यवहार के फलस्वरूप मर जाते हैं। गरीब लोग जब अपने लोभी स्वामियों की माँगों को पूरा करने में असमर्थ हो जाते हैं तो उन्हें न केवल जीवन-निर्वहन के साधनों से वंचित कर दिया जाता है, बल्कि उन्हें अपने बच्चों से भी हाथ धोना पड़ता है, जिन्हें दास बना कर ले जाया जाता है। इस प्रकार ऐसा होता है कि इस अत्यंत निरंकुशता से हताश हो किसान गाँव छोड़कर चले जाते हैं।

इस उद्धरण में बर्नियर राज्य और समाज से संबंधित यूरोप में प्रचलित तत्कालीन विवादों में भाग ले रहा था, और उसका प्रयास था कि मुग़ल कालीन भारत से संबंधित उसका विवरण यूरोप में उन लोगों के लिए एक चेतावनी का कार्य करेगा जो निजी स्वामित्व की "अच्छाइयों" को स्वीकार नहीं करते थे।

➲ बर्नियर के अनुसार उपमहाद्वीप में किसानों को किन-किन समस्याओं से जूझना पड़ता था? क्या आपको लगता है कि उसका विवरण उसके पक्ष को सुदृढ़ करने में सहायक होता?

इसी के विस्तार के रूप में बर्नियर भारतीय समाज को दरिद्र लोगों के समरूप जनसमूह से बना वर्णित करता है, जो एक बहुत अमीर तथा शक्तिशाली शासक वर्ग, जो अल्पसंख्यक होते हैं, के द्वारा अधीन बनाया जाता है। गरीबों में सबसे गरीब तथा अमीरों में सबसे अमीर व्यक्ति के बीच नाममात्र को भी कोई सामाजिक समूह या वर्ग नहीं था। बर्नियर बहुत विश्वास से कहता है, "भारत में मध्य की स्थिति के लोग नहीं है।"

चित्र 5.11
उन्नीसवीं शताब्दी के ऐसे चित्रों ने अपरिवर्तनशील ग्रामीण समाज की धारणा को दृढ़ता प्रदान की।

स्रोत 12

यूरोप के लिए एक चेतावनी

बर्नियर चेतावनी देता है कि यदि यूरोपीय शासकों ने मुग़ल ढाँचे का अनुसरण किया तो :

> उनके राज्य इस प्रकार अच्छी तरह से जुते और बसे हुए, इतनी अच्छी तरह से निर्मित, इतने समृद्ध, इतने सुशिष्ट तथा फलते-फूलते नहीं रह जाएँगे जैसा कि हम उन्हें देखते हैं। दूसरी दृष्टि से हमारे शासक अमीर और शक्तिशाली हैं; और हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि उनकी और बेहतर और राजसी ढंग से सेवा हो। वे जल्द ही रेगिस्तान तथा निर्जन स्थानों के, भिखारियों तथा क्रूर लोगों के राजा बनकर रह जाएँगे जैसे कि वे जिनके विषय में मैंने वर्णन किया है। (मुग़ल शासक) ... हम उन महान शहरों और नगरों को खराब हवा के कारण न रहने योग्य अवस्था में पाएँगे, तथा विनाश की स्थिति में, जिनके जीर्णोद्धार की किसी को चिंता नहीं है, व्यक्त टीले और झाड़ियों अथवा घातक दलदल से भरे हुए खेत, जैसा कि पहले ही बताया गया है।

➲ बर्नियर सर्वनाश के दृश्य का चित्रण किस प्रकार करता है? जब आप अध्याय 8 तथा 9 पढ़ लें, तब आप इस विवरण पर फिर आइएगा और फिर इसका आकलन कीजिएगा।

तो बर्नियर ने मुग़ल साम्राज्य को इस रूप में देखा–इसका राजा "भिखारियों और क्रूर लोगों" का राजा था; इसके शहर और नगर विनष्ट तथा "खराब हवा" से दूषित थे; और इसके खेत "झाड़ीदार" तथा "घातक दलदल" से भरे हुए थे और इसका मात्र एक ही कारण था–राजकीय भूस्वामित्व।

आश्चर्य की बात यह है कि एक भी सरकारी मुग़ल दस्तावेज़ यह इंगित नहीं करता कि राज्य ही भूमि का एकमात्र स्वामी था। उदाहरण के लिए, सोलहवीं शताब्दी में अकबर के काल का सरकारी इतिहासकार अबुल फ़ज़्ल भूमि राजस्व को 'राजत्व का पारिश्रमिक' बताता है जो राजा द्वारा अपनी प्रजा को सुरक्षा प्रदान करने के बदले की गई माँग प्रतीत होती है न कि अपने स्वामित्व वाली भूमि पर लगान। ऐसा संभव है कि यूरोपीय यात्री ऐसी माँगों को लगान मानते थे क्योंकि भूमि राजस्व की माँग अकसर बहुत अधिक होती थी। लेकिन असल में यह न तो लगान था, न ही भूमिकर, बल्कि उपज पर लगने वाला कर था (अधिक जानकारी के लिए अध्याय 8 देखिए)।

बर्नियर के विवरणों ने अठारहवीं शताब्दी से पश्चिमी विचारकों को प्रभावित किया। उदाहरण के लिए, फ्रांसीसी दार्शनिक मॉन्टेस्क्यू ने उसके वृत्तांत का प्रयोग प्राच्य निरंकुशवाद के सिद्धांत को विकसित करने में किया, जिसके अनुसार एशिया (प्राच्य अथवा पूर्व) में शासक अपनी प्रजा के ऊपर निर्बाध प्रभुत्व का उपभोग करते थे, जिसे दासता और गरीबी की स्थितियों में रखा जाता था। इस तर्क का आधार यह था कि सारी भूमि पर राजा का स्वामित्व होता था तथा निजी संपत्ति अस्तित्व में नहीं थी। इस दृष्टिकोण के अनुसार राजा और उसके अमीर वर्ग को छोड़ प्रत्येक व्यक्ति मुश्किल से गुजर-बसर कर पाता था।

उन्नीसवीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स ने इस विचार को एशियाई उत्पादन शैली के सिद्धांत के रूप में और आगे बढ़ाया। उसने यह तर्क दिया कि भारत (तथा अन्य एशियाई देशों) में उपनिवेशवाद से पहले अधिशेष का अधिग्रहण राज्य द्वारा होता था। इससे एक ऐसे समाज का उद्भव हुआ जो बड़ी संख्या में स्वायत्त तथा (आंतरिक रूप से) समतावादी ग्रामीण समुदायों से बना था। इन ग्रामीण समुदायों पर राजकीय दरबार का नियंत्रण होता था और जब तक अधिशेष की आपूर्ति निर्विघ्न रूप से जारी रहती थी, इनकी स्वायत्तता का सम्मान किया जाता था। यह एक निष्क्रिय प्रणाली मानी जाती थी।

परंतु, जैसा कि हम देखेंगे (अध्याय 8) ग्रामीण समाज का यह चित्रण सच्चाई से बहुत दूर था। बल्कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में ग्रामीण समाज में चारित्रिक रूप से बड़े पैमाने पर सामाजिक और आर्थिक विभेद था। एक ओर बड़े ज़मींदार थे जो भूमि पर उच्चाधिकारों का उपभोग करते थे और दूसरी ओर "अस्पृश्य" भूमिविहीन श्रमिक (बलाहार)। इन दोनों

के बीच में बड़ा किसान था जो किराए के श्रम का प्रयोग करता था और माल उत्पादन में संलग्न रहता था; साथ ही अपेक्षाकृत छोटे किसान भी थे जो मुश्किल से ही निर्वहन लायक उत्पादन कर पाते थे।

6.3 एक अधिक जटिल सामाजिक सच्चाई

हालाँकि मुग़ल राज्य को निरंकुश रूप देने की तन्मयता स्पष्ट है, लेकिन उसके विवरण कभी-कभी एक अधिक जटिल सामाजिक सच्चाई की ओर इशारा करते हैं। उदाहरण के लिए वह कहता है कि शिल्पकारों के पास अपने उत्पादों को बेहतर बनाने का कोई प्रोत्साहन नहीं था क्योंकि मुनाफ़े का अधिग्रहण राज्य द्वारा कर लिया जाता था। इसलिए उत्पादन हर जगह पतनोन्मुख था। साथ ही वह यह भी मानता है कि पूरे विश्व से बड़ी मात्रा में बहुमूल्य धातुएँ भारत में आती थीं क्योंकि उत्पादों का सोने और चाँदी के बदले निर्यात होता था। वह एक समृद्ध व्यापारिक समुदाय जो लंबी दूरी के विनिमय से संलग्न था, के अस्तित्व को भी रेखांकित करता है।

स्रोत 13

एक भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य

बर्नियर के वृत्तांत से लिए गए इस उद्धरण को पढ़िए जिसमें कृषि तथा शिल्प-उत्पादन दोनों का विवरण दिया गया है:

यह ध्यान देना आवश्यक है कि इस देश के विस्तृत भू-भाग का अधिकांश भाग अत्यधिक उपजाऊ है; उदाहरण के लिए, बंगाल का विशाल राज्य जो मिस्र से न केवल चावल, मकई तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में, बल्कि उन अनगिनत वाणिज्यिक वस्तुओं के संदर्भ में, जो मिस्र में भी नहीं उगाई जातीं, जैसे रेशम, कपास तथा नील कहीं आगे हैं। भारत के कई ऐसे भाग भी हैं जहाँ जनसंख्या पर्याप्त है और भूमि पर खेती अच्छी होती है; और जहाँ एक शिल्पकार जो हालाँकि मूल रूप से आलसी होता है, आवश्यकता से या किसी अन्य कारण से अपने आप को गलीचों, ज़री, कसीदाकारी कढ़ाई, सोने और चाँदी के वस्त्रों, तथा विभिन्न प्रकार के रेशम तथा सूती वस्त्रों, जो देश में भी प्रयोग होते हैं और विदेश में निर्यात किए जाते हैं, के निर्माण का कार्य करने के लिए बाध्य हो जाता है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पूरे विश्व के सभी भागों में संचलन के पश्चात सोना और चाँदी भारत में आकर कुछ हद तक खो जाता है।

➲ इस उद्धरण में दिया गया विवरण स्रोत 11 में दिए गए विवरण से किन मायनों में भिन्न है?

चित्र 5.12
सोने का चम्मच जिसमें पन्ने एवं माणिक जड़े हुए हैं। मुग़लकालीन शिल्पकारों की ख़ास दक्षता का यह अच्छा उदाहरण है।

स्रोत 14

राजकीय कारखाने

संभवत: बर्नियर एकमात्र ऐसा इतिहासकार है जो राजकीय कारखानों की कार्यप्रणाली का विस्तृत विवरण प्रदान करता है:

> कई स्थानों पर बड़े कक्ष दिखाई देते हैं जिन्हें कारखाना अथवा शिल्पकारों की कार्यशाला कहते हैं। एक कक्ष में कसीदाकार एक मास्टर के निरीक्षण में व्यस्तता से कार्यरत रहते हैं। एक अन्य में आप सुनारों को देखते हैं; तीसरे में, चित्रकार; चौथे में, प्रलाक्षा रस का रोगन लगाने वाले; पाँचवें में बढ़ई, खरादी, दर्जी तथा जूते बनाने वाले; छठे में रेशम, जरी तथा महीन मलमल का काम करने वाले...
>
> शिल्पकार अपने कारखानों में हर रोज़ सुबह आते हैं जहाँ वे पूरे दिन कार्यरत रहते हैं; और शाम को अपने-अपने घर चले जाते हैं। इसी निश्चेष्ट नियमित ढंग से उनका समय बीतता जाता है; कोई भी जीवन की उन स्थितियों में सुधार करने का इच्छुक नहीं है जिनमें वह पैदा हुआ था।

➲ बर्नियर इस विचार को किस प्रकार प्रेषित करता है कि हालाँकि हर तरफ़ बहुत सक्रियता है पर उन्नति बहुत कम?

सत्रहवीं शताब्दी में जनसंख्या का लगभग पंद्रह प्रतिशत भाग नगरों में रहता था। यह औसतन उसी समय पश्चिमी यूरोप की नगरीय जनसंख्या के अनुपात से अधिक था। इतने पर भी, बर्नियर मुग़लकालीन शहरों को "शिविर नगर" कहता है, जिससे उसका आशय उन नगरों से था जो अपने अस्तित्व और बने रहने के लिए राजकीय शिविर पर निर्भर थे। उसका विश्वास था कि ये राजकीय दरबार के आगमन के साथ अस्तित्व में आते थे और इसके कहीं और चले जाने के बाद तेज़ी से पतनोन्मुख हो जाते थे। उसने यह भी सुझाया कि इनकी सामाजिक और आर्थिक नीव व्यवहार्य नहीं होती थी और ये राजकीय प्रश्रय पर आश्रित रहते थे।

भूस्वामित्व के प्रश्न की तरह ही बर्नियर एक अतिसरलीकृत चित्रण प्रस्तुत कर रहा था। वास्तव में सभी प्रकार के नगर अस्तित्व में थे: उत्पादन केंद्र, व्यापारिक नगर, बंदरगाह नगर, धार्मिक केंद्र, तीर्थ स्थान आदि। इनका अस्तित्व समृद्ध व्यापारिक समुदायों तथा व्यावसायिक वर्गों के अस्तित्व का सूचक है।

व्यापारी अक्सर मज़बूत सामुदायिक अथवा बंधुत्व के संबंधों से जुड़े होते थे और अपनी जाति तथा व्यावसायिक संस्थाओं के माध्यम से संगठित रहते थे। पश्चिमी भारत में ऐसे समूहों को महाजन कहा जाता था और उनके मुखिया को सेठ। अहमदाबाद जैसे शहरी केंद्रों में सभी महाजनों का सामूहिक प्रतिनिधित्व व्यापारिक समुदाय के मुखिया द्वारा होता था जिसे नगर सेठ कहा जाता था।

अन्य शहरी समूहों में व्यावसायिक वर्ग जैसे चिकित्सक (हकीम अथवा वैद्य), अध्यापक (पंडित या मुल्ला), अधिवक्ता (वकील), चित्रकार, वास्तुविद, संगीतकार, सुलेखक आदि सम्मिलित थे। जहाँ कई राजकीय प्रश्रय पर आश्रित थे, कई अन्य संरक्षकों या भीड़भाड़ वाले बाज़ार में आम लोगों की सेवा द्वारा जीवनयापन करते थे।

➲ चर्चा कीजिए...

आपके विचार में बर्नियर जैसे विद्वानों ने भारत की यूरोप से तुलना क्यों की?

7. महिलाएँ : दासियाँ, सती तथा श्रमिक

जिन यात्रियों ने अपने लिखित वृत्तांत छोड़े वे सामान्यतया पुरुष थे जिन्हें उपमहाद्वीप में महिलाओं की स्थिति का विषय रुचिकर और कभी-कभी जिज्ञासापूर्ण लगता था। कभी-कभी वे सामाजिक पक्षपात को "सामान्य" परिस्थिति मान लेते थे। उदाहरण के लिए, बाज़ारों में दास किसी भी अन्य वस्तु की तरह खुले आम बेचे जाते थे और नियमित रूप से भेंटस्वरूप दिए जाते थे। जब इब्न बतूता सिंध पहुँचा तो उसने सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के लिए भेंटस्वरूप "घोड़े, ऊँट तथा दास" खरीदे। जब वह मुल्तान पहुँचा तो उसने गवर्नर को "किशमिश के बादाम के साथ एक दास और घोड़ा" भेंट के रूप में दिए। इब्न बतूता बताता है कि मुहम्मद बिन तुग़लक नसीरुद्दीन नामक धर्मोपदेशक के प्रवचन से इतना प्रसन्न हुआ कि उसे "एक लाख टके (मुद्रा) तथा दो सौ दास" दे दिए।

इब्न बतूता के विवरण से प्रतीत होता है कि दासों में काफ़ी विभेद था। सुल्तान की सेवा में कार्यरत कुछ दासियाँ संगीत और गायन में निपुण थीं, और इब्न बतूता सुल्तान की बहन की शादी के अवसर पर उनके प्रदर्शन से खूब आनंदित हुआ। सुल्तान अपने अमीरों पर नज़र रखने के लिए दासियों को भी नियुक्त करता था।

दासों को सामान्यतः घरेलू श्रम के लिए ही इस्तेमाल किया जाता था, और इब्न बतूता ने इनकी सेवाओं को, पालकी या डोले में पुरुषों और महिलाओं को ले जाने में विशेष रूप से अपरिहार्य पाया। दासों की कीमत, विशेष रूप से उन दासियों की, जिनकी आवश्यकता घरेलू श्रम के लिए थी, बहुत कम होती थी और अधिकांश परिवार जो उन्हें रख पाने में समर्थ थे, कम से कम एक या दो को तो रखते ही थे।

सभी समकालीन यूरोपीय यात्रियों तथा लेखकों के लिए, महिलाओं से किया जाने वाला बर्ताव अकसर पश्चिमी तथा पूर्वी समाजों के बीच भिन्नता का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक माना जाता था। इसलिए यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि बर्नियर ने सती प्रथा को विस्तृत विवरण के लिए चुना। उसने लिखा कि हालाँकि कुछ महिलाएँ प्रसन्नता से मृत्यु को गले लगा लेती थीं, अन्य को मरने के लिए बाध्य किया जाता था।

लेकिन महिलाओं का जीवन सती प्रथा के अलावा कई और चीज़ों के चारों ओर घूमता था। उनका श्रम कृषि तथा कृषि के

स्रोत 15

दासियाँ

इब्न बतूता हमें बताता है:

> यह सम्राट की आदत है... हर बड़े या छोटे अमीर के साथ अपने दासों में से एक को रखने की जो उसके अमीरों की मुखबिरी करता है। वह महिला सफाई कर्मचारियों को भी नियुक्त करता है जो बिना बताए घर में दाखिल हो जाती हैं: और दासियों के पास जो भी जानकारी होती है, वे उन्हें दे देती हैं।

अधिकांश दासियों को हमलों और अभियानों के दौरान बलपूर्वक प्राप्त किया जाता था।

स्रोत 16

सती बालिका

यह संभवतः बर्नियर के वृत्तांत के सबसे मार्मिक विवरणों में से एक है:

> लाहौर में मैंने एक बहुत ही सुंदर अल्पवयस्क विधवा जिसकी आयु मेरे विचार में बारह वर्ष से अधिक नहीं थी, की बलि होते हुए देखी। उस भयानक नर्क की ओर जाते हुए वह असहाय छोटी बच्ची जीवित से अधिक मृत प्रतीत हो रही थी; उसके मस्तिष्क की व्यथा का वर्णन नहीं किया जा सकता; वह काँपते हुए बुरी तरह से रो रही थी; लेकिन तीन या चार ब्राह्मण, एक बूढ़ी औरत, जिसने उसे अपनी आस्तीन के नीचे दबाया हुआ था, की सहायता से उस अनिच्छुक पीड़िता को जबरन घातक स्थल की ओर ले गए, उसे लकड़ियों पर बैठाया, उसके हाथ और पैर बाँध दिए ताकि वह भाग न जाए और इस स्थिति में उस मासूम प्राणी को ज़िन्दा जला दिया गया। मैं अपनी भावनाओं को दबाने में और उनके कोलाहलपूर्ण तथा व्यर्थ के क्रोध को बाहर आने से रोकने में असमर्थ था...

➲ चर्चा कीजिए

आपके विचार में सामान्य महिला श्रमिकों के जीवन ने इब्न बतूता और बर्नियर जैसे यात्रियों का ध्यान अपनी ओर क्यों नहीं खींचा?

अलावा होने वाले उत्पादन, दोनों में महत्त्वपूर्ण था। व्यापारिक परिवारों से आने वाली महिलाएँ व्यापारिक गतिविधियों में हिस्सा लेती थीं, यहाँ तक कि कभी-कभी वाणिज्यिक विवादों को अदालत के सामने भी ले जाती थीं। अतः यह असंभाव्य लगता है कि महिलाओं को उनके घरों के खास स्थानों तक परिसीमित कर रखा जाता था।

आपने देखा होगा कि यात्री वृत्तांत इन शताब्दियों में पुरुषों और महिलाओं के जीवन की एक रोचक झाँकी प्रस्तुत करते हैं। इन वृत्तांतों से हम बहुत सी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, पर इनमें सामाजिक जीवन के कई आयाम अनछुए रह जाते हैं, या फिर एक दृष्टिकोण विशेष से देखे जाते हैं जिन्हें इन वृत्तांतों को पढ़ते हुए ध्यान में रखना आवश्यक है।

साथ ही उपमहाद्वीप के पुरुषों (और संभवतः महिलाओं) के अनुभव और प्रेक्षण अपेक्षाकृत अज्ञात हैं जिन्होंने समुद्रों और पर्वतों को पार किया और उपमहाद्वीप से परे क्षेत्रों में साहसिक यात्राएँ कीं। उन्होंने क्या देखा और सुना? सुदूर क्षेत्रों के लोगों के साथ उनके संबंध किस प्रकार ढले। वे किन भाषाओं का प्रयोग करते थे? उम्मीद है कि इन पर और अन्य प्रश्नों पर आने वाले वर्षों में इतिहासकार योजनापूर्ण तरीके से ध्यान केंद्रित करेंगे।

चित्र 5.13
मथुरा से मूर्ति का एक नमूना जिसमें यात्री दर्शाए गए हैं।

➲ यहाँ यातायात के कौन-कौन से साधन अपनाए गए हैं?

काल-रेखा
कुछ यात्री जिन्होंने वृत्तांत छोड़े

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियाँ	
973–1048	मोहम्मद इब्न अहमद अबू रेहान अल बिरूनी (उज़बेकिस्तान से)
तेरहवीं शताब्दी	
1254–1323	मार्को पोलो (इटली से)
चौदहवीं शताब्दी	
1304–77	इब्न बतूता (मोरक्को से)
पंद्रहवीं शताब्दी	
1413–82	अब्द अल-रज़्ज़ाक कमाल अल-दिन इब्न इस्हाक़ अल-समरक़ंदी (समरक़ंद से)
1466–72 (भारत में बिताए वर्ष)	अफानासी निकितिच निकितिन (पंद्रहवी शताब्दी, रूस से)
सोलहवीं शताब्दी	
1518 (भारत की यात्रा)	दूरते बारबोसा, मृत्यु 1521 (पुर्तगाल से)
1562 (मृत्यु का वर्ष)	सयदी अली रेइस (तुर्की से)
1536–1600	अंतोनियो मानसेरेते (स्पेन से)
सत्रहवीं शताब्दी	
1626–31 (भारत में बिताए वर्ष)	महमूद वली बलख़ी (बल्ख़ से)
1600–67	पीटर मुंडी (इंग्लैंड से)
1605–89	ज्यौं बैप्टिस्ट तैवर्नियर (फ्रांस से)
1620–88	फ्रांस्वा बर्नीयर (फ्रांस से)

नोट : जहाँ कोई अन्य संकेत नहीं है तिथियाँ यात्री के जीवन काल को बता रही हैं।

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. *किताब-उल-हिन्द* पर एक लेख लिखिए।
2. इब्न बतूता और बर्नियर ने जिन दृष्टिकोणों से भारत में अपनी यात्राओं के वृत्तांत लिखे थे, उनकी तुलना कीजिए तथा अंतर बताइए।
3. बर्नियर के वृत्तांत से उभरने वाले शहरी केंद्रों के चित्र पर चर्चा कीजिए।
4. इब्न बतूता द्वारा दास प्रथा के संबंध में दिए गए साक्ष्यों का विवेचन कीजिए।
5. सती प्रथा के कौन से तत्वों ने बर्नियर का ध्यान अपनी ओर खींचा?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. जाति व्यवस्था के संबंध में अल-बिरूनी की व्याख्या पर चर्चा कीजिए।
7. क्या आपको लगता है कि समकालीन शहरी केंद्रों में जीवन-शैली की सही जानकारी प्राप्त करने में इब्न बतूता का वृत्तांत सहायक है? अपने उत्तर के कारण दीजिए।
8. चर्चा कीजिए कि बर्नियर का वृत्तांत किस सीमा तक इतिहासकारों को समकालीन ग्रामीण समाज को पुनर्निर्मित करने में सक्षम करता है?
9. यह बर्नियर से लिया गया एक उद्धरण है:

   > ऐसे लोगों द्वारा तैयार सुंदर शिल्पकारीगरी के बहुत उदाहरण हैं, जिनके पास औज़ारों का अभाव है, और जिनके विषय में यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने किसी निपुण कारीगर से कार्य सीखा है। कभी-कभी वे यूरोप में तैयार वस्तुओं की इतनी निपुणता से नकल करते हैं कि असली और नकली के बीच अंतर कर पाना मुश्किल हो जाता है। अन्य वस्तुओं में, भारतीय लोग बेहतरीन बंदूकें, और ऐसे सुंदर स्वर्णाभूषण बनाते हैं कि संदेह होता है कि कोई यूरोपीय स्वर्णकार कारीगरी के इन उत्कृष्ट नमूनों से बेहतर बना सकता है। मैं अकसर इनके चित्रों की सुंदरता, मृदुलता तथा सूक्ष्मता से आकर्षित हुआ हूँ।

   उसके द्वारा अलिखित शिल्प कार्यों को सूचीबद्ध कीजिए तथा इसकी तुलना अध्याय में वर्णित शिल्प गतिविधियों से कीजिए।

मानचित्र कार्य

10. विश्व के सीमारेखा मानचित्र पर उन देशों को चिह्नित कीजिए जिनकी यात्रा इब्न बतूता ने की थी। कौन-कौन से समुद्रों को उसने पार किया होगा?

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. अपने ऐसे किसी बड़े संबंधी (माता/पिता/दादा-दादी तथा नाना-नानी/चाचा/चाची) का साक्षात्कार कीजिए जिन्होंने आपके नगर अथवा गाँव के बाहर यात्राएँ की हों। पता कीजिए (क) वे कहाँ गए थे (ख) उन्होंने यात्रा कैसे की (ग) उन्हें कितना समय लगा (घ) उन्होंने यात्रा क्यों की (ङ) क्या उन्होंने किसी कठिनाई का सामना किया। ऐसी समानताओं और भिन्नताओं को सूचीबद्ध कीजिए जो उन्होंने अपने रहने के स्थान और यात्रा किए गए स्थानों के बीच देखीं, विशेष रूप से भाषा, पहनावा, खानपान, रीति-रिवाज, इमारतों, सड़कों तथा पुरुषों और महिलाओं की जीवन-शैली के संदर्भ में। अपने द्वारा हासिल जानकारियों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

12. इस अध्याय में उल्लिखित यात्रियों में से एक के जीवन तथा कृतियों के विषय में और अधिक जानकारी हासिल कीजिए। उनकी यात्राओं पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए विशेष रूप से इस बात पर जोर देते हुए कि उन्होंने समाज का कैसा विवरण किया है तथा इनकी तुलना अध्याय में दिए गए उद्धरणों से कीजिए।

चित्र 5.14
इस चित्र में आराम करते हुए यात्रियों को दिखाया गया है

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

मुज़फ्फर आलम एंड संजय सुब्रमण्यम 2006, *इंडो-पर्सियन ट्रैवेल्स इन दि एज ऑफ डिस्कवरीज़,* 1400-1800 कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

कैथरीन अशर एंड सिंथिया टालबोट 2006, *इंडिया बिफोर यूरोप,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

फ्रांस्वा बर्नियर, *ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर* 1656-1668 ई., लो प्राइस पब्लिकेशंस, न्यू दिल्ली

एच.ए.आर. गिब्ब (संपा.), 1993 *दि ट्रैवेल्स ऑफ इब्न बतूता* मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली

मुशीरुल हसन (संपा.), 2005 *वेस्टवर्ड बाउंड: ट्रैवेल्स ऑफ मिर्ज़ा अबू तालिब,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

एच. के. कौल (संपा.), 1997 *ट्रैवेलर्स इंडिया–एन एंथोलाजी* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू दिल्ली

ज्यौं बैप्टिस्ट तैवर्नियर, 1993, *ट्रैवेल्स इन इंडिया,* मुंशीराम मनोहरलाल दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
www.edumaritime.org

विषय छः

भक्ति-सूफ़ी परंपराएँ

धार्मिक विश्वासों में बदलाव और श्रद्धा ग्रंथ (लगभग आठवीं से अठारहवीं सदी तक)

अध्याय चार में हमने पढ़ा कि प्रथम सहस्राब्दी के मध्य तक आते-आते भारतीय उपमहाद्वीप का परिवेश धार्मिक इमारतों – स्तूप, विहार और मंदिरों में चिह्नित हो गया। यदि यह इमारतें किसी विशेष धार्मिक विश्वासों और आचरणों का प्रतीक हैं, वहीं अन्य धार्मिक विश्वासों का पुनर्निर्माण हम साहित्यिक परंपरा जैसे पुराणों के आधार पर भी कर सकते हैं जिनका वर्तमान स्वरूप लगभग उसी समय बनना आरंभ हो गया था। इसके अलावा ऐसे धार्मिक विश्वास भी हैं जो साहित्यिक और दृष्टिक दोनों ही दस्तावेज़ों में अत्यंत धूमिल हैं।

इस काल के नूतन साहित्यिक स्रोतों में संत कवियों की रचनाएँ हैं जिनमें उन्होंने जनसाधारण की क्षेत्रीय भाषाओं में मौखिक रूप से अपने को व्यक्त किया था। यह रचनाएँ जो अधिकतर संगीतबद्ध हैं संतों के अनुयायियों द्वारा उनकी मृत्यु के उपरांत संकलित की गई। ये परंपराएँ प्रवाहमान थीं–अनुयायियों की कई पीढ़ियों ने मूल संदेश का न केवल विस्तार किया अपितु उन विचारों को, जो भिन्न राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में संदिग्ध व अनावश्यक लगे, उन्हें या तो परिवर्तित कर दिया अथवा त्याग दिया। इन स्रोतों का मूल्यांकन इतिहासकारों के लिए एक चुनौती है।

इतिहासकार इन संत कवियों के अनुयायियों (जो उनके संप्रदाय से थे) द्वारा लिखी गई उनकी जीवनियों का भी इस्तेमाल करते हैं। हालाँकि यह जीवनियाँ अक्षरशः सत्य नहीं हैं तथापि इनसे यह ज्ञात होता है कि अनुयायी इन पथ-प्रदर्शक स्त्री पुरुषों के जीवन को किस तरह से देखते थे।

जैसाकि हम देखेंगे कि ये स्रोत एक क्रियात्मक और विविध दृश्य योजना को समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। आइए अब हम इसके कुछ मूल तत्वों को बारीकी से देखते हैं।

चित्र 6.1
मणिक्वचक्कार की बारहवीं शताब्दी की कांस्य मूर्ति। ये शिव के अनुयायी थे और तमिल में भक्तिगान की रचना करते थे।

1. धार्मिक विश्वासों और आचरणों की गंगा-जमुनी बनावट

संभवत: इस काल की सबसे प्रभावी विशिष्टता यह है कि साहित्य और मूर्तिकला दोनों में ही अनेक तरह के देवी-देवता अधिकाधिक दृष्टिगत होते हैं। एक स्तर पर यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि विष्णु, शिव और देवी, जिन्हें अनेक रूपों में व्यक्त किया गया था, की आराधना की परिपाटी न केवल चलती रही अपितु और अधिक विस्तृत हुई।

1.1 पूजा प्रणालियों का समन्वय

वे इतिहासकार जो इस विकास को समझने का प्रयास करते हैं, उनका सुझाव है कि यहाँ कम से कम दो प्रक्रियाएँ कार्यरत थीं। एक प्रक्रिया ब्राह्मणीय विचारधारा के प्रचार की थी। इसका प्रसार पौराणिक ग्रंथों की रचना, संकलन और परिरक्षण द्वारा हुआ। ये ग्रंथ सरल संस्कृत छंदों में थे जो वैदिक विद्या से विहीन स्त्रियों और शूद्रों द्वारा भी ग्राह्य थे। इसी काल की एक अन्य प्रक्रिया थी स्त्री, शूद्रों व अन्य सामाजिक वर्गों की आस्थाओं और आचरणों को ब्राह्मणों द्वारा स्वीकृत किया जाना और उसे एक नया रूप प्रदान करना। वस्तुत: समाजशास्त्रियों का यह मानना है कि समूचे उपमहाद्वीप में अनेक धार्मिक विचारधाराएँ और पद्धतियाँ "महान" संस्कृत-पौराणिक परिपाटी तथा "लघु" परंपरा के बीच हुए अविरल संवाद का परिणाम हैं।

इस प्रक्रिया का सबसे विशिष्ट उदाहरण पुरी, उड़ीसा में मिलता है जहाँ मुख्य देवता को बारहवीं शताब्दी तक आते-आते जगन्नाथ (शाब्दिक अर्थ में संपूर्ण विश्व का स्वामी), विष्णु के एक स्वरूप के रूप में प्रस्तुत किया गया।

"महान" और "लघु" परंपराएँ

"महान" और "लघु" जैसे शब्द बीसवीं शताब्दी के समाजशास्त्री राबर्ट रेडफील्ड द्वारा एक कृषक समाज के सांस्कृतिक आचरणों का वर्णन करने के लिए मुद्रित किए गए। इस समाजशास्त्री ने देखा कि किसान उन कर्मकांडों और पद्धतियों का अनुकरण करते थे जिनका समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग जैसे पुरोहित और राजा द्वारा पालन किया जाता था। इन कर्मकांडों को रेडफील्ड ने "महान" परंपरा की संज्ञा दी। साथ ही कृषक समुदाय अन्य लोकाचारों का भी पालन करते थे जो इस महान परिपाटी से सर्वथा भिन्न थे। उसने इन्हें "लघु" परंपरा के नाम से अभिहित किया। रेडफील्ड ने यह भी देखा कि महान और लघु दोनों ही परंपराओं में समय के साथ हुए पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण परिवर्तन हुए।

हालाँकि विद्वान इन प्रक्रियाओं और वर्गीकरण के महत्व से इनकार नहीं करते तथापि वे इन शब्दों में जो पदसोपानात्मक स्वर उभर कर आता है उसकी अवमानना करते हैं। इसे लक्षित करने का एक तरीका है इन शब्दों को उद्धरण चिह्न के साथ प्रस्तुत करना जैसे "लघु" और "महान"।

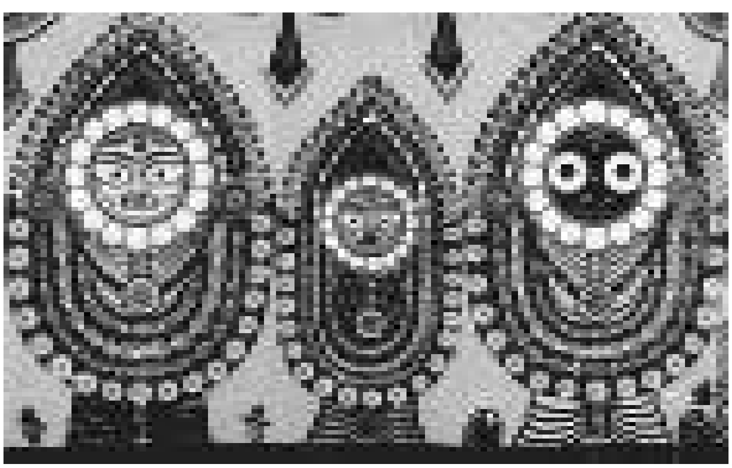

चित्र 6.2
यह आकृति (दाहिने) जगन्नाथ की है जो अपनी बहन सुभद्रा (मध्य) और भाई बलराम (बाएँ) के साथ हैं।

यदि चित्र 6.2 की चित्र 4.26 (अध्याय चार) से तुलना की जाए तो हम देखेंगे कि देवता को बहुत भिन्न तरीके से प्रस्तुत किया गया है। इस उदाहरण में एक स्थानीय देवता को जिसकी प्रतिमा को पहले और आज भी लकड़ी से स्थानीय जनजाति के विशेषज्ञों द्वारा गढ़ा जाता है, विष्णु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विष्णु का यह रूप देश के अन्य भागों में मिलने वाले स्वरूपों से सर्वथा भिन्न था।

समन्वय के ऐसे उदाहरण देवी संप्रदायों में भी मिलते हैं। देवी की उपासना अधिकतर सिंदूर से पोते गए पत्थर के रूप में ही की जाती थी। इन स्थानीय देवियों को पौराणिक परंपरा के भीतर मुख्य देवताओं की पत्नी के रूप में मान्यता दी गई–कभी वह लक्ष्मी के रूप में विष्णु की पत्नी बनीं और कभी शिव की पत्नी पार्वती के रूप में सामने आईं।

1.2 भेद और संघर्ष

अधिकाशंतः देवी की आराधना पद्धति को तांत्रिक नाम से जाना जाता है। तांत्रिक पूजा पद्धति उपमहाद्वीप के कई भागों में प्रचलित थी–इसके अंतर्गत स्त्री और पुरुष दोनों ही शामिल हो सकते थे। इसके अतिरिक्त कर्मकांडीय संदर्भ में वर्ग और वर्ण के भेद की अवहेलना की जाती थी। इस पद्धति के विचारों ने शैव और बौद्ध दर्शन को भी प्रभावित किया खासतौर से उपमहाद्वीप के पूर्वी, उत्तरी और दक्षिणी भागों में। आगामी सहस्राब्दी में इन समस्त विश्वासों और आचारों का वर्गीकरण "हिंदू" के रूप में हुआ। यदि हम वैदिक और पौराणिक परंपरा के बीच तुलना करें तो यह विषमता और अधिक स्पष्ट रूप से उभर कर आती है। वैदिक देवकुल के अग्नि, इंद्र और सोम जैसे देवता पूरी तरह गौण हो गए और साहित्य व मूर्तिकला दोनों में ही उनका निरूपण नहीं दिखता। हालाँकि वैदिक मंत्रों में विष्णु, शिव और देवी की झलक मिलती है, इसकी तुलना इनके विशद, पौराणिक मिथकों से कदापि नहीं की जा सकती। किंतु इन असंगतियों के बावजूद वेदों को प्रामाणिक माना जाता रहा।

चित्र 6.3
बौद्ध देवी, मारिची की मूर्ति (लगभग दसवीं शताब्दी, बिहार)। यह विभिन्न धार्मिक विश्वासों और क्रियाकलापों के एकीकरण की प्रक्रिया का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि कभी संघर्ष की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती थी। वैदिक परिपाटी के प्रशंसक उन सभी आचारों की निंदा करते थे जो ईश्वर की उपासना के लिए मंत्रों के उच्चारण के साथ यज्ञों के संपादन से परे थे। इसके विपरीत, वे लोग थे जो तांत्रिक आराधना में लगे थे और वैदिक सत्ता की अवहेलना करते थे। इसके अलावा भक्त अपने इष्टदेव विष्णु या शिव को भी कई बार सर्वोच्च प्रक्षेपित करते थे। अन्य परंपराओं जैसे बौद्ध अथवा जैन धर्म से भी संबंध अकसर तनावपूर्ण हो जाते थे। यद्यपि स्पष्ट द्वंद्व कम दिखाई पड़ते थे।

भक्ति परंपरा को हमें इसी संदर्भ में रखकर देखना होगा। हम जिस काल विशेष पर गौर कर रहे हैं उससे पूर्व लगभग एक हज़ार वर्ष पुरानी भक्तिपूर्ण उपासना की परिपाटी रही है। इस समय भक्ति प्रदर्शन में, मंदिरों में इष्टदेव की आराधना से लेकर उपासकों का प्रेमभाव में तल्लीन हो जाना, दिखाई पड़ता है। भक्ति रचनाओं का उच्चारण अथवा गाया जाना इस उपासना पद्धति के अंश थे। वैष्णव और शैव संप्रदायों पर तो यह कथन विशेष रूप से लागू होता है।

➲ चर्चा कीजिए...
अपने शहर या गाँव में पूजित देवी-देवताओं के नाम और उनके चित्रण पर विचार कीजिए। उनकी उपासना से जुड़े अनुष्ठानों की व्याख्या कीजिए।

2. उपासना की कविताएँ प्रारंभिक भक्ति परंपरा

आराधना के तरीकों के क्रमिक विकास के दौरान बहुत बार संत कवि ऐसे नेता के रूप में उभरे जिनके आस-पास भक्तजनों के एक पूरे समुदाय का गठन हो गया। यद्यपि बहुत सी भक्ति परंपराओं में ब्राह्मण, देवताओं और भक्तजन के बीच महत्वपूर्ण बिचौलिए बने रहे तथापि इन परंपराओं ने स्त्रियों और "निम्न वर्णों" को भी स्वीकृति व स्थान दिया। भक्ति परंपरा की एक और विशेषता इसकी विविधता है।

दूसरे स्तर पर, धर्म के इतिहासकार भक्ति परंपरा को दो मुख्य वर्गों में बाँटते हैं : सगुण (विशेषण सहित) और निर्गुण (विशेषण विहीन)। प्रथम वर्ग में शिव, विष्णु तथा उनके अवतार व देवियों की आराधना आती है, जिनकी मूर्त रूप में अवधारणा हुई। निर्गुण भक्ति परंपरा में अमूर्त, निराकार ईश्वर की उपासना की जाती थी।

2.1 तमिलनाडु के अलवार और नयनार संत

प्रारंभिक भक्ति आंदोलन (लगभग छठी शताब्दी) अलवारों (विष्णु भक्ति में तन्मय) और नयनारों (शिवभक्त) के नेतृत्व में हुआ। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते हुए तमिल में अपने ईष्ट की स्तुति में भजन गाते थे।

अपनी यात्राओं के दौरान अलवार और नयनार संतों ने कुछ पावन स्थलों को अपने इष्ट का निवासस्थल घोषित किया। इन्हीं स्थलों पर बाद में विशाल मंदिरों का निर्माण हुआ और वे तीर्थस्थल माने गए। संत-कवियों के भजनों को इन मंदिरों में अनुष्ठानों के समय गाया जाता था और साथ ही इन संतों की प्रतिमा की भी पूजा की जाती थी।

स्रोत 1

चतुर्वेदी (चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण) और "अस्पृश्य"

यह उद्धरण तोंदराडिप्पोडि नामक एक ब्राह्मण अलवार के काव्य से लिया गया है:

चतुर्वेदी जो अजनबी हैं और तुम्हारी सेवा के प्रति निष्ठा नहीं रखते, उनसे भी ज़्यादा आप (हे विष्णु) उन "दासों" को पसंद करते हैं, जो आपके चरणों से प्रेम रखते हैं, चाहे वे वर्ण-व्यवस्था के परे हों।

➲ क्या आपको लगता है कि तोंदराडिप्पोडि जाति व्यवस्था के विरोधी थे?

स्रोत 2

शास्त्र या भक्ति

यह छंद अप्पार नामक नयनार संत की रचना है :

हे धूर्तजन, जो तुम शास्त्र को उद्धृत करते हो
तुम्हारा गोत्र और कुल भला किस काम का?
तुम केवल मारपेरू के स्वामी (शिव जो तमिलनाडु के तंजावुर जिले के मारपेरू में बसते हैं।) को अपना एकमात्र आश्रयदाता मानकर नतमस्तक हो।

➲ क्या ब्राह्मणों के प्रति तोंदराडिप्पोडि और अप्पार के विचारों में समानता है अथवा नहीं?

2.2 जाति के प्रति दृष्टिकोण

कुछ इतिहासकारों का यह मानना है कि अलवार और नयनार संतों ने जाति प्रथा व ब्राह्मणों की प्रभुता के विरोध में आवाज़ उठाई। कुछ हद तक यह बात सत्य प्रतीत होती है क्योंकि भक्ति संत विविध समुदायों से थे जैसे ब्राह्मण, शिल्पकार, किसान और कुछ तो उन जातियों से आए थे जिन्हें "अस्पृश्य" माना जाता था।

अलवार और नयनार संतों की रचनाओं को वेद जितना महत्त्वपूर्ण बताकर इस परंपरा को सम्मानित किया गया। उदाहरणस्वरूप, अलवार संतों के एक मुख्य काव्य संकलन *नलयिरादिव्यप्रबंधम्* का वर्णन तमिल वेद के रूप में किया जाता था। इस तरह इस ग्रंथ का महत्व संस्कृत के चारों वेदों जितना बताया गया जो ब्राह्मणों द्वारा पोषित थे।

2.3 स्त्री भक्त

संभवत: इस परंपरा की सबसे बड़ी विशिष्टता इसमें स्त्रियों की उपस्थिति थी। उदाहरणत: अंडाल नामक अलवार स्त्री के भक्ति गीत व्यापक स्तर पर गाए जाते थे (और आज भी गाए जाते हैं)। अंडाल स्वयं को विष्णु की प्रेयसी मानकर अपनी प्रेमभावना को छंदों में व्यक्त करती थीं। एक और स्त्री शिवभक्त करइक्काल अम्मइयार ने अपने उद्देश्य प्राप्ति हेतु घोर तपस्या का मार्ग अपनाया। नयनार परंपरा में उसकी रचनाओं को सुरक्षित किया गया। हालाँकि इन स्त्रियों ने अपने सामाजिक कर्तव्यों का परित्याग किया। वह किसी वैकल्पिक व्यवस्था अथवा भिक्षुणी समुदाय की सदस्या नहीं बनीं। इन स्त्रियों की जीवन पद्धति और इनकी रचनाओं ने पितृसत्तात्मक आदर्शों को चुनौती दी।

भक्ति साहित्य का संकलन

दसवीं शताब्दी तक आते-आते बारह अलवारों की रचनाओं का एक संकलन कर लिया गया जो *नलयिरादिव्यप्रबंधम्* ("चार हज़ार पावन रचनाएँ") के नाम से जाना जाता है। दसवीं शताब्दी में ही अप्पार संबंदर और सुंदरार की कविताएँ *तवरम* नामक संकलन में रखी गईं जिसमें कविताओं का संगीत के आधार पर वर्गीकरण हुआ।

स्रोत 3

एक राक्षसी?

यह उद्धरण कराइक्काल अम्मइयार की कविता से लिया गया है, जहाँ वे स्वयं का वर्णन कर रही हैं:

राक्षसी, फूली हुई नाड़ियों वाली
बाहर निकली आँखें, सफेद दाँत और भीतर धँसा उदर
लाल केश और आगे निकले दाँत,
लंबी पिंडली की नली जो टखनों तक फैली हुई है।
वन में विचरते समय चीखना और
क्रंदन यह अलंकटु का वन है,
जो हमारे पिता (शिव) का घर है।
वह नृत्य करते हैं..... उनके जटाजूट आठों ओर बिखर जाते हैं।
उनके अंग शांत हैं।

➲ उन उपायों की सूची बनाइए जिन उपायों से कराइक्काल अम्मइयार अपने आप को प्रस्तुत करती हैं। किस भाँति यह उपाय स्त्री सौंदर्य की पारंपरिक अवधारणा से भिन्न हैं।

चित्र 6.4
कराइक्काल अम्मइयार की बारहवीं शताब्दी में निर्मित कांस्य-मूर्ति

2.4 राज्य के साथ संबंध

अध्याय 2 में हमने पढ़ा कि तमिल क्षेत्र में प्रथम सहस्राब्दी ईसवी के आरंभ में कई महत्त्वपूर्ण सरदारियाँ थीं। इसी सहस्राब्दी के उत्तरार्ध में राज्य का उद्‌भव और विकास हुआ जिसमें पल्लव और पांड्य राज्य (छठी से नवीं शताब्दी ईसवी) शामिल थे। हालाँकि बौद्ध और जैन धर्म इस क्षेत्र में कई शताब्दियों से मौजूद थे और उन्हें व्यापारी व शिल्पी वर्ग का प्रश्रय हासिल था। इन धर्मों को राजकीय संरक्षण और अनुदान यदा-कदा ही हासिल होता था।

एक रोचक बात यह है कि तमिल भक्ति रचनाओं की एक मुख्य विषयवस्तु बौद्ध और जैन धर्म के प्रति उनका विरोध है। विरोध का स्वर नयनार संतों की रचनाओं में विशेष रूप से उभर कर आता है। इतिहासकारों ने इस विरोध की व्याख्या करते हुए यह सुझाव दिया है कि परस्पर विरोधी धार्मिक समुदायों में राजकीय अनुदान को लेकर प्रतिस्पर्धा थी। यह स्पष्ट है कि शक्तिशाली चोल (नवीं से तेरहवीं शताब्दी) सम्राटों ने ब्राह्मणीय और भक्ति परंपरा को समर्थन दिया तथा विष्णु और शिव के मंदिरों के निर्माण के लिए भूमि-अनुदान दिए।

चिदम्बरम, तंजावुर और गंगैकोंडचोलपुरम के विशाल शिव मंदिर चोल सम्राटों की मदद से ही निर्मित हुए। इसी काल में कांस्य में ढाली गई शिव की प्रतिमाओं का भी निर्माण हुआ। स्पष्ट है कि नयनार संतों का दर्शन शिल्पकारों के लिए प्रेरणा बना।

नयनार और अलवार संत वेल्लाल कृषकों द्वारा सम्मानित होते थे इसलिए आश्चर्य नहीं कि शासकों ने भी उनका समर्थन पाने का प्रयास किया। उदाहरणत: चोल सम्राटों ने दैवीय समर्थन पाने का दावा किया और अपनी सत्ता के प्रदर्शन के लिए सुंदर मंदिरों का निर्माण कराया जिनमें पत्थर और धातु से बनी मूर्तियाँ सुसज्जित थीं। इस तरह इन लोकप्रिय संत-कवियों की परिकल्पना को, जो जन-भाषाओं में गीत रचते व गाते थे, मूर्त रूप प्रदान किया गया।

इन सम्राटों ने तमिल भाषा के शैव भजनों का गायन इन मंदिरों में प्रचलित किया। उन्होंने ऐसे भजनों का संकलन एक ग्रंथ (*तवरम*) के रूप में करने का भी ज़िम्मा उठाया। 945 ईसवी के एक अभिलेख से पता चलता है कि चोल सम्राट परांतक प्रथम ने संत कवि अप्पार संबंदर और सुंदरार की धातु प्रतिमाएँ एक शिव मंदिर में स्थापित करवाईं। इन मूर्तियों को उत्सव में एक जुलूस में निकाला जाता था।

चित्र 6.5
नटराज के रूप में शिव

➲ चर्चा कीजिए...

आपको क्यों लगता है कि शासक भक्तों से अपने संबंध को दर्शाने के लिए उत्सुक थे?

3. कर्नाटक की वीरशैव परंपरा

बारहवीं शताब्दी में कर्नाटक में एक नवीन आंदोलन का उद्‌भव हुआ जिसका नेतृत्व बासवन्ना (1106-68) नामक एक ब्राह्मण ने किया। बासवन्ना प्रारंभ में जैन मत को मानने वाले थे और चालुक्य राजा के दरबार में मंत्री थे। इनके अनुयायी वीरशैव (शिव के वीर) व लिंगायत (लिंग धारण करने वाले) कहलाए।

आज भी लिंगायत समुदाय का इस क्षेत्र में महत्त्व है। वे शिव की आराधना लिंग के रूप में करते हैं। इस समुदाय के पुरुष वाम स्कंध पर

चाँदी के एक पिटारे में एक लघु लिंग को धारण करते हैं। जिन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है उनमें जंगम अर्थात यायावर भिक्षु शामिल हैं। लिंगायतों का विश्वास है कि मृत्योपरांत भक्त शिव में लीन हो जाएँगे तथा इस संसार में पुनः नहीं लौटेंगे। धर्मशास्त्र में बताए गए श्राद्ध संस्कार का वे पालन नहीं करते और अपने मृतकों को विधिपूर्वक दफ़नाते हैं।

लिंगायतों ने जाति की अवधारणा और कुछ समुदायों के "दूषित" होने की ब्राह्मणीय अवधारणा का विरोध किया। पुनर्जन्म के सिद्धांत पर भी उन्होंने प्रश्नवाचक चिह्न लगाया। इन सब कारणों से ब्राह्मणीय सामाजिक व्यवस्था में जिन समुदायों को गौण स्थान मिला था वे लिंगायतों के अनुयायी हो गए। धर्मशास्त्रों में जिन आचारों को अस्वीकार किया गया था जैसे वयस्क विवाह और विधवा पुनर्विवाह, लिंगायतों ने उन्हें मान्यता प्रदान की। वीरशैव परंपरा की व्युत्पत्ति उन वचनों से है जो कन्नड़ भाषा में उन स्त्री पुरुषों द्वारा रचे गए जो इस आंदोलन में शामिल हुए।

नए धार्मिक विकास

मध्यवर्ती शताब्दियों में 2 मुख्य विकास देखने में आए। एक ओर तो तमिल भक्तों (खासतौर से वैष्णव) के विचारों को संस्कृत परंपरा में समाहित कर लिया गया जिसका परिणाम सर्वाधिक प्रसिद्ध पुराणों में से एक भागवत पुराण की रचना थी। दूसरे, तेहरवीं शताब्दी में भक्ति परंपरा का विकास महाराष्ट्र में हुआ।

स्रोत 4

अनुष्ठान और यथार्थ संसार

यह बासवन्ना द्वारा रचित एक वचन है:

जब वे एक पत्थर से बने सर्प को
देखते हैं तो उस पर दूध चढ़ाते हैं

यदि असली साँप आ जाए तो
कहते हैं "मारो-मारो"।

देवता के उस सेवक को, जो
भोजन परसने पर खा सकता है वे
कहते हैं "चले जाओ! चले जाओ।"

किन्तु ईश्वर की प्रतिमा को जो खा
नहीं सकती, वे व्यंजन परोसते हैं।

➲ अनुष्ठानों के प्रति बासवन्ना के रवैये की व्याख्या कीजिए। वे किस तरह श्रोता को अपनी बात समझाने का प्रयत्न करते हैं।

4. उत्तरी भारत में धार्मिक उफ़ान

इसी काल में उत्तरी भारत में विष्णु और शिव जैसे देवताओं की उपासना मंदिरों में की जाती थी जिन्हें शासकों की सहायता से निर्मित किया जाता था। किंतु इतिहासकारों को अलवार और नयनार संतों की रचनाओं जैसा कोई ग्रंथ चौहदवीं शताब्दी तक उत्तरी भारत से प्राप्त नहीं हुआ। इस भिन्नता की क्या वजह हो सकती है?

कुछ इतिहासकारों का मत है कि उत्तरी भारत में यह वह काल था जब अनेक राजपूत राज्यों का उद्भव हुआ। इन सभी राज्यों में ब्राह्मणों का महत्त्वपूर्ण स्थान था और वे ऐहिक तथा आनुष्ठानिक दोनों ही कार्य करते थे। उनकी इस प्रभुसत्ता को सीधे चुनौती देने का प्रयास शायद ही किसी ने किया।

इसी समय वे धार्मिक नेता जो रूढ़िवादी ब्राह्मणीय साँचे के बाहर थे, उनके प्रभाव में विस्तार हो रहा था। ऐसे नेताओं में नाथ, जोगी और सिद्ध शामिल थे। उनमें से बहुत से लोग शिल्पी समुदाय के थे जिनमें जुलाहे शामिल थे। संयोजित दस्तकारी उत्पादन के विकास के साथ उनका महत्त्व

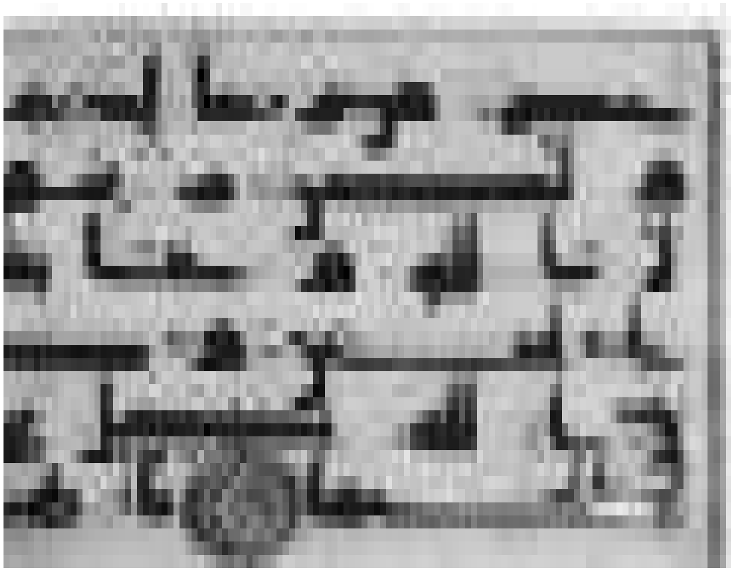

चित्र 6.6
कुरान शरीफ़ के एक पृष्ठ का हिस्सा। यह आठवीं अथवा नवीं शताब्दी की किसी पांडुलिपि से लिया गया है।

बढ़ रहा था। नगरीय केंद्रों के विस्तार तथा मध्य व पश्चिमी एशिया के साथ व्यापार के प्रसार के साथ ही इन दस्तकारी की वस्तुओं की माँग बढ़ी।

अनेक नवीन धार्मिक नेताओं ने वेदों की सत्ता को चुनौती दी और अपने विचार आम लोगों की भाषा में सामने रखे। समय के साथ यह भाषाएँ उस रूप में विकसित हुईं जिस तरह आज भी प्रयोग में लाईं जाती हैं। अपनी लोकप्रियता के बावजूद नवीन धार्मिक नेता विशिष्ट शासक वर्ग का प्रश्रय हासिल करने की स्थिति में नहीं थे।

इस स्थिति में एक नवीन तत्व भारत में तुर्कों का आगमन था जिसकी पराकाष्ठा दिल्ली सल्तनत (तेरहवीं शताब्दी) की स्थापना में हुई। सल्तनत की स्थापना से राजपूत राज्यों का और उनसे जुड़े ब्राह्मणों का पराभव हुआ। इन परिवर्तनों का प्रभाव संस्कृति और धर्म पर भी पड़ा। सूफ़ियों का आगमन (अनुभाग 6) इन परिवर्तनों का एक महत्त्वपूर्ण अंग था।

5. दुशाले के नए ताने-बाने : इस्लामी परंपराएँ

जिस तरह उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे से पृथक नहीं थे उसी भांति समुद्र और पहाड़ों के परे के क्षेत्रों से भी संपर्क शताब्दियों से बना रहा। प्रथम सहस्राब्दी ईसवी में अरब व्यापारी समुद्र के रास्ते पश्चिमी भारत के बंदरगाहों तक आए। इसी समय मध्य एशिया से लोग देश के उत्तर-पश्चिम प्रांतों में आकर बस गए। सातवीं शताब्दी में इस्लाम के उद्‌भव के बाद ये क्षेत्र उस संसार का हिस्सा बन गए जिसे अकसर इस्लामी विश्व कहा जाता है।

5.1 शासकों और शासितों के धार्मिक विश्वास

उलमा (आलिम का बहुवचन) इस्लाम धर्म के ज्ञाता थे। इस परिपाटी के संरक्षक होने के नाते वे धार्मिक, कानूनी और अध्यापन संबंधी ज़िम्मेदारी निभाते थे।

इन संपर्कों को समझने की एक धुरी यह है कि विशिष्ट शासक वर्ग के धर्म पर दृष्टि डाली जाए। 711 ईसवी में मुहम्मद बिन कासिम नाम के एक अरब सेनापति ने सिंध को विजित कर लिया और उसे खलीफ़ा के क्षेत्र में शामिल कर लिया। बाद में (लगभग तेरहवीं शताब्दी ईसवी) तुर्क और अफगानों ने दिल्ली सल्तनत की नींव रखी। समय के साथ दक्कन और अन्य भागों में भी सल्तनत की सीमा का प्रसार हुआ। बहुत से क्षेत्रों में इस्लाम शासकों का स्वीकृत धर्म था। यह स्थिति सोलहवीं शताब्दी में मुगल सल्तनत की स्थापना के साथ भी बरकरार रही। अठारहवीं शताब्दी में जो क्षेत्रीय राज्य उभर कर आए उनमें से कई राज्यों के शासक भी इस्लाम धर्म को मानने वाले थे।

सैद्धांतिक रूप से मुसलमान शासकों को उलमा के मार्गदर्शन पर चलना होता था। उलमा से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे शासन में शरिया का अमल सुनिश्चित करवाएँगे। किंतु उपमहाद्वीप में स्थिति जटिल थी क्योंकि बड़ी जनसंख्या इस्लाम धर्म को मानने वाली नहीं थी।

इस संदर्भ में *ज़िम्मी* (व्युत्पत्ति अरबी शब्द *ज़िम्मा* से) अर्थात संरक्षित श्रेणी का प्रादुर्भाव हुआ। ज़िम्मी वे लोग थे जो उद्घटित धर्मग्रंथ को मानने वाले थे जैसे इस्लामी शासकों के क्षेत्र में रहने वाले यहूदी और ईसाई। ये लोग *जज़िया* नामक कर चुका कर मुसलमान शासकों द्वारा संरक्षण दिए जाने के अधिकारी हो जाते थे। भारत में इसके अंतर्गत हिंदुओं को भी शामिल कर लिया गया। जैसा आप देखेंगे (अध्याय 9), मुगल शासक अपने आपको न केवल मुसलमानों का अपितु सारे समुदायों का बादशाह मानते थे।

वास्तव में शासक शासितों की तरफ़ काफ़ी लचीली नीति अपनाते थे। उदाहरणतः, बहुत से शासकों ने भूमि अनुदान व कर की छूट हिंदू, जैन, पारसी, ईसाई और यहूदी धर्मसंस्थाओं को दी तथा साथ ही गैर-मुसलमान धार्मिक नेताओं के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त किया। ऐसे अनुदान, अनेक मुगल बादशाहों जिनमें अकबर और औरंगज़ेब शामिल थे, द्वारा दिए गए।

स्रोत 5

खम्बात का गिरजाघर

यह उद्धरण उस फ़रमान (बादशाह के हुक्मनामे) का अंश है जिसे 1598 में अकबर ने जारी किया :

> हमारे बुलंद और मुकद्दस (पवित्र) ज़ेहन में पहुँचा है कि यीशु की मुकद्दस जमात के पादरी खम्बायत गुजरात के शहर में इबादत के लिए (गिरजाघर) एक इमारत की तामीर (निर्माण) करना चाहते हैं; इसलिए यह शाही फ़रमान.... जारी किया जा रहा है.... खम्बायत के महानुभाव किसी भी तरह उनके रास्ते में न आएँ और उन्हें गिरजाघर की तामीर करने दें जिससे वे अपनी इबादत कर सकें। यह ज़रूरी है कि बादशाह के इस फ़रमान की हर तरह से तामील (पालन) हो।

➲ वे कौन लोग थे जिनकी तरफ़ से अकबर को अपने फ़रमान की बेअदबी का अंदेशा था?

शरिया

शरिया मुसलमान समुदाय को निर्देशित करने वाला कानून है। यह कुरान शरीफ़ और हदीस पर आधारित है। हदीस का अर्थ है पैगम्बर साहब से जुड़ी परंपराएँ जिनके अंतर्गत उनके स्मृत शब्द और क्रियाकलाप भी आते हैं।

जब अरब क्षेत्र से बाहर इस्लाम का प्रसार हुआ जहाँ के आचार-व्यवहार भिन्न थे तो क़ियास (सदृशता के आधार पर तर्क) और इजमा (समुदाय की सहमति) को भी कानून का स्रोत माना जाने लगा। इस तरह शरिया, कुरान, हदीस, क़ियास और इजमा से उद्भूत हुआ।

चित्र 6.7
बादशाह जहाँगीर तथा एक जोगी को दर्शाता हुआ मुगल चित्र।

स्रोत 6

जोगी के प्रति श्रद्धा

यह उद्धरण 1661-62 में औरंगज़ेब द्वारा एक जोगी को लिखे पत्र का अंश है :

बुलंद मकाम शिवमूरत गुरु आनंद नाथ जियो!

जनाब-ए-मुहतरम (श्रद्धेय) अमन और खुशी से हमेशा श्री शिव जियो की पनाह में रहें!

पोशाक के लिए वस्त्र और पच्चीस रुपए की रकम जो भेंट के तौर पर भेजी गई है आप तक पहुँचेगी... जनाब-ए-मुहतरम आप हमें लिख सकते हैं जब भी हमारी मदद की ज़रूरत हो।

➲ जोगी द्वारा वंदनीय देवता की पहचान कीजिए। जोगी के प्रति बादशाह के रवैये का वर्णन कीजिए।

5.2 लोक प्रचलन में इस्लाम

इस्लाम के आगमन के बाद जो परिवर्तन हुए वे शासक वर्ग तक ही सीमित नहीं थे, अपितु पूरे उपमहाद्वीप में दूरदराज़ तक और विभिन्न सामाजिक समुदायों–किसान, शिल्पी, योद्धा, व्यापारी के बीच फैल गए। जिन्होंने इस्लाम धर्म कबूल किया उन्होंने सैद्धांतिक रूप से इसकी पाँच मुख्य 'बातें' मानीं : अल्लाह एकमात्र ईश्वर है; पैगम्बर मोहम्मद उनके दूत (शाहद) हैं; दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ी जानी चाहिए; खैरात (ज़कात) बाँटनी चाहिए; रमज़ान के महीने में रोज़ा रखना चाहिए और हज के लिए मक्का जाना चाहिए।

किंतु इन सार्वभौमिक तत्वों में अकसर सांप्रदायिक (शिया, सुन्नी) वजहों से तथा स्थानीय लोकाचारों के प्रभाव की वजह से भी धर्मांतरित लोगों के व्यवहारों में भिन्नता देखने में आती थी। उदाहरणत:, खोजा इस्माइली (शिया) समुदाय के लोगों ने कुरान के विचारों की अभिव्यक्ति के लिए देशी साहित्यिक विधा का सहारा लिया। *जीनन* (व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द ज्ञान से) नाम से भक्ति गीत, जो राग में निबद्ध थे, पंजाबी, मुल्तानी, सिंधी, कच्छी, हिंदी और गुजराती में दैनिक प्रार्थना के दौरान गाए जाते थे।

इसके अलावा अरब मुसलमान व्यापारी जो मालाबार तट (केरल) के किनारे बसे, उन्होंने न केवल स्थानीय मलयालम भाषा को अपनाया अपितु स्थानीय आचारों जैसे *मातृकुलीयता* (अध्याय 3) और *मातृगृहता* को भी अपनाया।

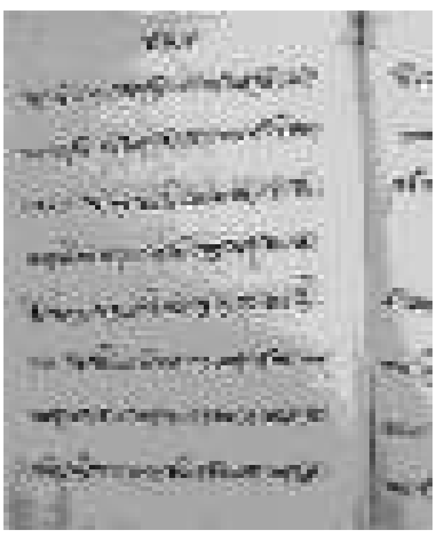

चित्र 6.8
एक खोजकी पाण्डुलिपि।
खोजकी लिपि में लिपिबद्ध करने से पहले जीनन का मौखिक प्रेषण होता था। खोजकी लिपि स्थानीय लंडा (व्यापारियों की संक्षिप्त लिपि) से निकली है। पंजाब, सिंध और गुजरात के खोजा लोग, सभी लंडा का प्रयोग करते थे।

मातृगृहता वह परिपाटी है जहाँ स्त्रियाँ विवाह के बाद अपने मायके में ही अपनी संतान के साथ रहती हैं और उनके पति उनके साथ आकर रह सकते हैं।

एक सार्वभौमिक धर्म के स्थानीय आचारों के संग जटिल मिश्रण का सर्वोत्तम उदाहरण संभवत: मस्जिदों की स्थापत्य कला में दृष्टिगोचर होता है। मस्जिदों के कुछ स्थापत्य संबंधी तत्व सार्वभौमिक थे–जैसे

चित्र 6.9
केरल में तेहरवीं शताब्दी की एक मस्जिद। इसके शिखर के आकार की छत पर गौर कीजिए।

इमारत का मक्का की तरफ़ अनुस्थापन जो *मेहराब* (प्रार्थना का आला) और मिनबार (व्यासपीठ) की स्थापना से लक्षित होता था। बहुत से तत्व ऐसे थे जिनमें भिन्नता देखने में आती है जैसे छत और निर्माण का सामान। (देखिए चित्र 6.9, 6.10 और 6.11)

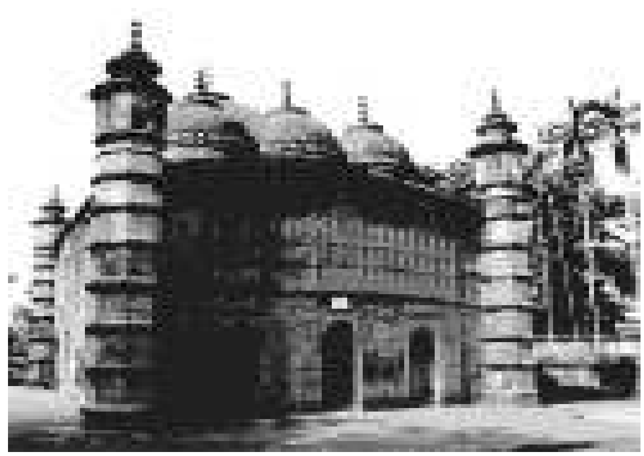

चित्र 6.10
ईंटों की बनी अतिया मस्जिद, 1609, ज़िला मैमनसिंग, बांग्लादेश।

5.3 समुदायों के नाम

हम अधिकतर हिंदू और मुसलमान जैसे शब्दों को धार्मिक समुदायों का निश्चित द्योतक मान लेते हैं। किंतु सच तो यह है कि इन शब्दों का बहुत समय तक कोई प्रचलन नहीं था। जिन इतिहासकारों ने आठवीं से चौहदवीं शताब्दी के मध्य संस्कृत ग्रंथों और अभिलेखों का अध्ययन किया है वे इस तथ्य को उजागर करते हैं कि इनमें मुसलमान, शब्द का शायद ही कहीं प्रयोग हुआ हो। इसके विपरीत लोगों का वर्गीकरण उनके जन्मस्थान के आधार पर किया जाता था। इस तरह तुर्की मुसलमानों को तुरुष्क कहा गया। तजाकिस्तान से आए लोगों को ताजिक और फारस के लोगों को पारसीक नाम से संबोधित किया गया। यदा-कदा अन्य लोगों को दिए गए नामों को नए प्रवासियों के साथ भी जोड़ा गया। उदाहरणत:, तुर्क और अफ़गानों को शक (अध्याय 2 व 3) और यवन (ग्रीक लोगों के लिए प्रयुक्त) भी कहा गया।

इन प्रवासी समुदायों के लिए एक अधिक सामान्य शब्द म्लेच्छ था जो इस बात की ओर इंगित करता है कि वह वर्ण नियमों का पालन नहीं

चित्र 6.11

श्रीनगर की झेलम नदी के किनारे बनी शाह हमदान मस्जिद कश्मीर की सभी मस्जिदों में 'मुकुट का नगीना' समझी जाती है।
इसका निर्माण 1395 में हुआ और यह कश्मीरी लकड़ी की स्थापत्य कला का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसके शिखर और नक्काशीदार छज्जे पर गौर कीजिए। यह पेपरमैशी से सजाई गई है।

करते थे और ऐसी भाषाएँ बोलते थे जो संस्कृत से नहीं उपजी थीं। हालाँकि ऐसे शब्दों में हीनभावना निहित थी किंतु उन्हें एक ऐसे विशिष्ट मुसलमान धार्मिक समुदाय के लिए शायद ही प्रयुक्त किया जाता था जो हिंदू समुदाय के विपक्ष में हों। जैसाकि हमने अध्याय 5 में देखा कि 'हिंदू' शब्द अनेक तरह से इस्तेमाल किया जाता था और उसे धार्मिक समुदाय के एकमात्र अर्थ में सीमित नहीं किया जा सकता।

➲ चर्चा कीजिए...

अपने गाँव अथवा शहर की मस्जिद की स्थापत्य कला के बारे में जानकारी हासिल कीजिए। इसे बनाने में किस तरह की सामग्री का इस्तेमाल हुआ है? क्या यह सामग्री स्थानीय स्तर पर मिलती है? क्या इसके कुछ विशिष्ट स्थापत्य लक्षण हैं?

6. सूफ़ीमत का विकास

इस्लाम की आरंभिक शताब्दियों में धार्मिक और राजनीतिक संस्था के रूप में खिलाफ़त की बढ़ती विषयशक्ति के विरुद्ध कुछ आध्यात्मिक लोगों का रहस्यवाद और वैराग्य की ओर झुकाव बढ़ा, इन्हें सूफ़ी कहा जाने लगा। इन लोगों ने रूढ़िवादी परिभाषाओं तथा धर्माचार्यों द्वारा की गई कुरान और *सुन्ना* (पैगम्बर के व्यवहार) की बौद्धिक व्याख्या की आलोचना की। इसके विपरीत उन्होंने मुक्ति की प्राप्ति के लिए ईश्वर की भक्ति और उनके आदेशों के पालन पर बल दिया। उन्होंने पैगम्बर मोहम्मद को इंसान-ए-कामिल बताते हुए उनका अनुसरण करने की सीख दी। सूफ़ियों ने कुरान की व्याख्या अपने निजी अनुभवों के आधार पर की।

6.1 ख़ानक़ाह और सिलसिला

ग्यारहवीं शताब्दी तक आते-आते सूफ़ीवाद एक पूर्ण विकसित आंदोलन था जिसका सूफ़ी और कुरान से जुड़ा अपना साहित्य था। संस्थागत दृष्टि से सूफ़ी अपने को एक संगठित समुदाय-ख़ानक़ाह (फारसी) के इर्द-गिर्द स्थापित करते थे। ख़ानक़ाह का नियंत्रण शेख (अरबी), पीर अथवा मुर्शीद (फारसी) के हाथ में था। वे अनुयायियों (मुरीदों) की भरती करते थे और अपने वारिस (खलीफ़ा) की नियुक्ति करते थे। आध्यात्मिक व्यवहार के नियम निर्धारित करने के अलावा ख़ानक़ाह में रहने वालों के बीच के संबंध और शेख व जनसामान्य के बीच के रिश्तों की सीमा भी नियत करते थे।

सूफ़ीवाद और *तसव्वुफ़*

सूफ़ीवाद उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रित एक अंग्रेज़ी शब्द है। इस सूफ़ीवाद के लिए इस्लामी ग्रंथों में जिस शब्द का इस्तेमाल होता है वह है *तसव्वुफ़*। कुछ विद्वानों के अनुसार यह शब्द 'सूफ़' से निकलता है जिसका अर्थ ऊन है। यह उस खुरदुरे ऊनी कपड़े की ओर इशारा करता है जिसे सूफ़ी पहनते थे। अन्य विद्वान इस शब्द की व्युत्पत्ति 'सफ़ा' से मानते हैं जिसका अर्थ है साफ़। यह भी संभव है कि यह शब्द 'सफ़ा' से निकला हो जो पैगम्बर की मस्जिद के बाहर एक चबूतरा था जहाँ निकट अनुयायियों की मंडली धर्म के बारे में जानने के लिए इकट्ठी होती थी।

बारहवीं शताब्दी के आसपास इस्लामी दुनिया में सूफ़ी सिलसिलों का गठन होने लगा। सिलसिला का शाब्दिक अर्थ है जंज़ीर जो शेख और मुरीद के बीच एक निरंतर रिश्ते की द्योतक है, जिसकी पहली अटूट कड़ी पैगम्बर मोहम्मद से जुड़ी है। इस कड़ी के द्वारा आध्यात्मिक शक्ति और आशीर्वाद मुरीदों तक पहुँचता था। दीक्षा के विशिष्ट अनुष्ठान विकसित किए गए जिसमें दीक्षित को निष्ठा का वचन देना होता था, और सिर मुँड़ाकर थेगड़ी लगे वस्त्र धारण करने पड़ते थे।

पीर की मृत्यु के बाद उसकी दरगाह (फारसी में इसका अर्थ दरबार) उसके मुरीदों के लिए भक्ति का स्थल बन जाती थी। इस तरह पीर की दरगाह पर ज़ियारत के लिए जाने की, खासतौर से उनकी बरसी के अवसर पर, परिपाटी चल निकली। इस परिपाटी को *उर्स* (विवाह, मायने पीर की आत्मा का ईश्वर से मिलन) कहा जाता था क्योंकि लोगों का मानना था कि मृत्यु के बाद पीर ईश्वर से एकीभूत हो जाते हैं और इस तरह पहले के बजाय उनके अधिक करीब हो जाते हैं। लोग आध्यात्मिक और ऐहिक कामनाओं की पूर्ति के लिए उनका आशीर्वाद लेने जाते थे। इस तरह शेख का वली के रूप में आदर करने की परिपाटी शुरू हुई।

सिलसिलों के नाम

ज़्यादातर सूफ़ी वंश उन्हें स्थापित करने वालों के नाम पर पड़े। उदाहरणतः, कादरी सिलसिला शेख अब्दुल कादिर जिलानी के नाम पर पड़ा। कुछ अन्य सिलसिलों का नामकरण उनके जन्मस्थान पर हुआ जैसे चिश्ती नाम मध्य अफगानिस्तान के चिश्ती शहर से लिया गया।

वली (बहुवचन औलिया) अर्थात ईश्वर का मित्र वह सूफ़ी जो अल्लाह के नज़दीक होने का दावा करता था और उनसे मिली बरकत से करामात करने की शक्ति रखता था।

6.2 ख़ानक़ाह के बाहर

कुछ रहस्यवादियों ने सूफ़ी सिद्धांतों की मौलिक व्याख्या के आधार पर नवीन आंदोलनों की नींव रखी। ख़ानक़ाह का तिरस्कार करके यह रहस्यवादी, फकीर की ज़िंदगी बिताते थे। निर्धनता और ब्रह्मचर्य को उन्होंने गौरव प्रदान किया। इन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता था– कलंदर, मदारी, मलंग, हैदरी इत्यादि। शरिया की अवहेलना करने के कारण उन्हें बे-शरिया कहा जाता था। इस तरह उन्हें शरिया का पालन करने वाले (बा-शरिया) सूफ़ियों से अलग करके देखा जाता था।

➲ चर्चा कीजिए...

क्या आपके गाँव अथवा शहर में ख़ानक़ाह या दरगाह है? मालूम कीजिए इनकी स्थापना कब हुई थी तथा इनके संग कौन से क्रियाकलाप जुड़े हुए हैं? क्या ऐसे अन्य स्थान हैं जहाँ धार्मिक स्त्री और पुरुष मिलते और रहते हैं?

7. उपमहाद्वीप में चिश्ती सिलसिला

बारहवीं शताब्दी के अंत में भारत आने वाले सूफ़ी समुदायों में चिश्ती सबसे अधिक प्रभावशाली रहे। इसका कारण यह था कि उन्होंने न केवल अपने आपको स्थानीय परिवेश में अच्छी तरह ढाला अपितु भारतीय भक्ति परंपरा की कई विशिष्टताओं को भी अपनाया।

7.1 चिश्ती ख़ानक़ाह में जीवन

ख़ानक़ाह सामाजिक जीवन का केंद्र बिंदु था। हमें शेख निज़ामुद्दीन औलिया (चौदहवीं शताब्दी) की ख़ानक़ाह के बारे में पता है जो उस समय के दिल्ली शहर की बाहरी सीमा पर यमुना नदी के किनारे ग़ियासपुर में था। यहाँ कई छोटे-छोटे कमरे और एक बड़ा हाल (जमातख़ाना) था जहाँ सहवासी और अतिथि रहते, और उपासना करते थे। सहवासियों में शेख का अपना परिवार, सेवक और अनुयायी थे।

शेख एक छोटे कमरे में छत पर रहते थे जहाँ वह मेहमानों से सुबह-शाम मिला करते थे। आँगन एक गलियारे से घिरा होता था और ख़ानक़ाह को चारों ओर से दीवार घेरे रहती थी। एक बार मंगोल आक्रमण के समय पड़ोसी क्षेत्र के लोगों ने ख़ानक़ाह में शरण ली।

चिश्ती सिलसिला के मुख्य उपदेशक

सूफ़ी	मृत्यु का वर्ष	दरगाह का स्थान
शेख मुइनुद्दीन चिश्ती	1235	अजमेर (राजस्थान)
ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी	1235	दिल्ली
शेख फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर	1265	अजोधन (पाकिस्तान)
शेख निज़ामुद्दीन औलिया	1325	दिल्ली
शेख नसीरुद्दीन चिराग-ए-देहली	1356	दिल्ली

यहाँ एक सामुदायिक रसोई (लंगर) *फ़ुतूह* (बिना माँगी खैर) पर चलती थी। सुबह से देर रात तक सब तबके के लोग–सिपाही, गुलाम, गायक, व्यापारी, कवि, राहगीर, धनी और निर्धन, हिंदू जोगी और कलंदर यहाँ अनुयायी बनने, इबादत करने, ताबीज़ लेने अथवा विभिन्न मसलों पर शेख की मध्यस्थता के लिए आते थे। कुछ अन्य मिलने वालों में अमीर हसन सिजज़ी और अमीर खुसरो जैसे कवि तथा दरबारी इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी जैसे लोग शामिल थे। इन सभी लोगों ने शेख के बारे में लिखा। शेख के सामने झुकना, मिलने वालों को पानी पिलाना, दीक्षितों के सर का मुंडन तथा यौगिक व्यायाम आदि व्यवहार इस तथ्य के घोतक हैं कि स्थानीय परंपराओं को आत्मसात करने का प्रयत्न किया गया।

शेख निज़ामुद्दीन ने कई आध्यात्मिक वारिसों का चुनाव किया और उन्हें उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में ख़ानक़ाह स्थापित करने के लिए नियुक्त किया। इस वजह से चिश्तियों के उपदेश, व्यवहार और संस्थाएँ तथा शेख का यश चारों ओर फैल गया। उनकी तथा उनके आध्यात्मिक पूर्वजों की दरगाह पर अनेक तीर्थयात्री आने लगे।

7.2 चिश्ती उपासना : ज़ियारत और कव्वाली

सूफ़ी संतों की दरगाह पर की गई ज़ियारत सारे इस्लामी संसार में प्रचलित है। इस अवसर पर संत के आध्यात्मिक आशीर्वाद यानी बरकत की कामना की जाती है। पिछले सात सौ सालों से अलग-अलग संप्रदायों, वर्गों और समुदायों के लोग पाँच महान चिश्ती संतों की दरगाह पर अपनी आस्था प्रकट करते रहे हैं (ऊपर दिया गया चार्ट देखिए) इनमें सबसे अधिक पूजनीय दरगाह ख़्वाजा मुइनुद्दीन की है जिन्हें 'ग़रीब नवाज़' कहा जाता है।

दाता गंज बख़्श की कहानी

1039 ईसवी में अबुल हसन अल हुजविरी जो अफगानिस्तान के शहर गज़नी के निकट हुजविर के रहने वाले थे, उन्हें तुर्की सेना के एक कैदी के रूप में सिंधु नदी पार करनी पड़ी। वह लाहौर में बस गए और फारसी में उन्होंने एक किताब लिखी *कश्फ़-उल-महजुब* (परदे वाले की बेपर्दगी) जिसमें तसव्वुफ़ के मायने और इसका पालन करने वाले सूफ़ियों के बारे में बताया गया था।

हुजविरी की 1073 में मृत्यु हो गई और उन्हें लाहौर में दफ़नाया गया। सुल्तान महमूद गज़नी के पोते ने उनकी मज़ार पर दरगाह बनवाई। यह दरगाह उनकी बरसी के अवसर पर उनके अनुयायियों के लिए तीर्थ स्थल बन गई।

आज भी हुजविरी दाता गंज बख़्श के रूप में आदरणीय हैं और उनकी दरगाह को दाता दरबार यानी देने वाले की दरगाह कहा जाता है।

ख़्वाजा मुइनुद्दीन की दरगाह का सबसे पहला किताबी ज़िक्र चौदहवीं शताब्दी का है। यह दरगाह शेख की सदाचारिता और धर्मनिष्ठा तथा उनके आध्यात्मिक वारिसों की महानता और राजसी मेहमानों द्वारा दिए गए प्रश्रय के कारण लोकप्रिय थी। मुहम्मद बिन तुगलक (1324–51) पहला सुल्तान था जो इस दरगाह पर आया था किंतु शेख की मज़ार पर सबसे पहली इमारत मालवा के सुल्तान गियासुद्दीन खलजी ने पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बनवाई। चूँकि यह दरगाह दिल्ली और गुजरात को जोड़ने वाले व्यापारिक मार्ग पर थी अतः अनेक यात्री यहाँ आते थे।

सोलहवीं शताब्दी तक आते-आते अजमेर की यह दरगाह बहुत ही लोकप्रिय हो गई थी। इस दरगाह को जानने वाले तीर्थयात्रियों के भजनों ने ही अकबर को यहाँ आने के लिए प्रेरित किया। अकबर यहाँ चौदह बार आया कभी तो साल में दो-तीन बार, कभी नयी जीत के लिए आशीर्वाद लेने अथवा संकल्प की पूर्ति पर या फिर पुत्रों के जन्म पर।

चित्र 6.12
शेख निज़ामुद्दीन औलिया और उनके शिष्य अमीर खुसरो का सत्रहवीं शताब्दी का एक चित्र।

➲ यह बताइए कि कलाकार शेख साहब और उनके शिष्य में कैसे फर्क डालता है?

चित्र 6.13
अजमेर की तीर्थ यात्रा पर बादशाह जहाँगीर का स्वागत करते हुए शेख। मनोहर नामक कलाकार का चित्र, लगभग 1615

➲ चित्र में कलाकार के हस्ताक्षर ढूँढ़िए।

मुल्क का चिराग

प्रत्येक सूफी दरगाह के कुछ विशिष्ट लक्षण होते थे। अठारहवीं शताब्दी में दक्कन के दरगाह कुली खान ने शेख नसीरुद्दीन चिराग-ए-देहली की दरगाह के बारे में मुरक्का-ए-देहली (दिल्ली की अलबम) में लिखा कि–

शेख सिर्फ देहली के ही चिराग नहीं अपितु सारे मुल्क के चिराग हैं। लोगों का हुजूम यहाँ आता है खासतौर से इतवार के रोज़। दीवाली के महीने में दिल्ली की सारी आबादी दरगाह पर उमड़ आती है और हौज़ के पास तम्बू गाड़ कर वे कई दिनों तक यहाँ रहते हैं। पुराने रोगों को ठीक करने के लिए वे यहाँ नहाते हैं। हिंदू और मुसलमान एक ही भावना से आते हैं। सुबह से शाम तक लोग आते हैं और पेड़ की छाँव में हँसी-खुशी में समय बिताते हैं।

स्रोत 7

मुगल शहज़ादी जहाँआरा की तीर्थयात्रा 1643

निम्नलिखित गद्यांश जहाँआरा द्वारा रचित शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की जीवनी *मुनिस-अल-अखाह* (यानी आत्मा का विश्वस्त) से लिया गया है।

अल्लाहताला की तारीफ़ के बाद.... यह फकीरा जहाँआरा... राजधानी आगरा से अपने पिता (बादशाह शाहजहाँ) के संग पाक और बेजोड़ अजमेर के लिए निकली.... मैं इस बात के लिए वायदापरस्त थी कि हर रोज़ और हर मुकाम पर मैं दो बार की अख़्तियारी नमाज़ अदा करूँगी... बहुत दिन... मैं रात को बाघ के चमड़े पर नहीं सोई और अपने पैर मुकद्दस दरगाह की तरफ नहीं फैलाए, न ही मैंने अपनी पीठ उनकी तरफ की। मैं पेड़ के नीचे दिन गुज़ारती थी।

वीरवार को रमज़ान के मुकद्दस महीने के चौथे रोज़ मुझे चिराग और इतर में डूबे दरगाह की ज़ियारत की खुशी हासिल हुई... चूँकि दिन की रोशनी की एक छड़ी बाकी थी मैं दरगाह के भीतर गई और अपने जर्द चेहरे को उसकी चौखट की धूल से रगड़ा। दरवाज़े से मुकद्दस दरगाह तक मैं नंगे पाँव वहाँ की ज़मीन को चूमती हुई गई। गुम्बद के भीतर रोशनी से भरी दरगाह में मैंने मज़ार के चारों ओर सात फेरे लिए। आख़िर में अपने हाथों से मुकद्दस दरगाह पर मैंने सबसे उम्दा इतर छिड़का। चूँकि गुलाबी दुपट्टा जो मेरे सिर पर था, मैं उतार चुकी थी इसलिए उसे मैंने मुकद्दस मज़ार के ऊपर रखा।...

➲ जहाँआरा कौन सी चेष्टाओं का ज़िक्र करती हैं जो शेख के प्रति उसकी भक्ति को दर्शाते हैं। दरगाह की खासियत को वह किस तरह दर्शाती है?

उन्होंने यह परंपरा 1580 तक बनाए रखी। प्रत्येक यात्रा पर बादशाह दान-भेंट दिया करते थे, जिनके ब्योरे शाही दस्तावेज़ों में दर्ज हैं। उदाहरण के लिए, 1568 में उन्होंने तीर्थयात्रियों के लिए खाना पकाने हेतु एक विशाल देग़ दरगाह को भेंट की। उन्होंने दरगाह के अहाते में एक मस्जिद भी बनवाई।

नाच और संगीत भी ज़ियारत का हिस्सा थे, खासतौर से कव्वालों द्वारा प्रस्तुत रहस्यवादी गुणगान जिससे परमानंद की भावना को उभारा जा सके। सूफ़ी संत ज़िक्र (ईश्वर का नाम-जाप) या फिर समा (श्रवण करना) यानी आध्यात्मिक संगीत की महफिल के द्वारा ईश्वर की उपासना में विश्वास रखते थे। चिश्ती उपासना पद्धति में सभा का महत्त्व इस तथ्य की पुष्टि करता है कि चिश्ती स्थानीय भक्ति परंपरा से जुड़ें।

7.3 भाषा और संपर्क

न केवल सभा में चिश्तियों ने स्थानीय भाषा को अपनाया अपितु दिल्ली में चिश्ती सिलसिले के लोग हिंदवी में बातचीत करते थे। बाबा फरीद ने भी क्षेत्रीय भाषा में काव्य रचना की जो *गुरु ग्रंथ साहिब* में संकलित है। कुछ और सूफियों ने लंबी कविताएँ मसनवी लिखीं जहाँ ईश्वर के प्रति प्रेम को मानवीय प्रेम के रूपक के द्वारा अभिव्यक्त किया गया। उदाहरणत: मलिक मोहम्मद जायसी का प्रेमाख्यान *पद्मावत* पद्मिनी और चित्तौड़ के राजा रतनसेन की प्रेम कथा के इर्द-गिर्द घूमता है। उनकी आज़माइश प्रतीक है आत्मा की परमात्मा तक पहुँचने की यात्रा का। अक्सर ख़ानक़ाहों में *समा* के दौरान ऐसे काव्यों का वाचन होता था।

सूफी कविता की एक भिन्न विधा की रचना बीजापुर कर्नाटक के आसपास हुई। यह दक्खनी (उर्दू का रूप) में लिखी छोटी कविताएँ थीं जो सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दियों में इस क्षेत्र में बसने वाले चिश्ती संतों द्वारा रची गई थीं। ये रचनाएँ संभवत: औरतों द्वारा घर का काम जैसे चक्की पीसते और चरखा कातते हुए गाई जाती थीं। कुछ और रचनाएँ *लोरीनामा* और *शादीनामा* के रूप में लिखी गईं। यह संभव है कि इस क्षेत्र के सूफी यहाँ पहले से चलती आई भक्ति परंपरा से प्रभावित हुए।

स्रोत 8

चरखानामा

यह गीत चरखे के चलने की धुन पर आधारित है :

जैसे आप रुई लेते हैं,
आप *ज़िक्र-ए-जाली* करें।
जैसे आप रुई को धुनते हैं,
आप *ज़िक्र-ए-कल्बी* करें।
जैसे आप धागे को फिरकी पर लपेटते हैं,
आप *ज़िक्र-ए-आइनी* करें।
ज़िक्र पेट से छाती तक उच्चारित किया जाए।
उसे धागे की तरह गले से उतारें
स्वास के धागे एक-एक गिनें, बहन
चौबीस हज़ार तक गिनें
सुबह-शाम ऐसा करें
और इसे तोहफे में अपने पीर को पेश करें।

अमीर खुसरो और *कौल*

अमीर खुसरो (1253-1323) महान कवि, संगीतज्ञ तथा शेख निज़ामुद्दीन औलिया के अनुयायी थे। उन्होंने *कौल* (अरबी शब्द जिसका अर्थ है कहावत) का प्रचलन करके चिश्ती *समा* को एक विशिष्ट आकार दिया। कौल को कव्वाली के शुरू और आखिर में गाया जाता था। इसके बाद सूफी कविता का पाठ होता था जो फारसी, हिंदवी अथवा उर्दू में होती थी और कभी-कभी इन तीनों ही भाषाओं के शब्द इसमें मौजूद होते थे। शेख निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह पर गाने वाले कव्वाल अपने गायन की शुरुआत कौल से करते हैं। उपमहाद्वीप की सभी दरगाहों पर कव्वाली गाई जाती है।

चित्र 6.14
निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह की कव्वाली

➲ इस गाने के विचार और अभिव्यक्ति के तरीके जहाँआरा की *ज़ियारत* (स्रोत 7) में वर्णित विचारों और अभिव्यक्ति के तरीकों से कैसे समान और भिन्न हैं?

लिंगायतों द्वारा लिखे गए कन्नड़ के *वचन* और पंढरपुर के संतों द्वारा लिखे मराठी के *अभंगों* ने भी उन पर अपना प्रभाव छोड़ा। इस माध्यम से इस्लाम दक्कन के गाँवों में जगह पाने में सफल हुआ।

7.4 सूफ़ी और राज्य

चिश्ती संप्रदाय की एक और विशेषता संयम और सादगी का जीवन था जिसमें सत्ता से दूर रहने पर बल दिया जाता था। किंतु इसका मतलब यह नहीं था कि राजनीतिक सत्ता से अलगाव का भाव रखा जाए। सत्ताधारी विशिष्ट वर्ग अगर बिना माँगे अनुदान या भेंट देता था तो सूफी संत उसे स्वीकार करते थे। सुल्तानों ने ख़ानक़ाहों को कर मुक्त (इनाम) भूमि अनुदान में दी और दान संबंधी न्यास स्थापित किए।

चिश्ती धन और सामान के रूप में दान स्वीकार करते थे किंतु इनको सँजोने के बजाय खाने, कपड़े, रहने की व्यवस्था और अनुष्ठानों जैसे *समा* की महफिलों पर पूरी तरह खर्च कर देते थे। इस तरह शेख के नैतिक अधिकार की पुष्टि होती थी और आम लोगों का उनकी ओर झुकाव बढ़ता था। सूफ़ी संतों की धर्मनिष्ठा, विद्वता और लोगों द्वारा उनकी चमत्कारी शक्ति में विश्वास उनकी लोकप्रियता का कारण था। इन वजहों से शासक भी उनका समर्थन हासिल करना चाहते थे।

शासक न केवल सूफ़ी संतों से संपर्क रखना चाहते थे अपितु उनके समर्थन के भी कायल थे। जब तुर्कों ने दिल्ली सल्तनत की स्थापना की तो *उलमा* द्वारा *शरिया* लागू किए जाने की माँग को ठुकरा दिया। सुल्तान जानते थे कि उनकी अधिकांश प्रजा इस्लाम धर्म मानने वाली नहीं है। ऐसे समय सुल्तानों ने सूफ़ी संतों का सहारा लिया जो अपनी आध्यात्मिक सत्ता को अल्लाह से उद्भूत मानते थे और उलमा द्वारा शरिया की व्याख्या पर निर्भर नहीं थे।

यह भी माना जाता था कि औलिया मध्यस्थ के रूप में ईश्वर से लोगों की ऐहिक और आध्यात्मिक दशा में सुधार लाने का कार्य करते हैं। शायद इसलिए शासक अपनी कब्र सूफ़ी दरगाहों और ख़ानक़ाहों के नज़दीक बनाना चाहते थे।

सुल्तानों और सूफ़ियों के बीच तनाव के उदाहरण भी मौजूद हैं। अपनी सत्ता का दावा करने के लिए दोनों ही कुछ आचारों पर बल देते थे जैसे झुक कर प्रणाम और कदम चूमना। कभी-कभी सूफ़ी शेखों को आडंबरपूर्ण पदवी से संबोधित किया जाता था। उदाहरणत:, शेख निज़ामुद्दीन औलिया के अनुयायी उन्हें *सुल्तान-उल-मशेख* (अर्थात शेखों में सुल्तान) कह कर संबोधित करते थे।

सूफ़ी और राज्य

कुछ अन्य सूफ़ी भी, जैसे कि दिल्ली सल्तनत के युग में सुहरावर्दी और मुग़लयुगीन नक्शबंदी, राज्य से जुड़े रहे। लेकिन उनके जुड़ाव के तरीके चिश्तियों से भिन्न थे। कभी-कभी सूफ़ी दरबारी पद भी स्वीकार कर लेते थे।

स्रोत 9

शाही भेंट अस्वीकार

यह उद्धरण सूफ़ी ग्रंथ से है जो शेख निज़ामुद्दीन औलिया की ख़ानक़ाह में 313 में हुई घटना का वर्णन करता है :

मेरी (अमीर हसन सिजज़ी) अच्छी किस्मत थी कि मैं उनके (निज़ामुद्दीन औलिया) कदम चूम सका... इस समय एक स्थानीय शासक ने दो बगीचे और बहुत सी ज़मीन का पट्टा शेख साहब को भेजा है। साथ ही इनके रखरखाव के लिए औज़ार व आवश्यक वस्तुएँ भेजी हैं। शासक ने यह भी साफ किया है कि वह बगीचों और ज़मीन पर अपना हक कहते हैं: "इस ज़मीन, खेत और बगीचे का मुझे क्या करना है?... हमारे कोई भी आध्यात्मिक गुरु ने इस तरह का काम नहीं किया।"

फिर उन्होंने एक उचित कहानी सुनाई "...सुल्तान ग़ियासुद्दीन जो उस समय उलुग़ ख़ान के नाम से जाने जाते थे, शेख फ़रीदुद्दीन से मिलने आए। उन्होंने शेख को कुछ धनराशि और चार गाँवों का पट्टा भेंट किया। धन दरवेशों के लिए था और ज़मीन शेख के अपने इस्तेमाल के लिए थी। मुस्कुराते हुए शेख-अल-इस्लाम (फ़रीदुद्दीन) ने कहा: मुझे धन दे दो मैं इसे दरवेशों में बाँट दूँगा, पर जहाँ तक ज़मीन के पट्टे का सवाल है उसे उन लोगों को दे दो जिन्हें उनकी कामना है....।"

➲ चर्चा कीजिए...

धार्मिक और राजनीतिक नेताओं में टकराव के संभावित स्रोत क्या-क्या हैं?

➲ सूफ़ियों और राज्य के बीच संबंध का कौन सा पहलू इस कहानी से स्पष्ट होता है? यह किस्सा हमें शेख और उनके अनुयायियों के बीच संपर्क के तरीकों के बारे में क्या बताता है?

चित्र 6.15
अकबर की राजधानी फतेहपुर सीकरी में बाबा फरीद के वंशज, शेख सलीम चिश्ती की दरगाह। यह दरगाह चिश्तियों और मुग़ल राज्य के घनिष्ठ संबंधों का प्रतीक थी।

स्रोत 10

एक ईश्वर

यह रचना कबीर की मानी जाती है:

हे भाई यह बताओ, किस तरह हो सकता है
कि संसार के एक नहीं दो स्वामी हों?
किसने तुम्हें भ्रमित किया है?
ईश्वर को अनेक नामों से पुकारा जाता है: जैसे अल्लाह, राम, करीम, केशव, हरि तथा हज़रत।
विभिन्नताएँ तो केवल शब्दों में हैं जिनका आविष्कार हम स्वयं करते हैं।
कबीर कहते हैं दोनों ही भुलावे में हैं।
इनमें से कोई एक राम को प्राप्त नहीं कर सकता।
एक बकरे को मारता है और दूसरा गाय को।
वे पूरा जीवन विवादों में ही गँवा देते हैं।

➲ विभिन्न समुदायों के ईश्वर के बीच पार्थक्य के खिलाफ़ कबीर किस तरह की दलील पेश करते हैं?

8. नवीन भक्ति पंथ
उत्तरी भारत में संवाद और असहमति

अनेक संत कवियों ने नवीन सामाजिक परिस्थितियों, विचारों और संस्थाओं के साथ स्पष्ट और सांकेतिक दोनों किस्म के संवाद कायम किए। इस काल के तीन प्रमुख और प्रभावकारी व्यक्तियों पर दृष्टिपात कर हम देखेंगे कि इन संवादों को किस भाँति अभिव्यक्ति मिली।

8.1 दैवीय वस्त्र की बुनाई : कबीर

कबीर (लगभग चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी) इस पृष्ठभूमि में उभरने वाले संत कवियों में अप्रतिम थे। इतिहासकारों ने उनके जीवन और काल का अध्ययन उनके काव्य और बाद में लिखी गई जीवनियों के आधार पर किया है। यह प्रक्रिया कई वजहों से चुनौतीपूर्ण रही है।

कबीर की बानी तीन विशिष्ट किंतु परस्पर व्याप्त परिपाटियों में संकलित है। *कबीर बीजक* कबीर पंथियों द्वारा वाराणसी तथा उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों पर संरक्षित है। *कबीर ग्रंथावली* का संबंध राजस्थान के दादू पंथियों से है। इसके अतिरिक्त कबीर के कई पद *आदि ग्रंथ साहिब* (देखिए अनुभाग 8.2) में संकलित हैं। लगभग सभी पांडुलिपि संकलन कबीर की मृत्यु के बहुत बाद में किए गए। उन्नीसवीं शताब्दी में उनके पद संग्रहों को बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे क्षेत्रों में मुद्रांकित किया गया।

कबीर की रचनाएँ अनेक भाषाओं और बोलियों में मिलती हैं। इनमें से कुछ निर्गुण कवियों की खास बोली संत भाषा में हैं। कुछ रचनाएँ जिन्हें उलटबाँसी (उलटी कही उक्तियाँ) के नाम से जाना जाता है, इस प्रकार से लिखी गई कि उनके रोज़मर्रा के अर्थ को उलट दिया गया। इन उलटबाँसी रचनाओं का तात्पर्य परम सत्य के स्वरूप को समझने की मुश्किल दर्शाता है। "केवल ज फूल्या फूल बिन" और "समंदरि लागि आगि" जैसी अभिव्यंजनाएँ कबीर की रहस्यवादी अनुभूतियों को दर्शाती हैं।

कबीर बानी की एक और विशिष्टता यह है कि उन्होंने परम सत्य को वर्णित करने के लिए अनेक परिपाटियों का सहारा लिया। इस्लामी दर्शन की तरह वे इस सत्य को अल्लाह, खुदा, हज़रत और पीर कहते हैं। वेदांत दर्शन से प्रभावित वे सत्य को अलख (अदृश्य), निराकार, ब्रह्मन् और आत्मन् कह कर भी संबोधित करते हैं। कबीर कुछ और शब्द-पदों का इस्तेमाल करते हैं जैसे *शब्द* और *शून्य*, यह अभिव्यंजनाएँ योगी परंपरा से ली गई हैं।

विविध और कभी तो विरोधात्मक विचार इन पदों में व्यंजित होते हैं। कुछ कविताएँ इस्लामी दर्शन के एकेश्वरवाद और मूर्तिभंजन का समर्थन करते हुए हिंदू धर्म के बहुदेववाद और मूर्तिपूजा का खंडन करती हैं। अन्य कविताएँ *ज़िक्र* और *इश्क* के सूफ़ी सिद्धांतों का इस्तेमाल 'नाम सिमरन' की हिंदू परंपरा की अभिव्यक्ति करने के लिए करती हैं।

क्या ये सभी कविताएँ कबीर द्वारा रची गईं? यह कहना मुश्किल है। विद्वान पदों की भाषा शैली और विषयवस्तु के आधार पर यह स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि कौन से पद कबीर के हैं। कबीर की समृद्ध परंपरा इस तथ्य की द्योतक है कि कबीर पहले और आज भी उन लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं जो सत्य की खोज में रूढ़िवादी,

चित्र 6.16
राह-चलते संगीतकार, सत्रहवीं शताब्दी का एक मुग़ल चित्र। यह संभव है कि ऐसे गायक संतों की रचनाओं को गाते थे।

धार्मिक, सामाजिक संस्थाओं, विचारों और व्यवहारों को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखते हैं।

कबीर के विचार संभवतः अवध प्रदेश (उत्तर प्रदेश) की सूफ़ी और योगी परंपरा के साथ हुए संवाद और विवाद के माध्यम से घनीभूत हुए। कबीर की विरासत पर उन अनेक गुटों ने दावा किया जो उन्हें याद करते थे और आज भी कर रहे हैं।

यह तथ्य इस बात से उजागर होता है कि इस विषय पर आज भी विवाद है कि वह जन्म से हिंदू थे अथवा मुसलमान और यह विवाद अनेक संत जीवनियों में उभर कर आते हैं जो सत्रहवीं शताब्दी यानी उनकी मृत्यु के 200 वर्ष बाद से लिखी गईं।

वैष्णव परंपरा की जीवनियों में कबीर (कबीर का अरबी में अर्थ है महान) को जन्म से हिंदू कबीरदास बताया गया है। किंतु उनका पालन गरीब मुसलमान परिवार में हुआ जो जुलाहे थे और कुछ समय पहले ही इस्लाम धर्म के अनुयायी बने थे। इन जीवनियों में यह भी कहा जाता है कि कबीर को भक्ति का मार्ग दिखाने वाले गुरु रामानंद थे।

किंतु कबीर के पद, *गुरु* और *सतगुरु* संबोधन का इस्तेमाल किसी विशेष व्यक्ति के संदर्भ में नहीं करते। इतिहासकारों का यह भी मानना है कि कबीर और रामानंद का समकालीन होना मुश्किल प्रतीत होता है जब तक कि उन्हें बहुत ही लंबी आयु न दे दी जाए। अतः वे परंपराएँ जो दोनों को जोड़ती हैं, स्वीकार नहीं की जा सकतीं। किंतु उनसे यह अवश्य पता चलता है कि कबीर की विरासत बाद की पीढ़ी के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण थी।

8.2 बाबा गुरु नानक और पवित्र शब्द

बाबा गुरु नानक (1469–1539) का जन्म एक हिंदू व्यापारी परिवार में हुआ। उनका जन्मस्थल मुख्यतः इस्लाम धर्मावलंबी पंजाब का ननकाना गाँव था जो रावी नदी के पास था। उन्होंने फारसी पढ़ी और लेखाकार के कार्य का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उनका विवाह छोटी आयु में हो गया था किंतु वह अपना अधिक समय सूफ़ी और भक्त संतों के बीच गुज़ारते थे। उन्होंने दूर-दराज़ की यात्राएँ भी कीं।

बाबा गुरु नानक का संदेश उनके भजनों और उपदेशों में निहित है। इनसे पता लगता है कि उन्होंने निर्गुण भक्ति का प्रचार किया। धर्म के सभी बाहरी आडंबरों को उन्होंने अस्वीकार किया जैसे यज्ञ, आनुष्ठानिक स्नान, मूर्ति पूजा व कठोर तप। हिन्दू और मुसलमानों के धर्मग्रंथों को भी उन्होंने नकारा। बाबा गुरू नानक के लिए परम पूर्ण *रब* का कोई लिंग या आकार नहीं था। उन्होंने इस रब की उपासना के लिए एक सरल

उपाय बताया और वह था उनका निरंतर स्मरण व नाम का जाप। उन्होंने अपने विचार पंजाबी भाषा में *शबद* के माध्यम से सामने रखे। बाबा गुरु नानक यह शबद अलग-अलग रागों में गाते थे और उनका सेवक मरदाना रबाब बजाकर उनका साथ देता था।

बाबा गुरु नानक ने अपने अनुयायियों को एक समुदाय में संगठित किया। सामुदायिक उपासना (संगत) के नियम निर्धारित किए जहाँ सामूहिक रूप से पाठ होता था। उन्होंने अपने अनुयायी अंगद को अपने बाद गुरुपद पर आसीन किया; इस परिपाटी का पालन 200 वर्षों तक होता रहा।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा गुरु नानक किसी नवीन धर्म की संस्थापना नहीं करना चाहते थे, किंतु उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने अपने आचार-व्यवहार को सुगठित कर अपने को हिंदू और मुसलमान दोनों से पृथक चिह्नित किया। पाँचवें गुरु अर्जन देव जी ने बाबा गुरु नानक तथा उनके चार उत्तराधिकारियों, बाबा फरीद, रविदास और कबीर की बानी को *आदि ग्रंथ साहिब* में संकलित किया। इन को "गुरबानी" कहा जाता है और ये अनेक भाषाओं में रचे गए। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दसवें गुरु गोबिन्द सिंह जी ने नवें गुरु तेग बहादुर की रचनाओं को भी इसमें शामिल किया और इस ग्रंथ को *गुरु ग्रंथ साहिब* कहा गया। गुरु गोबिन्द सिंह ने खालसा पंथ (पवित्रों की सेना) की नींव डाली और उनके पाँच प्रतीकों का वर्णन किया : बिना कटे केश, कृपाण, कच्छ, कंघा और लोहे का कड़ा। गुरु गोबिन्द सिंह के नेतृत्व में समुदाय एक सामाजिक, धार्मिक और सैन्य बल के रूप में संगठित होकर सामने आया।

चित्र 6.17
पंद्रहवीं शताब्दी की तमिलनाडु से प्राप्त पत्थर की मूर्ति। यहाँ कृष्ण को बाँसुरी बजाते दिखाया गया है। मीराबाई कृष्ण के इसी रूप को पूजती थीं।

8.3 मीराबाई, भक्तिमय राजकुमारी

मीराबाई (लगभग पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी) संभवतः भक्ति परंपरा की सबसे सुप्रसिद्ध कवयित्री हैं। उनकी जीवनी उनके लिखे भजनों के आधार पर संकलित की गई है जो शताब्दियों तक मौखिक रूप से संप्रेषित होते रहे। मीराबाई मारवाड़ के मेड़ता जिले की एक राजपूत राजकुमारी थीं जिनका विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध मेवाड़ के सिसोदिया कुल में कर दिया गया। उन्होंने अपने पति की आज्ञा की अवहेलना करते हुए पत्नी और माँ के परंपरागत दायित्वों को निभाने से इनकार किया और विष्णु के अवतार कृष्ण को अपना एकमात्र पति स्वीकार किया। उनके ससुराल वालों ने उन्हें विष देने का प्रयत्न किया। किन्तु वह राजभवन से निकल कर एक घुमक्कड़ गायिका बन गईं।

स्रोत 11

कृष्ण के प्रति प्रेम

यह मीराबाई द्वारा रचित एक गीत का अंश है:

अगर-चंदण की चिता बणाऊँ, अपणै हाथ जला जा।
जल-बल भयी भसम की ढेरी, अपणै अंग लगा जा।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।।

एक और पद में वह कहती हैं:

राणों जी मेवाड़ो म्हारो काँई करसी,
म्हे तो गोबिंद रा गुण गास्याँ।
राणों जी रूससी गाँव रखासी, हरी रूस्याँ कुमलास्या।।

➲ यह उद्धरण राणा के प्रति मीराबाई के रुख के बारे में क्या बताता है?

उन्होंने अंतर्मन की भावप्रवणता को व्यक्त करने वाले अनेक गीतों की रचना की।

कुछ परंपराओं के अनुसार मीरा के गुरु रैदास थे जो एक चर्मकार थे। इससे पता चलता है कि मीरा ने जातिवादी समाज की रूढ़ियों का उल्लंघन किया। ऐसा माना जाता है कि अपने पति के राजमहल के ऐश्वर्य को त्याग कर उन्होंने विधवा के सफ़ेद वस्त्र अथवा संन्यासिनी के जोगिया वस्त्र धारण किए।

हालाँकि मीराबाई के आसपास अनुयायियों का जमघट नहीं लगा और उन्होंने किसी निजी मंडली की नींव नहीं डाली किंतु फिर भी वह शताब्दियों से प्रेरणा का स्रोत रही हैं। उनके रचित पद आज भी स्त्रियों और पुरुषों द्वारा गाए जाते हैं। खासतौर से गुजरात व राजस्थान के गरीब लोगों द्वारा जिन्हें "नीच जाति" का समझा जाता है।

शंकरदेव

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में असम में शंकरदेव वैष्णव धर्म के मुख्य प्रचारक के रूप में उभरे। उनके उपदेशों को 'भगवती धर्म' कह कर संबोधित किया जाता है क्योंकि वे भगवद् गीता और भागवत पुराण पर आधारित थे। ये उपदेश सर्वोच्च देवता विष्णु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव पर केंद्रित थे। शंकरदेव ने भक्ति के लिए नाम कीर्तन और श्रद्धावान भक्तों के सत्संग में ईश्वर के नाम उच्चारण पर बल दिया। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार के लिए सत्र या मठ तथा नामघर जैसे प्रार्थनागृह की स्थापना को बढ़ावा दिया। इस क्षेत्र में ये संस्थाएँ और आचार आज भी पनप रहे हैं। शंकरदेव की प्रमुख काव्य रचनाओं में *कीर्तनघोष* भी है।

➲ चर्चा कीजिए...

आपको क्यों लगता है कबीर, बाबा गुरु नानक और मीराबाई इक्कीसवीं शताब्दी में भी महत्त्वपूर्ण हैं?

9. धार्मिक परंपराओं के इतिहासों का पुनर्निर्माण

हमने देखा कि इतिहासकार धार्मिक परंपरा के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए अनेक स्रोतों का उपयोग करते हैं–जैसे मूर्तिकला, स्थापत्य,

सूफ़ी परंपरा के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए विभिन्न स्रोत

सूफ़ी ख़ानक़ाहों के आसपास अनेक ग्रंथों की रचना हुई जिनमें शामिल हैं:

1. सूफ़ी विचारों और आचारों पर प्रबंध पुस्तिका *कश्फ़-उल-महजुब* इस विधा का एक उदाहरण है। यह पुस्तक अली बिन उस्मान हुजविरी (मृत्यु 1071) द्वारा लिखी गई। साहित्य इतिहासकारों को यह जानने में मदद करता है कि उपमहाद्वीप के बाहर की परंपराओं ने भारत में सूफ़ी चिंतन को किस तरह प्रभावित किया।
2. *मुलफ़ुज़ात (सूफ़ी संतों की बातचीत): मुलफ़ुज़ात* पर एक आरंभिक ग्रंथ *फवाइद-अल-फ़ुआद* है। यह शेख निज़ामुद्दीन औलिया की बातचीत पर आधारित एक संग्रह है जिसका संकलन प्रसिद्ध फ़ारसी कवि अमीर हसन सिजज़ी देहलवी ने किया। स्रोत 9 में इस ग्रंथ से लिया एक अंश उद्धृत है। मुलफ़ुज़ात का संकलन विभिन्न सूफ़ी सिलसिलों के शेखों की अनुमति से हुआ। इनका उद्देश्य मुख्यत: उपदेशात्मक था। उपमहाद्वीप के अनेक भागों से जिसमें दक्कन शामिल है, अनेक उदाहरण इस तरह के मिलते हैं। कई शताब्दियों तक इनका संकलन होता रहा।
3. *मक्तुबात* (लिखे हुए पत्रों का संकलन): ये वे पत्र थे जो सूफ़ी संतों द्वारा अपने अनुयायियों और सहयोगियों को लिखे गए। इन पत्रों से धार्मिक सत्य के बारे में शेख के अनुभवों का वर्णन मिलता है जिसे वह अन्य लोगों के साथ बाँटना चाहते थे। वह इन पत्रों में अपने अनुयायियों के लौकिक और आध्यात्मिक जीवन, उनकी आकांक्षाओं और मुश्किलों पर भी टिप्पणी करते थे। विद्वान बहुधा सत्रहवीं शताब्दी के नक्शबंदी सिलसिले के शेख अहमद सरहिंदी (मृत्यु 1624) के लिखे *मक्तुबात-ए-इमाम रब्बानी* पर चर्चा करते हैं। इस शेख की विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन वे बादशाह अकबर की उदारवादी और असांप्रदायिक विचारधारा से करते हैं।
4. *तज़किरा* (सूफ़ी संतों की जीवनियों का स्मरण): भारत में लिखा पहला सूफ़ी तज़किरा मीर खुर्द किरमानी का *सियार-उल-औलिया* है। यह तज़किरा मुख्यत: चिश्ती संतों के बारे में था। सबसे प्रसिद्ध तज़किरा अब्दुल हक मुहाद्दिस देहलवी (मृत्यु 1642) का *अख्बार-उल-अखयार* है। तज़किरा के लेखकों का मुख्य उद्देश्य अपने सिलसिले की प्रधानता स्थापित करना और साथ ही अपनी आध्यात्मिक वंशावली की महिमा का बखान करना था। तज़किरे के बहुत से वर्णन अद्‌भुत और अविश्वसनीय हैं किंतु फिर भी वे इतिहासकारों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और सूफ़ी परंपरा के स्वरूप को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं।

यह याद रखने योग्य है कि प्रत्येक परिपाटी जिसका ज़िक्र इस अध्याय में हुआ है उससे अनेक साहित्यिक और मौखिक संदेश जुड़े हुए हैं। इनमें से कुछ को सुरक्षित किया गया। बहुत सी सूचनाएँ ऐसी थीं जिनमें संप्रेषण के दौरान संशोधन हो गया, व कुछ संदेश ऐसे भी थे जो हमेशा के लिए विस्मृत हो गए।

धर्मगुरुओं से जुड़ी कहानियाँ, दैवीय स्वरूप को समझने को उत्सुक स्त्री और पुरुषों द्वारा लिखी गई काव्य रचनाएँ आदि।

जैसा हमने देखा (अध्याय 1 और 4) मूर्तिकला और स्थापत्यकला का हम इस उद्देश्य के लिए तभी इस्तेमाल कर सकते हैं जब हम उसके संदर्भ को अच्छी तरह समझें अर्थात इन आकृतियों और इमारतों को बनाने और उनका इस्तेमाल करने वालों के विचारों, आस्थाओं और आचारों की हमें समझ हो।

धार्मिक विश्वासों से संबंधित साहित्यिक परंपराओं के बारे में क्या कहा जा सकता है? यदि हम इस अध्याय में वर्णित स्रोतों पर दृष्टिपात करें तो हम देखेंगे कि उनमें काफ़ी विविधता है, और वे कई भाषाओं व शैलियों में लिखे गए हैं। कुछ स्रोत सरल, स्पष्ट भाषा में हैं जैसे कि बसवन्ना के वचन जबकि कुछ अन्य अलंकृत फ़ारसी में लिखे गए मुग़ल सम्राटों के फरमानों का रूप धारण कर लेते हैं। प्रत्येक किस्म के मूल-पाठ को समझने के लिए तरह-तरह का कौशल चाहिए: कई भाषाओं की जानकारी, लेकिन इसके अलावा इतिहासकार को प्रत्येक विधि की शैली व शैलियों में सूक्ष्म अंतरों को भी पहचानना पड़ता है।

लगभग सभी धार्मिक परिपाटियाँ आज भी पनप रही हैं। परिपाटी की यह निरन्तरता इतिहासकारों के लिए लाभदायक सिद्ध होती है क्योंकि वे सामयिक आचार-व्यवहार की तुलना उस परिपाटी से कर सकते हैं जिसका वर्णन साहित्य और पुरानी चित्रकला में मिलता है और साथ ही उस परम्परा में आए परिवर्तनों की रूपरेखा भी तैयार कर सकते हैं किंतु चूँकि ये परंपराएँ आज भी लोगों के जीवन का हिस्सा हैं। लोगों के लिए यह मानना आसान नहीं होता कि समय के साथ संभवतः इन परिपाटियों में बदलाव आया होगा। इतिहासकारों के लिए चुनौती यह है कि वे इस तथ्य की ओर जागरूक हों कि धार्मिक परंपराएँ भी अन्य परंपराओं की तरह परिवर्तनशील हैं।

काल-रेखा

भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ मुख्य धार्मिक शिक्षक

लगभग 500-800 ई.पू.	तमिलनाडु में अप्पार, संबंदर, सुंदरमूर्ति
लगभग 800-900 ईसवी	तमिलनाडु में नम्मलवर, मणिक्वचक्कार, अंडाल, तोंदराडिप्पोडी
लगभग 1000-1100 ईसवी	पंजाब में अल हुजविरी, दाता गंज बक्श; तमिलनाडु में रामानुजाचार्य
लगभग 1100-1200 ईसवी	कर्नाटक में बसवन्ना
लगभग 1200-1300 ईसवी	महाराष्ट्र में ज्ञानदेव मुक्ताबाई; राजस्थान में ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती; पंजाब में बहादुद्दीन जकारिया और फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर; दिल्ली में कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी
लगभग 1300-1400 ईसवी	कश्मीर में लाल देद; सिंध में लाल शाहबाज़ कलंदर; दिल्ली में निज़ामुद्दीन औलिया; उत्तर प्रदेश में रामानंद; महाराष्ट्र में चोखमेला; बिहार में शराफुद्दीन याह्या मनेरी
लगभग 1400-1500 ईसवी	उत्तर प्रदेश में कबीर, रैदास, सूरदास; पंजाब में बाबा गुरु नानक; गुजरात में बल्लभाचार्य; ग्वालियर में अबदुल्ला सत्तारी; गुजरात में मुहम्मद शाह आलम; गुलबर्गा में मीर सैयद मौहम्मद गेसू दराज़; असम में शंकरदेव; महाराष्ट्र में तुकाराम
लगभग 1500-1600 ईसवी	बंगाल में श्री चैतन्य; राजस्थान में मीराबाई; उत्तर प्रदेश में शेख अब्दुल कुद्दस गंगोही, मलिक मौहम्मद जायसी, तुलसीदास
लगभग 1600-1700 ईसवी	हरियाणा में शेख अहमद सरहिंदी; पंजाब में मियाँ मीर

नोट : यह कालावधियाँ इन शिक्षकों के अनुमानित काल को इंगित करती हैं।

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए कि संप्रदाय के समन्वय से इतिहासकार क्या अर्थ निकालते हैं?
2. किस हद तक उपमहाद्वीप में पाई जाने वाली मस्जिदों का स्थापत्य स्थानीय परिपाटी और सार्वभौमिक आदर्शों का सम्मिश्रण है?
3. *बे शरिया* और *बा शरिया* सूफ़ी परंपरा के बीच एकरूपता और अंतर, दोनों को स्पष्ट कीजिए।
4. चर्चा कीजिए कि अलवार, नयनार और वीरशैवों ने किस प्रकार जाति प्रथा की आलोचना प्रस्तुत की?
5. कबीर अथवा बाबा गुरु नानक के मुख्य उपदेशों का वर्णन कीजिए। इन उपदेशों का किस तरह संप्रेषण हुआ।

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. सूफ़ी मत के मुख्य धार्मिक विश्वासों और आचारों की व्याख्या कीजिए।
7. क्यों और किस तरह शासकों ने नयनार और सूफ़ी संतों से अपने संबंध बनाने का प्रयास किया?
8. उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए कि क्यों भक्ति और सूफ़ी चिंतकों ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया?
9. इस अध्याय में प्रयुक्त किन्हीं पाँच स्रोतों का अध्ययन कीजिए और उनमें निहित सामाजिक व धार्मिक विचारों पर चर्चा कीजिए।

मानचित्र कार्य

10. भारत के एक मानचित्र पर, 3 सूफ़ी स्थल और 3 वे स्थल जो मंदिरों (विष्णु, शिव तथा देवी से जुड़ा एक मंदिर) से संबद्ध हैं, निर्दिष्ट कीजिए।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. इस अध्याय में वर्णित किन्हीं 2 धार्मिक उपदेशकों/चिंतकों/संतों का चयन कीजिए और उनके जीवन व उपदेशों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कीजिए। इनके समय, कार्यक्षेत्र और मुख्य विचारों के बारे में एक विवरण तैयार कीजिए। हमें इनके बारे में कैसे जानकारी मिलती है और हमें क्यों लगता है कि वे महत्त्वपूर्ण हैं।

12. इस अध्याय में वर्णित सूफ़ी व देव स्थलों से संबद्ध तीर्थयात्रा के आचारों के बारे में अधिक जानकारी हासिल कीजिए। क्या यह यात्राएँ अभी भी की जाती हैं? इन स्थानों पर कौन लोग और कब-कब जाते हैं? वे यहाँ क्यों जाते हैं? इन तीर्थयात्राओं से जुड़ी गतिविधियाँ कौन सी हैं?

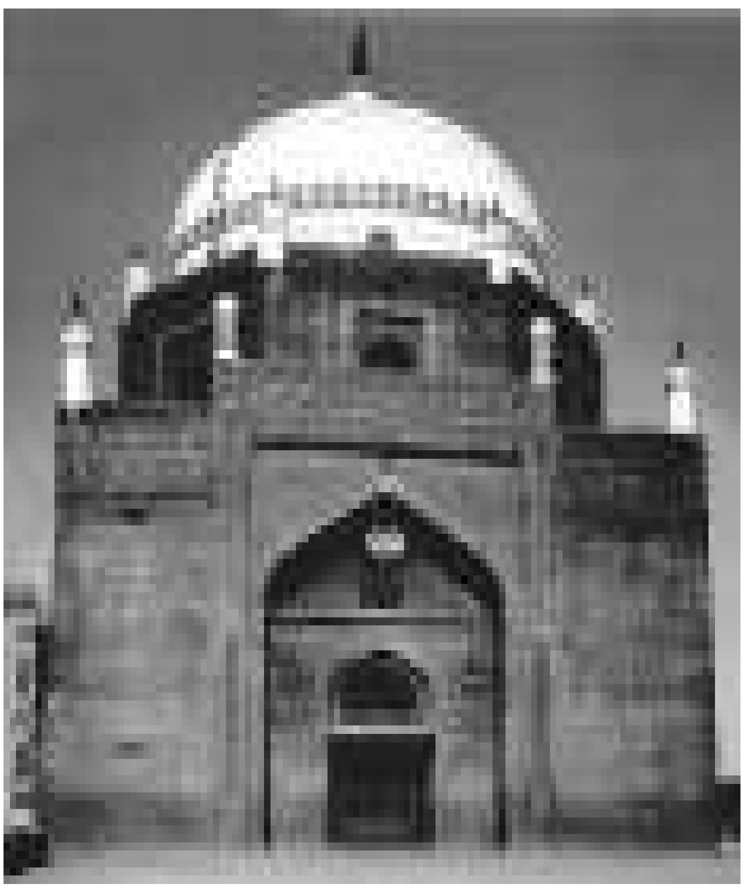

चित्र 6.18
शेख़ बहाउद्दीन ज़कारिया की दरगाह, मुल्तान (पाकिस्तान)

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

रिचर्ड एम. ऐटन (संपा.) 2003
इंडियाज़ इसलामिक ट्रेडिशन्स,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

जॉन स्ट्रेटन हावले, 2005
थ्री भक्ति वाइसिस
मीराबाई, सूरदास एंड कबीर इन देयर टाइम्स एंड अवर्स,
ऑक्सफोर्ड यूनिवसिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

डेविड एन. लोरेंज (संपा.), 2004
रिलिजियस मूवमेंट्स इन
साउथ एशिया 600-1800,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

ए.के. रामानुजन, 1981
हाइम्स फॉर दि ड्राउनिंग,
पेंगुइन, न्यू दिल्ली

एन्नेमरी शिमेल, 1975
मिस्टीकल डाइमेंशन्स ऑफ इसलाम,
यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कारोलीना प्रेस, चैपल हिल

डेविड स्मिथ, 1998
द डांस ऑफ शिवा: रिलिजन आर्ट एंड पोइट्री इन साउथ इंडिया
कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

कारलोटे वोडेविले, 1997
ए वीवर नेम्ड कबीर,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाईट देख सकते हैं
□□□□:/□□□.□□□□□□□□□□.□□□

विषय सात

एक साम्राज्य की राजधानी: विजयनगर

(लगभग चौदहवीं से सोलहवीं सदी तक)

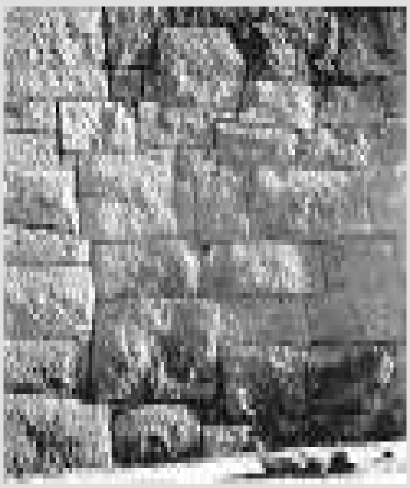

चित्र 7.1
विजयनगर के शहर के चारों ओर बनाई गई पत्थर की दीवार का एक भाग

विजयनगर अथवा "विजय का शहर" एक शहर और एक साम्राज्य, दोनों के लिए प्रयुक्त नाम था। इस साम्राज्य की स्थापना चौदहवीं शताब्दी में की गई थी। अपने चरमोत्कर्ष पर यह उत्तर में कृष्णा नदी से लेकर प्रायद्वीप के सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। 1565 में इस पर आक्रमण कर इसे लूटा गया और बाद में यह उजड़ गया। हालाँकि सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दियों तक यह पूरी तरह से विनष्ट हो गया था, पर फिर भी कृष्णा-तुंगभद्रा दोआब क्षेत्र के निवासियों की स्मृतियों में यह जीवित रहा। उन्होंने इसे हम्पी नाम से याद रखा। इस नाम का आविर्भाव यहाँ की स्थानीय मातृदेवी पम्पादेवी के नाम से हुआ था। इन मौखिक परंपराओं के साथ-साथ पुरातात्विक खोजों, स्थापत्य के नमूनों, अभिलेखों तथा अन्य दस्तावेज़ों ने विजयनगर साम्राज्य को पुन: खोजने में विद्वानों की सहायता की।

1. हम्पी की खोज

हम्पी के भग्नावशेष 1800 ई. में एक अभियंता तथा पुराविद कर्नल कॉलिन मैकेन्जी द्वारा प्रकाश में लाए गए थे। मैकेन्जी, जो ईस्ट इण्डिया कंपनी में कार्यरत थे, ने इस स्थान का पहला सर्वेक्षण मानचित्र तैयार किया। उनके द्वारा हासिल शुरुआती जानकारियाँ विरुपाक्ष मंदिर तथा पम्पादेवी के पूजास्थल के पुरोहितों की स्मृतियों पर आधारित थीं। कालान्तर में 1856 ई. से छाया चित्रकारों ने यहाँ के भवनों के चित्र संकलित करने आरंभ किए जिससे शोधकर्ता उनका अध्ययन कर पाए। 1836 से ही अभिलेखकर्ताओं ने यहाँ और हम्पी के अन्य मंदिरों से कई दर्जन अभिलेखों को इकट्ठा करना आरंभ कर दिया। इस शहर तथा साम्राज्य के इतिहास के पुनर्निर्माण के प्रयास में इतिहासकारों ने इन स्रोतों का विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों तथा तेलुगु, कन्नड़, तमिल और संस्कृत में लिखे गए साहित्य से मिलान किया।

स्रोत 1

कॉलिन मैकेन्जी

1754 ई. में जन्मे कॉलिन मैकेन्जी ने एक अभियंता, सर्वेक्षक, तथा मानचित्रकार के रूप में प्रसिद्धि हासिल की। 1815 में उन्हें भारत का पहला सर्वेयर जनरल बनाया गया और 1821 में अपनी मृत्यु तक वे इस पद पर बने रहे। भारत के अतीत को बेहतर ढंग से समझने और उपनिवेश के प्रशासन को आसान बनाने के लिए उन्होंने इतिहास से संबंधित स्थानीय परंपराओं का संकलन तथा ऐतिहासिक स्थलों का सर्वेक्षण करना आरंभ किया। वे कहते है, "ब्रिटिश प्रशासन के सुप्रभाव में आने से पहले दक्षिण भारत खराब प्रबंधन की दुर्गति से लंबे समय तक जूझता रहा।" विजयनगर के अध्ययन से मैकेन्जी को यह विश्वास हो गया कि कंपनी, "स्थानीय लोगों के अलग-अलग कबीलों, जो इस समय भी जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा थे, को अब भी प्रभावित करने वाले इनमें से कई संस्थाओं, कानूनों तथा रीति-रिवाज़ों के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ" हासिल कर सकती थी।

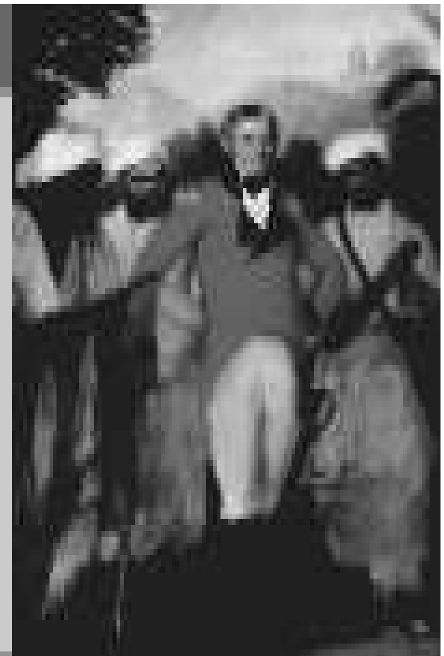

चित्र 7.2
मैकेन्जी और उनके सहायक
यह चित्रकार थॉमस हिकी द्वारा बनाए गए तैलचित्र का किसी अज्ञात चित्रकार द्वारा बनाया गया प्रतिरूप है। यह लगभग 1825 ई. का है और रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड के संकलन से संबद्ध है। मैकेन्जी के बायीं ओर दूरबीन थामे उनका चपरासी स्निाजी और दायीं ओर उनके ब्राह्मण सहायक हैं- एक जैन पंडित (दायीं ओर) और उनके पीछे तेलुगु ब्राह्मण कावलेरी वेन्तक लच्छमैया।

➲ मैकेन्जी और उनके देशज़ सूचनादाताओं को चित्रकार ने किस प्रकार चित्रित किया है? उनके तथा उनके सूचनादाताओं के विषय में दर्शकों पर किस प्रकार के विचार डालने का प्रयास किया गया है?

2. राय, नायक तथा सुलतान

परंपरा और अभिलेखीय साक्ष्यों के अनुसार विजयनगर साम्राज्य की स्थापना दो भाइयों–हरिहर और बुक्का–द्वारा 1336 में की गई थी। इस साम्राज्य की अस्थिर सीमाओं में अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले तथा अलग-अलग धार्मिक परंपराओं को मानने वाले लोग रहते थे।

अपनी उत्तरी सीमाओं पर विजयनगर शासकों ने अपने समकालीन राजाओं, जिनमें दक्कन के सुलतान तथा उड़ीसा के गजपति शासक शामिल थे, उर्वर नदी घाटियों तथा लाभकारी विदेशी व्यापार से उत्पन्न संपदा पर अधिकार के लिए संघर्ष किया। साथ ही इन राज्यों के बीच संपर्क से विचारों का आदान-प्रदान, विशेष रूप से स्थापत्य के क्षेत्र में, होने लगा। विजयनगर के शासकों ने अवधारणाओं और भवन निर्माण की तकनीकों को ग्रहण किया जिन्हें उन्होंने आगे और विकसित किया।

इस साम्राज्य के कई भागों ने पहले शक्तिशाली राज्यों जैसे तमिलनाडु में चोलों और कर्नाटक में होयसालों के राज्य का विकास

कर्नाटक साम्राज्यमु

जहाँ इतिहासकार विजयनगर साम्राज्य शब्द का प्रयोग करते हैं वहीं समकालीन लोगों ने उसे *कर्नाटक साम्राज्यमु* की संज्ञा दी।

चित्र 7.3
तंजावुर में बृहदेश्वर मंदिर का गोपुरम्
अथवा प्रवेशद्वार

देखा था। इन क्षेत्रों के शासक वर्ग ने विशाल मंदिरों जैसे तंजावुर के बृहदेश्वर मंदिर तथा बेलूर के चन्नकेशव मंदिर को संरक्षण प्रदान किया था। विजयनगर के शासकों, जो अपने आप को *राय* कहते थे, ने इन परंपराओं को आगे बढ़ाया और जैसे कि हम देखेंगे, उन्हें नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

हाथी, घोड़े और लोग

गजपति का शाब्दिक अर्थ हाथियों का स्वामी होता है। पंद्रहवीं शताब्दी में उड़ीसा के एक शक्तिशाली शासक वंश का यही नाम था। विजयनगर की लोक प्रचलित परंपराओं में दक्कन के सुल्तानों को अश्वपति या घोड़ों के स्वामी तथा *रायों* को *नरपति* या लोगों के स्वामी की संज्ञा दी गई है।

2.1 शासक और व्यापारी

चूँकि इस काल में युद्धकला प्रभावशाली अश्वसेना पर आधारित होती थी, इसलिए प्रतिस्पर्धी राज्यों के लिए अरब तथा मध्य एशिया से घोड़ों का आयात बहुत महत्त्वपूर्ण था। यह व्यापार आरंभिक चरणों में अरब व्यापारियों द्वारा नियंत्रित था। व्यापारियों के स्थानीय समूह, जिन्हें *कुदिरई चेट्टी* अथवा घोड़ों के व्यापारी कहा जाता था, भी इन विनिमयों में भाग लेते थे। 1498 ई. से कुछ और लोग पटल पर उभर कर आए। ये पुर्तगाली थे जो उपमहाद्वीप के पश्चिमी तट पर आए और व्यापारिक तथा सामरिक केंद्र स्थापित करने का प्रयास करने लगे। उनकी बेहतर सामरिक तकनीक, विशेष रूप से बंदूकों के प्रयोग ने उन्हें इस काल की उलझी हुई राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बनकर उभरने में सहायता की।

विजयनगर भी मसालों, वस्त्रों तथा रत्नों के अपने बाज़ारों के लिए प्रसिद्ध था। ऐसे शहरों के लिए व्यापार एक प्रतिष्ठा का मानक माना जाता था। यहाँ की समृद्ध जनता मँहगी विदेशी वस्तुओं की माँग करती थी विशेष रूप से रत्नों और आभूषणों की। दूसरी ओर व्यापार से प्राप्त राजस्व राज्य की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान देता था।

2.2 राज्य का चरमोत्कर्ष तथा पतन

राजनीति में सत्ता के दावेदारों में शासकीय वंश के सदस्य तथा सैनिक कमांडर शामिल थे। पहले राजवंश, जो संगम वंश कहलाता था, ने 1485 तक नियंत्रण रखा। उन्हें सुलुवों ने उखाड़ फेंका, जो सैनिक कमांडर थे और वे 1503 तक सत्ता में रहे। इसके बाद तुलुवों ने उनका स्थान लिया। कृष्णदेव राय तुलुव वंश से ही संबद्ध था।

कृष्णदेव राय के शासन की चारित्रिक विशेषता विस्तार और दृढ़ीकरण था। इसी काल में तुंगभद्रा और कृष्णा नदियों के बीच का क्षेत्र (रायचूर दोआब) हासिल किया गया (1512), उड़ीसा के शासकों का दमन किया गया (1514) तथा बीजापुर के सुल्तान को बुरी तरह पराजित किया गया था (1520)। हालाँकि राज्य हमेशा सामरिक रूप से तैयार रहता था, लेकिन फिर भी यह अतुलनीय शांति और समृद्धि की स्थितियों में फला-फूला। कुछ बेहतरीन मंदिरों के निर्माण तथा कई महत्त्वपूर्ण दक्षिण भारतीय मंदिरों में भव्य *गोपुरमों* को जोड़ने का श्रेय कृष्णदेव को ही जाता है। उसने अपनी माँ के नाम पर विजयनगर के समीप ही नगलपुरम् नामक उपनगर की स्थापना भी की थी। विजयनगर के संदर्भ में सबसे विस्तृत विवरण कृष्णदेव राय के या उसके तुरंत बाद के कालों से प्राप्त होते हैं।

कृष्णदेव की मृत्यु के पश्चात 1529 में राजकीय ढाँचे में तनाव उत्पन्न होने लगा। उसके उत्तराधिकारियों को विद्रोही नायकों या सेनापतियों से चुनौती का सामना करना पड़ा। 1542 तक केंद्र पर नियंत्रण एक अन्य राजकीय वंश, अराविदु के हाथों में चला गया, जो सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक सत्ता पर काबिज़ रहे। पहले की ही तरह इस काल में भी विजयनगर शासकों और साथ ही दक्कन सल्तनतों के शासकों की सामरिक महत्त्वाकांक्षाओं के चलते समीकरण बदलते रहे। अंततः यह स्थिति विजयनगर के विरुद्ध दक्कन सल्तनतों के बीच मैत्री-समझौते के रूप में परिणत हुई। 1565 में विजयनगर की सेना प्रधानमंत्री रामराय के नेतृत्व में राक्षसी-तांगड़ी (जिसे तालीकोटा के नाम से भी जाना जाता है) के युद्ध में उतरी जहाँ उसे बीजापुर, अहमदनगर तथा गोलकुण्डा की संयुक्त सेनाओं द्वारा करारी शिकस्त मिली। विजयी सेनाओं ने विजयनगर शहर पर धावा बोलकर उसे लूटा। कुछ ही वर्षों के भीतर यह शहर पूरी तरह से उजड़ गया। अब साम्राज्य का केंद्र पूर्व की ओर स्थानांतरित हो गया जहाँ अराविदु राजवंश ने पेनुकोण्डा से और बाद में चन्द्रगिरी (तिरुपति के समीप) से शासन किया।

स्रोत 2

राजा और व्यापारी

विजयनगर के सबसे प्रसिद्ध शासक कृष्णदेव राय (शासनकाल 1509-29) ने शासनकला के विषय में *अमुक्तमल्यद* नामक तेलुगु भाषा में एक कृति लिखी। व्यापारियों के विषय में उसने लिखा:

> एक राजा को अपने बन्दरगाहों को सुधारना चाहिए और वाणिज्य को इस प्रकार प्रोत्साहित करना चाहिए कि घोड़ों, हाथियों, रत्नों, चंदन, मोती तथा अन्य वस्तुओं का खुले तौर पर आयात किया जा सके... उसे प्रबंध करना चाहिए कि उन विदेशी नाविकों जिन्हें तूफानों, बीमारी या थकान के कारण उनके देश में उतरना पड़ता है, की भली-भाँति देखभाल की जा सके... सुदूर देशों के व्यापारियों, जो हाथियों और अच्छे घोड़ों का आयात करते हैं, को रोज बैठक में बुलाकर, तोहफ़े देकर तथा उचित मुनाफे की स्वीकृति देकर अपने साथ संबद्ध करना चाहिए। ऐसा करने पर ये वस्तुएँ कभी भी तुम्हारे दुश्मनों तक नहीं पहुँचेंगी।

➲ आपके विचार में राजा व्यापार को प्रोत्साहित करने का इच्छुक क्यों था? इन विनिमयों से किन समूहों को लाभ पहुँचा होगा?

मानचित्र 1
दक्षिण भारत, लगभग चौदहवीं–अठारहवीं शताब्दी।

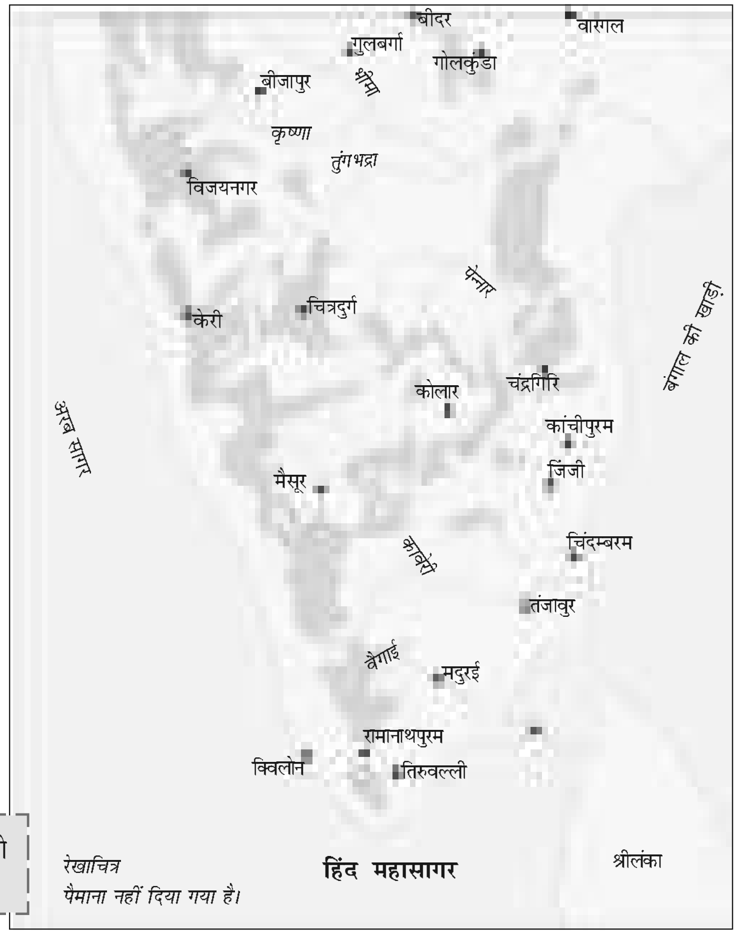

➲ उन आधुनिक राज्यों को चिह्नित कीजिए जो विजयनगर साम्राज्य का भाग थे।

हालाँकि विजयनगर शहर के विध्वंस के लिए सुल्तानों की सेनाएँ उत्तरदायी थीं, फिर भी सुलतानों और *रायों* के संबंध धार्मिक भिन्नताएँ होने पर भी हमेशा या अपरिहार्य रूप से शत्रुतापूर्ण नहीं रहते थे। उदाहरण के लिए कृष्णदेव राय ने सल्तनतों में सत्ता के कई दावेदारों का समर्थन किया और "यवन राज्य की स्थापना करने वाला" विरुद धारण करके गौरव महसूस किया। इसी प्रकार, बीजापुर के सुल्तान ने कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात विजयनगर में उत्तराधिकार के विवाद को सुलझाने के लिए हस्तक्षेप किया। वास्तव में विजयनगर शासक और सल्तनतें दोनों ही एक-दूसरे के स्थायित्व को निश्चित करने की इच्छुक थीं। यह रामराय की जोखिम भरी नीति थी, जिसके अनुसार उसने एक सुलतान को दूसरे के विरुद्ध करने की कोशिश की किंतु वे सुल्तान एक हो गए और उन्होंने उसे निर्णायक रूप से पराजित कर किया।

यवन संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका प्रयोग यूनानियों तथा उत्तर-पश्चिम से उपमहाद्वीप में आनेवाले अन्य लोगों के लिए किया जाता था।

2.3 *राय* तथा *नायक*

साम्राज्य में शक्ति का प्रयोग करने वालों में सेना प्रमुख होते थे जो समान्यतः किलों पर नियंत्रण रखते थे और जिनके पास सशस्त्र समर्थक होते थे। ये प्रमुख आमतौर पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमणशील रहते थे और कई बार बसने के लिए उपजाऊ भूमि की तलाश में किसान भी उनका साथ देते थे। इन प्रमुखों को *नायक* कहते थे और ये आमतौर पर तेलुगु या कन्नड़ भाषा बोलते थे। कई नायकों ने विजयनगर शासक की प्रभुसत्ता के आगे समर्पण किया था पर ये अक्सर विद्रोह कर देते थे और इन्हें सैनिक कार्रवाई के माध्यम से ही वश में किया जाता था।

अमर-नायक प्रणाली विजयनगर साम्राज्य की एक प्रमुख राजनीतिक खोज थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रणाली के कई तत्त्व दिल्ली सल्तनत की *इक्ता* प्रणाली से लिए गए थे।

अमर-नायक सैनिक कमांडर थे जिन्हें *राय* द्वारा प्रशासन के लिए राज्य-क्षेत्र दिये जाते थे। वे किसानों, शिल्पकर्मियों तथा व्यापारियों से भू राजस्व तथा अन्य कर वसूल करते थे। वे राजस्व का कुछ भाग व्यक्तिगत उपयोग तथा घोड़ों और हाथियों के निर्धारित दल के रख-रखाव के लिए अपने पास रख लेते थे। ये दल विजयनगर शासकों को एक प्रभावी सैनिक शक्ति प्रदान करने में सहायक होते थे जिसकी मदद से उन्होंने पूरे दक्षिणी प्रायद्वीप को अपने नियंत्रण में किया। राजस्व का कुछ भाग मन्दिरों तथा सिंचाई के साधनों के रख-रखाव के लिए खर्च किया जाता था।

अमर-नायक राजा को वर्ष में एक बार भेंट भेजा करते थे और अपनी स्वामिभक्ति प्रकट करने के लिए राजकीय दरबार में उपहारों के साथ स्वयं उपस्थित हुआ करते थे। राजा कभी-कभी उन्हें एक से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर उन पर अपना नियंत्रण दर्शाता था पर सत्रहवीं शताब्दी में इनमें से कई नायकों ने अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। इस कारण केंद्रीय राजकीय ढाँचे का विघटन तेजी से होने लगा।

अमर शब्द का आविर्भाव मान्यतानुसार संस्कृत शब्द *समर* से हुआ है जिसका अर्थ है लड़ाई या युद्ध। यह फ़ारसी शब्द *अमीर* से भी मिलता-जुलता है जिसका अर्थ है– ऊँचे पद का कुलीन व्यक्ति।

➲ चर्चा कीजिए...

मानचित्र 1 पर चन्द्रगिरी, मदुरई, इक्केरी, तंजावुर तथा मैसूर को चिह्नित कीजिए, ये सभी *नायक* शक्ति के केंद्र थे। यह भी चर्चा कीजिए कि नदियों और पहाड़ों ने किन मायनों में विजयनगर के साथ संचार को सरल अथवा बाधित किया।

3. विजयनगर : राजधानी तथा उसके परिप्रदेश

अब हम उस समय के सबसे प्रसिद्ध शहरों में से एक विजयनगर की ओर रुख़ करते हैं। अधिकांश राजधानियों की तरह ही यह भी एक विशिष्ट भौतिक रूपरेखा तथा स्थापत्य शैली से अभिलक्षित थी।

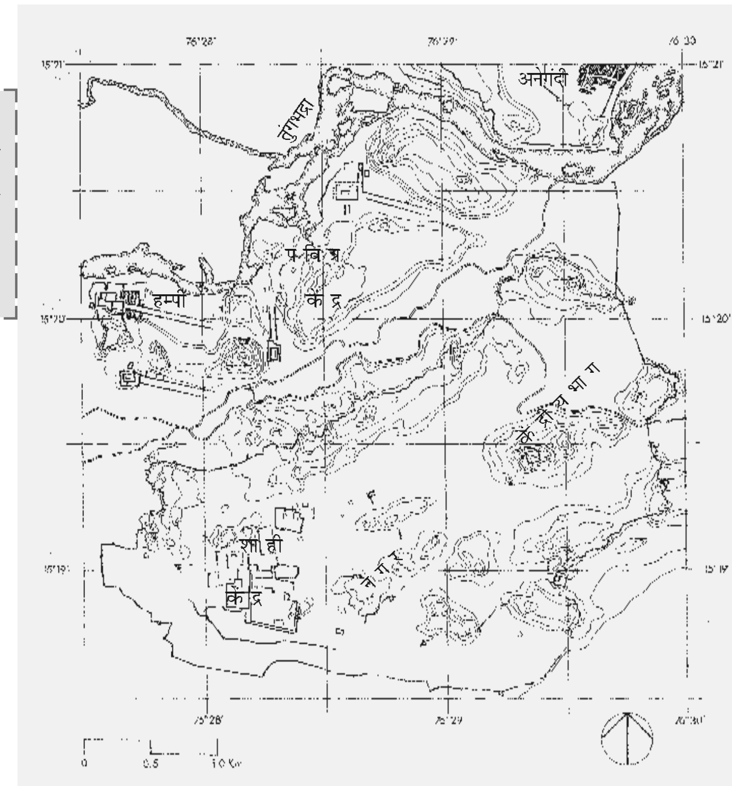

चित्र 7.4
विजयनगर का नक्शा

➲ नक्शे पर बने तीन अंचलों को पहचानिए। मध्यभाग को ध्यान से देखिए। क्या आप नदियों से जुड़ती हुई नहरों को देख सकते हैं? आप कितनी किलेबन्द दीवारों को देख सकते हैं। क्या धार्मिक केंद्र किलेबन्द था?

शहर के विषय में खोज

विजयनगर के राजाओं तथा उनके नायकों के बड़ी संख्या में अभिलेख मिले हैं जिनमें मन्दिरों को दिए जानेवाले दानों का उल्लेख तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण है। कई यात्रियों ने शहर की यात्रा की और इसके बारे में लिखा। इनमें सबसे उल्लेखनीय वृत्तांत निकोलो दे कॉन्ती नामक इतालवी व्यापारी, अब्दुर रज़्ज़ाक नामक फ़ारस के राजा का दूत, अफ़ानासी निकितिन नामक रूस का एक व्यापारी, जिन सभी ने पंद्रहवीं शताब्दी में शहर की यात्रा की थी, और दुआर्ते बरबोसा, डोमिंगो पेस तथा पुर्तगाल का फर्नावो नूनिज़, जो सभी सोलहवीं शताब्दी में आए थे, के हैं।

स्रोत 3

विशाल, फैला हुआ शहर

यह डोमिंगो पेस द्वारा लिखे गए विजयनगर शहर के वर्णन से लिया गया एक उद्धरण है:

> इस शहर का परिमाप मैं यहाँ नहीं लिख रहा हूँ क्योंकि यह एक स्थान से पूरी तरह नहीं देखा जा सकता, पर मैं एक पहाड़ पर चढ़ा जहाँ से मैं इसका एक बड़ा भाग देख पाया। मैं इसे पूरी तरह से नहीं देख पाया क्योंकि यह कई पर्वत श्रृंखलाओं के बीच स्थित है। वहाँ से मैंने जो देखा वह मुझे रोम जितना विशाल प्रतीत हुआ, और देखने में अत्यंत सुन्दर; इसमें पेड़ों के कई उपवन हैं, आवासों के बगीचों में, तथा पानी की कई नालियाँ जो इसमें आती हैं, तथा कई स्थानों पर झीलें हैं; तथा राजा के महल के समीप ही खजूर के पेड़ों का बगीचा तथा अन्य फल प्रदान करने वाले वृक्ष थे।

➲ क्या आप आज किसी शहर में ये अभिलक्षण देख सकते हैं? आपके विचार में पेस ने उद्यानों तथा जल-स्रोतों को विशेष-उल्लेख के लिए क्यों चुना?

3.1 जल-संपदा

विजयनगर की भौगोलिक स्थिति के विषय में सबसे चौंकाने वाला तथ्य तुंगभद्रा नदी द्वारा यहाँ निर्मित एक प्राकृतिक कुण्ड है। यह नदी उत्तर-पूर्व दिशा में बहती है। आस-पास का भूदृश्य रमणीय ग्रेनाइट की पहाड़ियों से परिपूर्ण है जो शहर के चारों ओर करधनी का निर्माण करती सी प्रतीत होती हैं। इन पहाड़ियों से कई जल-धाराएँ आकर नदी से मिलती हैं।

लगभग सभी धाराओं के साथ-साथ बाँध बनाकर अलग-अलग आकारों के हौज़ बनाए गए थे। चूँकि यह प्रायद्वीप के सबसे शुष्क क्षेत्रों में से एक था इसलिए पानी के संचयन और इसे शहर तक ले जाने के व्यापक प्रबंध करना आवश्यक था। ऐसे सबसे महत्त्वपूर्ण हौजों में एक का निर्माण पंद्रहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में हुआ जिसे आज कमलपुरम् जलाशय कहा जाता है। इस हौज़ के पानी से न केवल आस-पास के खेतों को सींचा जाता था बल्कि इसे एक नहर के माध्यम से "राजकीय केंद्र" तक भी ले जाया गया था।

सबसे महत्त्वपूर्ण जल संबंधी संरचनाओं में से एक, हिरिया नहर को आज भी भग्नावशेषों के बीच देखा जा सकता है। इस नहर में तुंगभद्रा पर बने बाँध से पानी लाया जाता था और इसे "धार्मिक केंद्र" से "शहरी केंद्र" को अलग करने वाली घाटी को सिंचित करने में प्रयोग किया जाता था। संभवत: इसका निर्माण संगम वंश के राजाओं द्वारा करवाया गया था।

3.2 क़िलेबंदियाँ तथा सड़कें

इससे पहले कि हम शहर के विभिन्न भागों का गहन परीक्षण करें, हम उन विशाल क़िलेबंदी की दीवारों पर नज़र डालते हैं जिनसे उन्हें घेरा गया था। पंद्रहवीं शताब्दी में फ़ारस के शासक द्वारा कालीकट (कोज़ीकोड) भेजा गया दूत अब्दुर रज़्ज़ाक क़िलेबंदी से बहुत प्रभावित हुआ और उसने दुर्गों की सात पंक्तियों का उल्लेख किया। इनसे न केवल शहर को बल्कि कृषि में प्रयुक्त आसपास के क्षेत्र तथा जंगलों को भी घेरा गया था। सबसे बाहरी दीवार शहर के चारों ओर बनी पहाड़ियों को आपस में जोड़ती थी। यह विशाल राजगिरी संरचना थोड़ी सी शुण्डाकार थी। गारे या जोड़ने के लिए किसी भी वस्तु का निर्माण में कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया था। पत्थर के टुकड़े फानाकार थे, जिसके कारण वे अपने स्थान पर टिके रहते थे। दीवारों के अंदर का भाग मिट्टी और मलवे के मिश्रण से बना हुआ था। वर्गाकार तथा आयताकार बुर्ज़ बाहर की ओर निकले हुए थे।

इस क़िलेबंदी की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इससे खेतों को भी घेरा गया था। अब्दुर रज़्ज़ाक लिखता है कि, "पहली, दूसरी और

स्रोत 4

हौज़ों/जलाशयों का निर्माण किस प्रकार होता था?

कृष्णदेव राय द्वारा बनवाए गए जलाशय के विषय में पेस लिखता है:

राजा ने एक जलाशय बनवाया... दो पहाड़ियों के मुख-विबर पर जिससे दोनों में से किसी पहाड़ी से आने वाला सारा जल वहाँ इकट्ठा हो, इसके अलावा जल 9 मील (लगभग 15 किमी) से भी अधिक की दूरी से पाइपों से आता है जो बाहरी शृंखला के निचले हिस्से के साथ-साथ बनाए गए थे। यह जल एक झील से लाया जाता है जो छलकाव से खुद एक छोटी नदी में मिलती है। जलाशय में तीन विशाल स्तंभ बने हैं जिन पर खूबसूरती से चित्र उकेरे गए हैं; ये ऊपरी भाग में कुछ पाइपों से जुड़े हुए हैं जिनसे ये अपने बगीचों तथा धान के खेतों की सिंचाई के पानी लाते हैं। इस जलाशय को बनाने के लिए इस राजा ने एक पूरी पहाड़ी को तुड़वा दिया... जलाशय में मैंने इतने लोगों को कार्य करते देखा कि वहाँ पन्द्रह से बीस हज़ार आदमी थे, चीटियों की तरह...

चित्र 7.5
राजकीय केंद्र की ओर जाती एक कृत्रिम जल प्रणाली

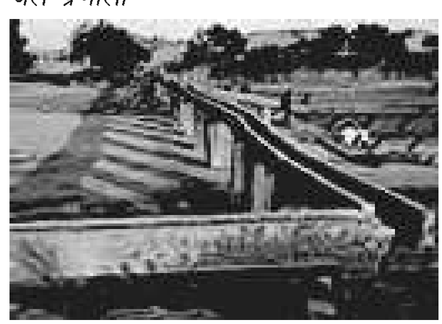

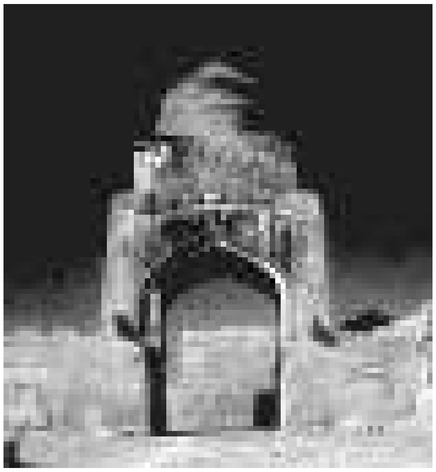

चित्र 7.6
क़िलेबंद दीवार में बना एक प्रवेशद्वार

➲ इन दो प्रवेश-द्वारों के बीच समानताओं तथा विभिन्नताओं का वर्णन कीजिए। आपके विचार में विजयनगर के शासकों ने इण्डो-इस्लामी स्थापत्य के तत्त्वों को क्यों अपनाया?

चित्र 7.7
एक गोपुरम्

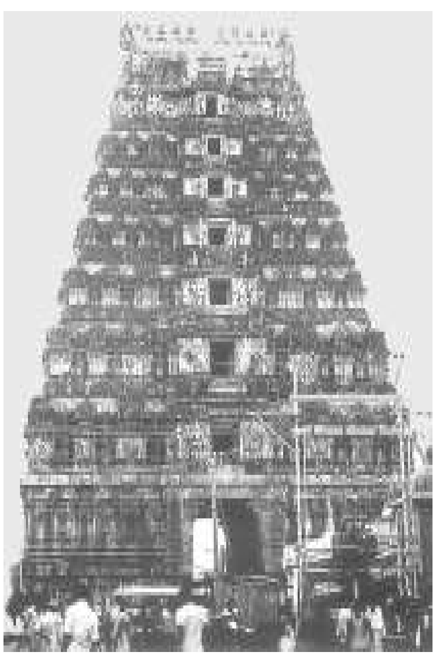

तीसरी दीवारों के बीच जुते हुए खेत, बग़ीचे तथा आवास हैं"। और पेस कहता है: "इस पहली परिधि से शहर में प्रवेश करने तक की दूरी बहुत है, जिसमें खेत हैं जहाँ वे धान उगाते हैं और कई उद्यान हैं और बहुत जल जो दो झीलों से लाया जाता है।" इन कथनों की आज के पुरातत्त्वविदों द्वारा पुष्टि की गई है, जिन्होंने धार्मिक केंद्र तथा नगरीय केंद्र के बीच एक कृषि क्षेत्र के साक्ष्य खोज निकाले हैं। यह क्षेत्र एक व्यापक नहर प्रणाली के माध्यम से सींचा जाता था, जिसमें तुंगभद्रा से जल लाया जाता था।

आपके विचार में कृषि-क्षेत्रों को क़िलेबंद भूभाग में क्यों समाहित किया जाता था? अक्सर मध्यकालीन घेराबंदियों का मुख्य उद्देश्य प्रतिपक्ष को खाद्य सामग्री से वंचित कर समर्पण के लिए बाध्य करना होता था। ये घेराबंदियाँ कई महीनों और यहाँ तक कि वर्षों तक चल सकती थीं। आम तौर पर शासक ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए क़िलेबंद क्षेत्रों के भीतर ही विशाल अन्नागारों का निर्माण करवाते थे। विजयनगर के शासकों ने पूरे कृषि भूभाग को बचाने के लिए एक अधिक मँहगी तथा व्यापक नीति को अपनाया।

दूसरी क़िलेबंदी नगरीय केंद्र के आंतरिक भाग के चारों ओर बनी हुई थी, और तीसरी से शासकीय केंद्र को घेरा गया था जिसमें महत्त्वपूर्ण इमारतों के प्रत्येक समूह को अपनी ऊँची दीवारों से घेरा गया था।

दुर्ग में प्रवेश के लिए अच्छी तरह सुरक्षित प्रवेशद्वार थे जो शहर को मुख्य सड़कों से जोड़ते थे। प्रवेशद्वार विशिष्ट स्थापत्य के नमूने थे जो अकसर उन संरचनाओं को परिभाषित करते थे जिनमें प्रवेश को वे नियंत्रित करते थे। क़िलेबंद बस्ती में जाने के लिए बने प्रवेशद्वार पर बनी मेहराब और साथ ही द्वार के ऊपर बनी गुंबद (चित्र 7.6) तुर्की सुल्तानों द्वारा प्रवर्तित स्थापत्य के चारित्रिक तत्त्व माने जाते हैं। कला-इतिहासकार इस शैली को इंडो-इस्लामिक (हिंद-इस्लामी) कहते हैं क्योंकि इसका विकास विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय स्थापत्य की परंपराओं के साथ संपर्क से हुआ।

पुरातत्वविदों ने शहर के अंदर की तथा वहाँ से बाहर जाने वाली सड़कों का अध्ययन किया है। इनकी पहचान प्रवेशद्वारों से होकर जाने वाले रास्तों के अनुरेखण तथा फर्श वाली सड़कों की खोजों से की गई है। सड़कें सामान्यत: पहाड़ी भूभाग से बचकर घाटियों से होकर ही इधर-उधर घूमती थीं। सबसे महत्त्वपूर्ण सड़कों में से कई मंदिर के प्रवेशद्वारों से आगे बढ़ी हुई थीं और इनके दोनों ओर बाज़ार थे।

3.3 शहरी केंद्र

शहरी केंद्र की ओर जाने वाली सड़कों पर चलें तो सामान्य लोगों के आवासों के अपेक्षाकृत कम पुरातात्विक साक्ष्य हैं। पुरातत्वविदों ने कुछ

स्थानों, जिनमें शहरी केंद्र का उत्तर-पूर्वी कोना भी शामिल है, में परिष्कृत चीनी मिट्टी पायी है और उनका यह सुझाव है कि हो सकता है इन स्थानों में अमीर व्यापारी रहते हों। यह मुस्लिम रिहायशी मुहल्ला भी था। यहाँ स्थित मक़बरों तथा मस्जिदों के विशिष्ट कार्य हैं, फिर भी उनका स्थापत्य हम्पी में मिले मन्दिरों के मण्डपों के स्थापत्य से मिलता जुलता है।

सामान्य लोगों के आवासों, जो अब अस्तित्व में नहीं हैं, का सोलहवीं शताब्दी का पुर्तगाली यात्री बरबोसा कुछ इस प्रकार वर्णन करता है: "लोगों के अन्य आवास छप्पर के हैं, पर फिर भी सुदृढ़ हैं, और व्यवसाय के आधार पर कई खुले स्थानों वाली लंबी गलियों में व्यवस्थित हैं।"

क्षेत्र-सर्वेक्षण इंगित करते हैं कि इस पूरे क्षेत्र में बहुत से पूजा स्थल और छोटे मन्दिर थे जो विविध प्रकार के संप्रदायों, जो संभवतः विभिन्न समुदायों द्वारा संरक्षित थे, के प्रचलन की ओर संकेत करते हैं। सर्वेक्षणों से यह भी इंगित होता है कि कुएँ, बरसात के पानी वाले जलाशय और साथ ही मन्दिरों के जलाशय संभवतः सामान्य नगर निवासियों के लिए पानी के स्रोत का कार्य करते थे।

चित्र 7.8
उत्खनित पटरी का एक भाग

चित्र 7.9
चीनी मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े

➲ आपके विचार में ये टुकड़े मूलतः किस प्रकार के बर्तनों का हिस्सा थे?

चित्र 7.10
विजयनगर में एक मस्जिद

➲ क्या इस मस्जिद में इण्डो-इस्लामी स्थापत्य के चारित्रिक तत्व विद्यमान हैं?

4. राजकीय केंद्र

राजकीय केंद्र बस्ती के दक्षिण-पश्चिमी भाग में स्थित था। हालाँकि इसे राजकीय केंद्र की संज्ञा दी गई है, पर इसमें 60 से भी अधिक मन्दिर सम्मिलित थे। स्पष्टतः मन्दिरों और संप्रदायों को प्रश्रय देना शासकों के लिए महत्त्वपूर्ण था जो इन देव-स्थलों में प्रतिष्ठित देवी-देवताओं से संबंध के माध्यम से अपनी सत्ता को स्थापित करने तथा वैधता प्रदान करने का प्रयास कर रहे थे।

लगभग तीस संरचनाओं की पहचान महलों के रूप में की गई है। ये अपेक्षाकृत बड़ी संरचनाएँ हैं जो आनुष्ठानिक कार्यों से संबद्ध नहीं होती।

➲ चर्चा कीजिए...
विजयनगर की रूपरेखा की तुलना अपने नगर या गाँव की रूपरेखा से कीजिए।

विजय का एक भवन?

सभा मंडप तथा महानवमी डिब्बा जिसे पेस, संयुक्त रूप से "विजय का भवन" की संज्ञा देता है, के विषय में वह लिखता है:

> इन संरचनाओं में एक के ऊपर एक, दो मंच हैं, सुंदरता से चित्रित... ऊपरी मंच पर... इस विजय के भवन में राजा ने कपड़े से बना एक कमरा बनवाया है... जहाँ मूर्ति का एक पूजा स्थल है... और एक अन्य में बीच में एक चबूतरा रखा हुआ है, जिस पर राज्य का सिंहासन खड़ा हुआ है, (मुकुट तथा राजकीय पायल)...

चित्र 7.11
महानवमी डिब्बा

इन संरचनाओं तथा मंदिरों के बीच एक अंतर यह था कि मंदिर पूरी तरह से राजगिरी से निर्मित थे जबकि धर्मेतर भवनों की अधिरचना विकारी वस्तुओं से बनाई गई थी।

4.1 महानवमी डिब्बा

इस क्षेत्र की कुछ अधिक विशिष्ट संरचनाओं का नामकरण भवनों के आकार और साथ ही उनके कार्यों के आधार पर किया गया है। "राजा का भवन" नामक संरचना अंत:क्षेत्र में सबसे विशाल है परंतु इसके राजकीय आवास होने का कोई निश्चित साक्ष्य नहीं मिला है। इसके दो सबसे प्रभावशाली मंच हैं, जिन्हें सामान्यत: "सभा मंडप" तथा "महानवमी डिब्बा" कहा जाता है। पूरा क्षेत्र ऊँची दोहरी दीवारों से घिरा है और इनके बीच में एक गली है। सभा मंडप एक ऊँचा मंच है जिसमें पास-पास तथा निश्चित दूरी पर लकड़ी के स्तंभों के लिए छेद बने हुए हैं। इसमें दूसरी मंज़िल, जो इन स्तंभों पर टिकी थी, तक जाने के लिए सीढ़ी बनी हुई थी। स्तंभों के एक दूसरे से बहुत पास-पास होने से बहुत कम खुला स्थान बचता होगा और इसलिए यह स्पष्ट नहीं है कि यह मंडप किस प्रयोजन के लिए बनाया गया था।

शहर के सबसे ऊँचे स्थानों में से एक पर स्थित "महानवमी डिब्बा" एक विशालकाय मंच है जो लगभग 11000 वर्ग फीट के आधार से 40 फीट की ऊँचाई तक जाता है। ऐसे साक्ष्य मिले हैं जिनसे पता चलता है कि इस पर एक लकड़ी की संरचना बनी थी। मंच का आधार उभारदार उत्कीर्णन से पटा पड़ा है (चित्र 7.12)।

इस संरचना से जुड़े अनुष्ठान, संभवत: सितंबर तथा अक्टूबर के शरद मासों में मनाए जाने वाले दस दिन के हिंदू त्यौहार, जिसे दशहरा (उत्तर भारत), दुर्गा पूजा (बंगाल में) तथा नवरात्री या महानवमी (प्रायद्वीपीय भारत में) नामों से जाना जाता है, के महानवमी (शाब्दिक अर्थ, महान नवाँ

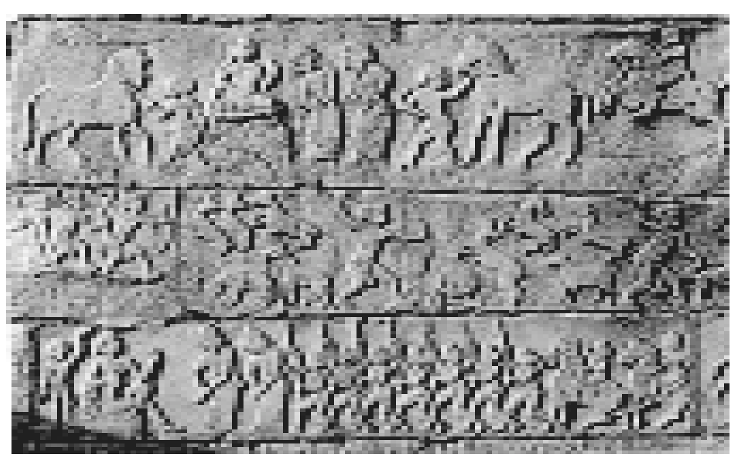

चित्र 7.12
महानवमी डिब्बा पर उत्कीर्णित चित्र

➲ क्या आप इन चित्रों के विषयों को पहचान सकते हैं?

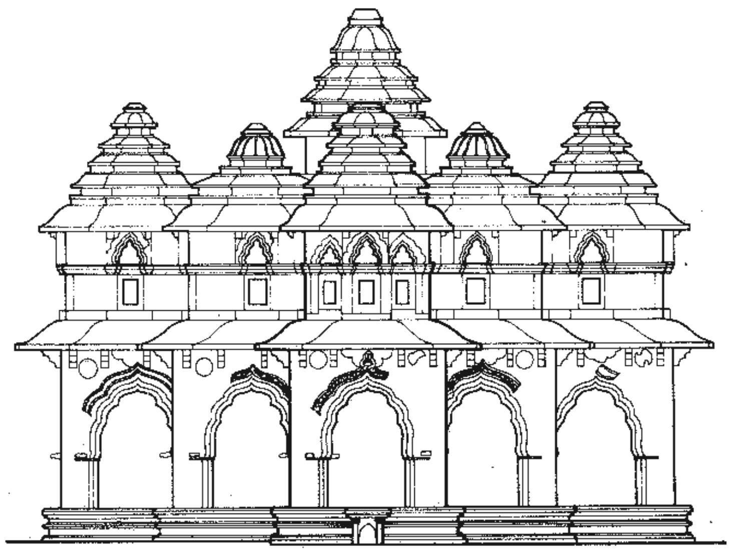

चित्र 7.13
कमल महल का एक खड़ा रेखाचित्र
खड़ा रेखाचित्र किसी वस्तु अथवा संरचना का ऊर्ध्व अवलोकन होता है। यह हमें उन अभिलक्षणों के विषय में जानकारी देता है जो एक छाया-चित्र में नहीं देखे जा सकते। मेहराबों को ध्यान से देखिए। ये संभवतः इण्डो-इस्लामी तकनीकों से प्रभावित थीं।

➲ चित्र 7.13 तथा 7.15 की तुलना कीजिए तथा उन अभिलक्षणों की सूची बनाइये जो दोनों में हैं, और साथ ही उनकी भी जो इनमें से केवल एक में ही देखे जा सकते हैं। चित्र 7.14 में बनी मेहराब की तुलना चित्र 7.6 में बनी मेहराब से कीजिए। कमल महल में नौ मीनारें थीं- बीच में एक ऊँची, तथा आठ उसकी भुजाओं के साथ-साथ। छाया-चित्र तथा खड़े रेखाचित्र में आप कितनी-कितनी मीनारें देख पाते हैं। यदि आप कमल महल का फिर से नामकरण करते तो इसे क्या कहते?

दिवस) के अवसर पर निष्पादित किए जाते थे। इस अवसर पर विजयनगर शासक अपने रुतबे, ताक़त तथा अधिराज्य का प्रदर्शन करते थे।

इस अवसर पर होने वाले धर्मानुष्ठानों में मूर्ति की पूजा, राज्य के अश्व की पूजा, तथा भैंसों और अन्य जानवरों की बलि सम्मिलित थी। नृत्य, कुश्ती प्रतिस्पर्धा तथा साज़ लगे घोड़ों, हाथियों तथा रथों और सैनिकों की शोभायात्रा और साथ ही प्रमुख नायकों और अधीनस्थ राजाओं द्वारा राजा और उसके अतिथियों को दी जाने वाली औपचारिक भेंट इस अवसर के प्रमुख आकर्षण थे। इन उत्सवों के गहन सांकेतिक अर्थ थे। त्यौहार के अंतिम दिन राजा अपनी तथा अपने नायकों की सेना का खुले मैदान में आयोजित भव्य समारोह में निरीक्षण करता था। इस अवसर पर नायक, राजा के लिए बड़ी मात्रा में भेंट तथा साथ ही नियत कर भी लाते थे।

क्या "महानवमी डिब्बा" जो आज अस्तित्व में है, वह इस विस्तृत अनुष्ठान का केंद्र था? विद्वानों का मानना है कि संरचना के चारों ओर का स्थान सशस्त्र आदमियों, औरतों तथा बड़ी संख्या में जानवरों की शोभायात्रा के लिए पर्याप्त नहीं था। राजकीय केंद्र में स्थित कई और संरचनाओं की तरह यह भी एक पहेली बना हुआ है।

4.2 राजकीय केंद्र में स्थित अन्य भवन

राजकीय केंद्र के सबसे सुंदर भवनों में एक लोटस (कमल) महल है, जिसका यह नामकरण उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज़ यात्रियों ने किया था। हालाँकि यह नाम निश्चित रूप से रोमांचक है, लेकिन इतिहासकार इस बारे में निश्चित नहीं हैं कि यह भवन किस कार्य के लिए बना था। एक

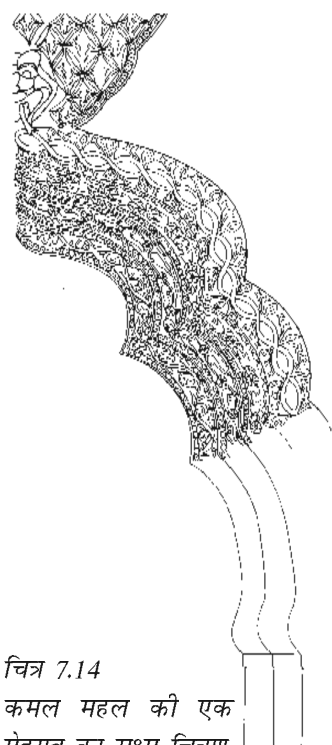

चित्र 7.14
कमल महल की एक मेहराब का सूक्ष्म चित्रण

चित्र 7.15
कमल महल की एक तसवीर

➲ चित्र 7.16(क) तथा 7.16(ख) की तुलना चित्र 7.17 से कीजिए। प्रत्येक में दिखाई देने वाले अभिलक्षणों की सूची बनाइए।
क्या आपको लगता है कि ये वास्तव में हाथियों के अस्तबल थे?

सुझाव, जो मैकेन्ज़ी द्वारा बनाए गए मानचित्र से मिलता है, यह है कि यह परिषदीय सदन था जहाँ राजा अपने परामर्शदाताओं से मिलता था।

हालाँकि अधिकांश मन्दिर धार्मिक केंद्र में स्थित थे, लेकिन राजकीय केंद्र में भी कई थे। इनमें से, एक अत्यंत दर्शनीय को हज़ार राम मन्दिर

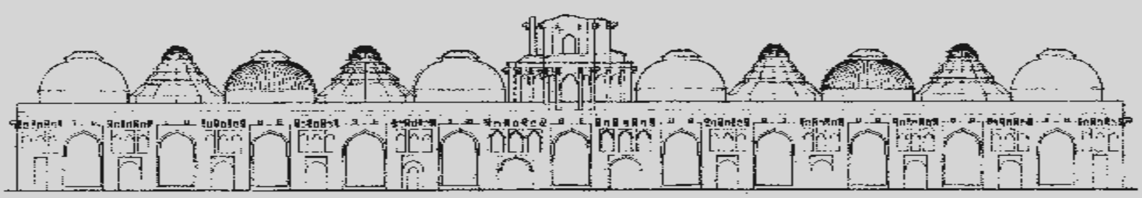

चित्र 7.16(क) "हाथियों के अस्तबल" का खड़ा रेखाचित्र

चित्र 17.16(ख) "हाथियों के अस्तबल" का नक्शा। नक्शा एक संरचना का समस्तरी अवलोकन देता है।

चित्र 7.17 कमल महल के समीप स्थित "हाथियों का अस्तबल"

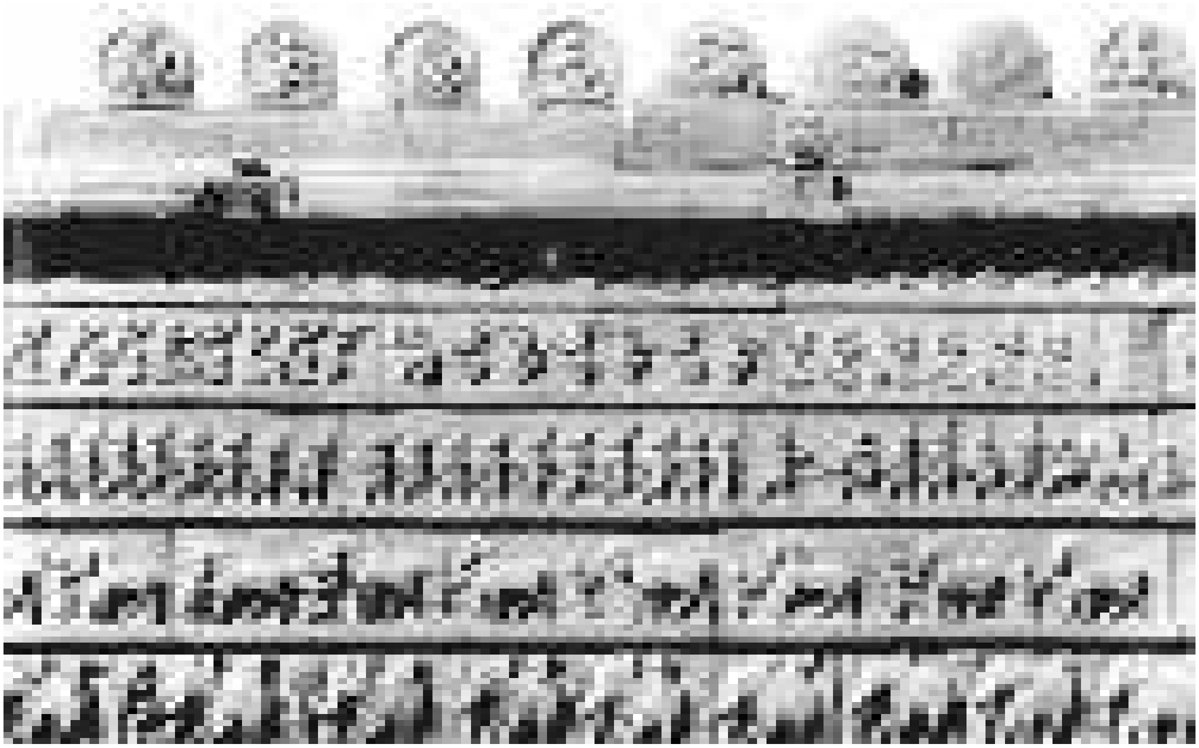

चित्र 7.18
हज़ार राम मन्दिर की दीवारों पर मूर्तिकला

➲ क्या आप नृत्य के दृश्यांशों को पहचान सकते हैं। आपके विचार में हाथियों और घोड़ों को पटलों पर क्यों चित्रित किया गया था?

कहा जाता है। संभवत: इसका प्रयोग केवल राजा और उनके परिवार द्वारा ही किया जाता था। बीच के देवस्थल की मूर्तियाँ अब नहीं हैं; लेकिन दीवारों पर बनाए गए पटल मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। इनमें मन्दिर की आंतरिक दीवारों पर उत्कीर्णित रामायण से लिए गए कुछ दृश्यांश सम्मिलित हैं।

शहर पर आक्रमण के पश्चात विजयनगर की कई संरचनाएँ विनष्ट हो गई थीं, पर नायकों ने महलनुमा संरचनाओं के निर्माण की परंपरा को जारी रखा। इनमें से कई भवन आज भी अस्तित्व में हैं।

चित्र 7.19
मदुरई के सभा मण्डप का आंतरिक भाग
मेहराबों को ध्यान से देखिए।

➲ चर्चा कीजिए...

नायको ने विजयनगर के शासकों की भवन निर्माण परंपराओं को जारी क्यों रखा?

5. धार्मिक केंद्र

5.1 राजधानी का चयन

अब हम तुंगभद्रा नदी के तट से लगे शहर के चट्टानी उत्तरी भाग की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार ये पहाड़ियाँ रामायण में उल्लिखित बाली और सुग्रीव के वानर राज्य की रक्षा करती थीं। अन्य मान्यताओं के अनुसार स्थानीय मातृदेवी पम्पादेवी ने इन पहाड़ियों में विरुपाक्ष, जो राज्य के संरक्षक देवता तथा शिव का एक रूप माने जाते हैं, से विवाह के लिए तप किया था। आज तक यह विवाह विरुपाक्ष मन्दिर में हर वर्ष धूम-धाम से आयोजित किया जाता है। इन पहाड़ियों में विजयनगर साम्राज्य के पूर्वकालिक जैन मन्दिर भी मिले हैं। दूसरे शब्दों में, यह क्षेत्र कई-धार्मिक मान्यताओं से संबद्ध था।

इस क्षेत्र में मन्दिर निर्माण का एक लंबा इतिहास रहा है जो पल्लव, चालुक्य, होयसाल तथा चोल वशों तक जाता है। आमतौर पर शासक अपने आप को ईश्वर से जोड़ने के लिए मन्दिर निर्माण को प्रोत्साहन देते थे–अकसर देवता को व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से राजा से जोड़ा जाता था। मन्दिर शिक्षा के केंद्रों के रूप में भी कार्य करते थे। शासक और अन्य लोग मन्दिर के रख-रखाव के लिए भूमि या अन्य संपदा दान में देते थे। अतएव, मन्दिर महत्त्वपूर्ण धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक केंद्रों के रूप में विकसित हुए। शासकों के दृष्टिकोण से मन्दिरों का निर्माण, मरम्मत तथा रखरखाव, अपनी सत्ता, संपत्ति तथा निष्ठा के लिए समर्थन तथा मान्यता के महत्त्वपूर्ण माध्यम थे।

यह संभव है कि विजयनगर के स्थान का चयन वहाँ विरुपाक्ष तथा पम्पादेवी के मन्दिरों के अस्तित्व से प्रेरित था। यहाँ तक कि विजयनगर के शासक भगवान विरुपाक्ष की ओर से शासन करने का दावा करते थे। सभी राजकीय आदेशों पर सामान्यतया कन्नड़ लिपि में "श्री विरुपाक्ष" शब्द अंकित होता था। शासक देवताओं से अपने गहन संबंधों के संकेतक के रूप में विरुद "हिन्दू सूरतराणा" का प्रयोग भी करते थे। यह अरबी भाषा के शब्द सुल्तान जिसका अर्थ है राजा, का संस्कृत अनुवाद था और शाब्दिक रूप में इसका अर्थ था हिंदू सुलतान।

विजयनगर के शासकों ने पूर्वकालिक परंपराओं को अपनाया, उनमें नवीनता लाई और उन्हें आगे विकसित किया। अब राजकीय प्रतिकृति मूर्तियाँ मन्दिरों में प्रदर्शित की जाने लगीं और राजा की मन्दिरों की यात्राओं को महत्त्वपूर्ण राजकीय अवसर माना जाने लगा जिन पर साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण नायक भी उसके साथ जाते थे।

चित्र 7.20
आकाश से लिया गया विरुपाक्ष मन्दिर का दृश्य

5.2 गोपुरम् और मण्डप

मन्दिर स्थापत्य के संदर्भ में इस समय तक कई नए तत्व प्रकाश में आते हैं। इनमें विशाल स्तर पर बनाई गई संरचनाएँ जो राजकीय सत्ता की द्योतक थीं, शामिल हैं। इनका सबसे अच्छा उदाहरण राय गोपुरम् (चित्र 7.7) अथवा राजकीय प्रवेशद्वार थे जो अकसर केंद्रीय देवालयों की मीनारों को बौना प्रतीत कराते थे और जो लंबी दूरी से ही मन्दिर

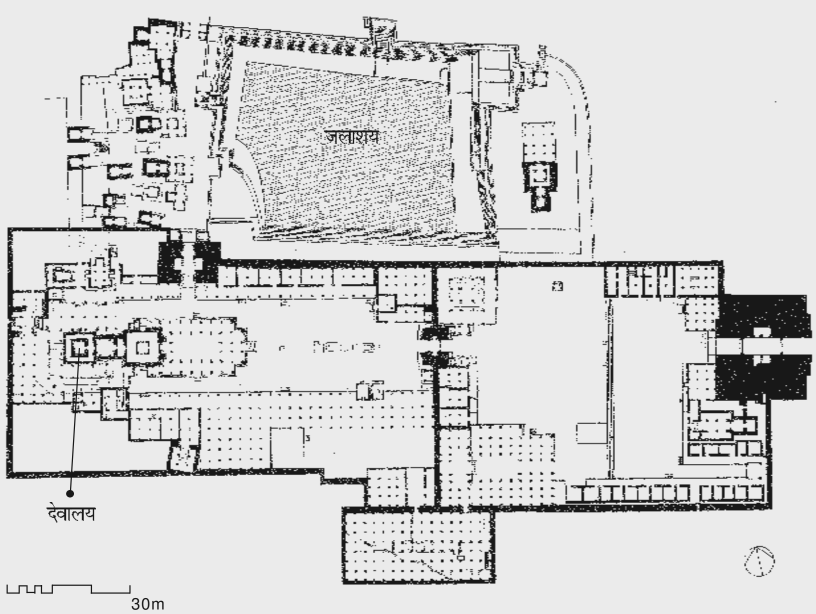

चित्र 7.21
विरुपाक्ष मन्दिर का नक्शा
अधिकांश वर्गाकार संरचनाएँ देवस्थल हैं। दो प्रमुख प्रवेश द्वारों को काले रंग से भरा गया है। प्रत्येक छोटा बिंदु एक स्तंभ को दर्शाता है। वर्गाकार या आयताकार ढाँचे में व्यवस्थित स्तंभों की पंक्तियाँ प्रमुख सभागारों, मण्डपों तथा बरामदों को विभाजित करती प्रतीत होती हैं।

➲ नक्शे में दिए गए स्केल का प्रयोग कर मुख्य गोपुरम् से केंद्रीय देवालय की दूरी नापिए। जलाशय से देवालय तक जाने के लिए सबसे आसान मार्ग कौन सा रहा होगा?

चित्र 7.22
दैवीय विवाहों के आयोजन में प्रयुक्त होने वाला एक कल्याण मंडप

चित्र 7.23
मूर्तियों वाले स्तम्भ का एक रेखाचित्र

➲ स्तंभ पर आप जो देख रहे हैं उसका वर्णन कीजिए।

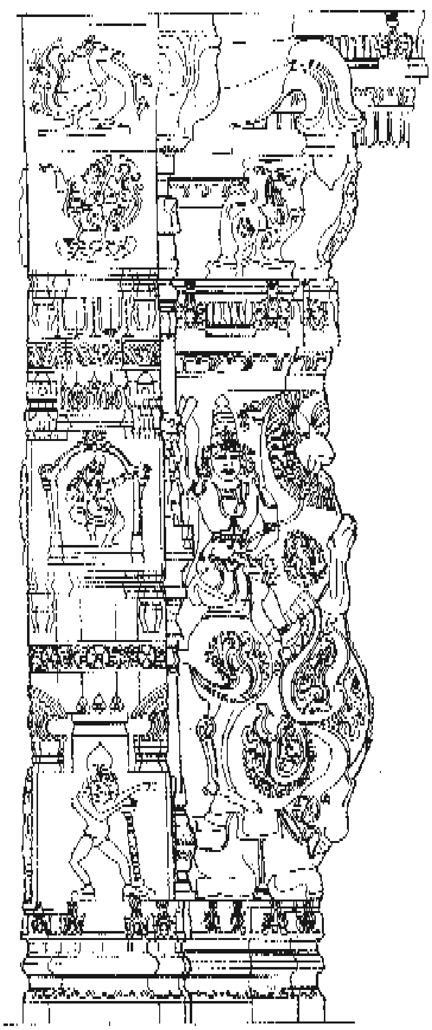

के होने का संकेत देते थे। ये संभवत: शासकों की ताकत की याद भी दिलाते थे, जो इतनी ऊँची मीनारों के निर्माण के लिए आवश्यक साधन, तकनीक तथा कौशल जुटाने में सक्षम थे। अन्य विशिष्ट अभिलक्षणों में मण्डप तथा लंबे स्तंभों वाले गलियारे, जो अकसर मंदिर परिसर में स्थित देवस्थलों के चारों ओर बने थे, सम्मिलित हैं। अब हम दो मन्दिरों को और सूक्ष्मता से देखते हैं–विरुपाक्ष मन्दिर तथा विट्ठल मन्दिर।

विरुपाक्ष मन्दिर का निर्माण कई शताब्दियों में हुआ था। हालाँकि अभिलेखों से पता चलता है कि सबसे प्राचीन मन्दिर नवीं-दसवीं शताब्दियों का था, विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के बाद इसे कहीं अधिक बड़ा किया गया था। मुख्य मन्दिर के सामने बना मण्डप कृष्णदेव राय ने अपने राज्यारोहण के उपलक्ष्य में बनवाया था। इसे सूक्ष्मता से उत्कीर्णित स्तंभों से सजाया गया था। पूर्वी गोपुरम् के निर्माण का श्रेय भी उसे ही दिया जाता है। इन परिवर्धनों का अर्थ था कि केंद्रीय देवालय पूरे परिसर के एक छोटे भाग तक सीमित रह गया था।

मन्दिर के सभागारों का प्रयोग विविध प्रकार के कार्यों के लिए होता था। इनमें से कुछ ऐसे थे जिनमें देवताओं की मूर्तियाँ संगीत, नृत्य और नाटकों के विशेष कार्यक्रमों को देखने के लिए रखी जाती थीं। अन्य सभागारों का प्रयोग देवी-देवताओं के विवाह के उत्सव पर आनंद मनाने और कुछ अन्य का प्रयोग देवी-देवताओं को झूला झुलाने के लिए होता था। इन अवसरों पर विशिष्ट मूर्तियों का प्रयोग होता था जो छोटे केंद्रीय देवालयों में स्थापित मूर्तियों से भिन्न होती थीं।

दूसरा देवस्थल, विट्ठल मन्दिर, भी रोचक है। यहाँ के प्रमुख देवता विट्ठल थे जो सामान्यतः महाराष्ट्र में पूजे जाने वाले विष्णु के एक रूप

चित्र 7.24
विट्ठल मन्दिर का रथ

➲ क्या आपको लगता है कि वास्तव में इस प्रकार के रथ बनाए जाते होंगे?

चित्र 7.25
जिंजी का झूलता मण्डप

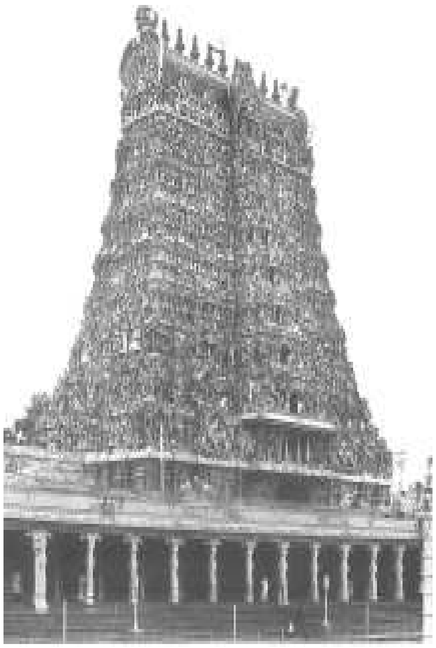

चित्र 7.26
मदुरई के नायकों द्वारा बनवाया गया एक गोपुरम्

हैं। इस देवता की पूजा को कर्नाटक में आरंभ करना उन माध्यमों का द्योतक है जिनसे एक साम्राज्यिक संस्कृति के निर्माण के लिए विजयनगर के शासकों ने अलग-अलग परंपराओं को आत्मसात किया। अन्य मन्दिरों की तरह ही इस मन्दिर में भी कई सभागार तथा रथ के आकार का एक अनूठा मन्दिर भी है (चित्र 7.24)।

मन्दिर परिसरों की एक चारित्रिक विशेषता रथ गलियाँ हैं जो मन्दिर के गोपुरम् से सीधी रेखा में जाती हैं। इन गलियों का फर्श पत्थर के टुकड़ों से बनाया गया था और इनके दोनों ओर स्तंभ वाले मण्डप थे जिनमें व्यापारी अपनी दुकानें लगाया करते थे।

जिस प्रकार नायकों ने क़िलेबन्दी की परंपराओं को जारी रखा तथा और अधिक व्यापक बनाया, ठीक वैसा ही उन्होंने मन्दिर निर्माण की परंपराओं के संदर्भ में भी किया। यहाँ तक कि कुछ सबसे दर्शनीय गोपुरमों का निर्माण भी स्थानीय नायकों द्वारा किया गया था।

➲ **चर्चा कीजिए...**

आनुष्ठानिक स्थापत्य की पूर्ववर्ती परंपराओं को विजयनगर के शासकों ने कैसे और क्यों अपनाया तथा रूपान्तरित किया?

6. महलों, मन्दिरों तथा बाज़ारों का अंकन

हमने विजयनगर के विषय में जानकारी के भण्डार का विश्लेषण किया है – फोटोग्राफ, नक्शे, संरचनाओं के खड़े रेखाचित्र तथा मूर्तियाँ। यह सब कैसे खोजा गया? मैकेन्ज़ी द्वारा किए गए आरंभिक सर्वेक्षणों के बाद यात्रा वृत्तांतों और अभिलेखों से मिली जानकारी को एक साथ जोड़ा गया। बीसवीं शताब्दी में इस स्थान का संरक्षण भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण तथा कर्नाटक पुरातात्विक एवं संग्रहालय विभाग द्वारा किया गया। 1976 में हम्पी को राष्ट्रीय महत्त्व के स्थल के रूप में मान्यता मिली। तदोपरांत 1980 के दशक के आरंभ में विविध प्रकार के अभिलेखन प्रयोग से, व्यापक तथा गहन सर्वेक्षणों के माध्यम से, विजयनगर से मिले भौतिक अवशेषों के सूक्ष्मता से प्रलेखन की एक महत्त्वपूर्ण परियोजना का शुभारंभ किया गया। लगभग बीस वर्षों के काल में पूरे विश्व के दर्जनों विद्वानों ने इस जानकारी को इकट्ठा और संरक्षित करने का कार्य किया।

इस विशद प्रक्रिया के सिर्फ़ एक हिस्से को बारीकी से देखते हैं। यह है मानचित्र निर्माण। इसका पहला चरण यह था कि संपूर्ण क्षेत्र को 25

वर्गाकार भागों में बाँटा गया और प्रत्येक वर्ग को वर्णमाला के एक अक्षर से इंगित किया गया। फिर इन छोटे वर्गों को पुनः और भी छोटे वर्गों के समूहों में बाँटा गया। लेकिन इतना काफ़ी नहीं था : आगे फिर छोटे वर्गों को और छोटी इकाइयों में बाँटा गया।

जैसा कि आप देख सकते हैं, ये गहन सर्वेक्षण बहुत परिश्रम से किए गए थे, और इनसे हज़ारों संरचनाओं के अंशों–छोटे देवस्थलों और आवासों से लेकर विशाल मन्दिरों तक–को पुनः उजागर किया गया। उनका प्रलेखन भी किया गया। इस सबके कारण सड़कों, रास्तों और बाज़ारों आदि के अवशेषों को पुनः प्राप्त किया जा सका है। इन सभी की स्थिति की पहचान स्तंभ आधारों तथा मंचों के माध्यम से की गई है–एक समय जो बाज़ार, जीवंत थे, उनका बस अब यही कुछ बचा है।

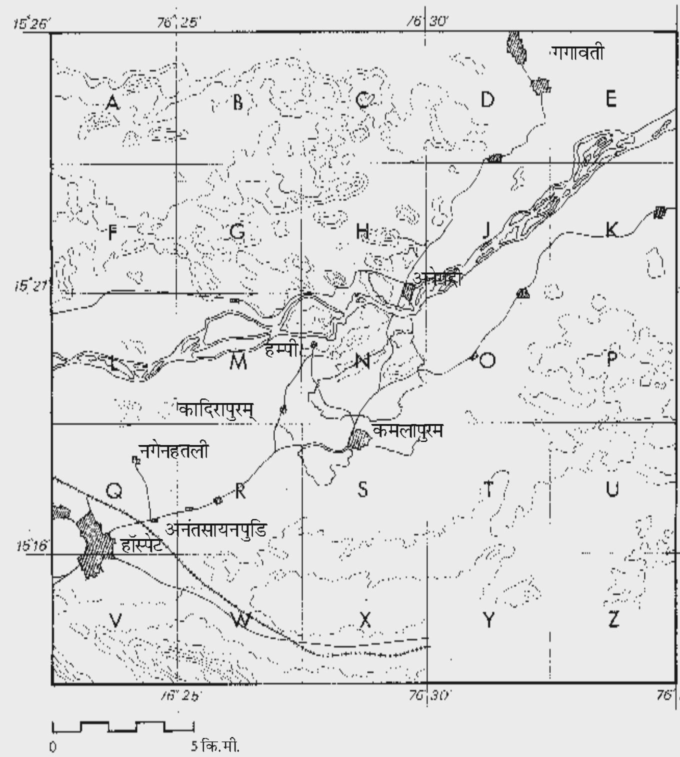

चित्र 7.27
विजयनगर स्थल का विस्तृत मानचित्र
(ऊपर दाएँ)

➲ अंग्रेजी वर्णमाला का कौन सा अक्षर प्रयोग नहीं किया गया था? मानचित्र में दिए गए पैमाने का प्रयोग करते हुए किसी एक छोटे वर्ग की लंबाई नापिए।

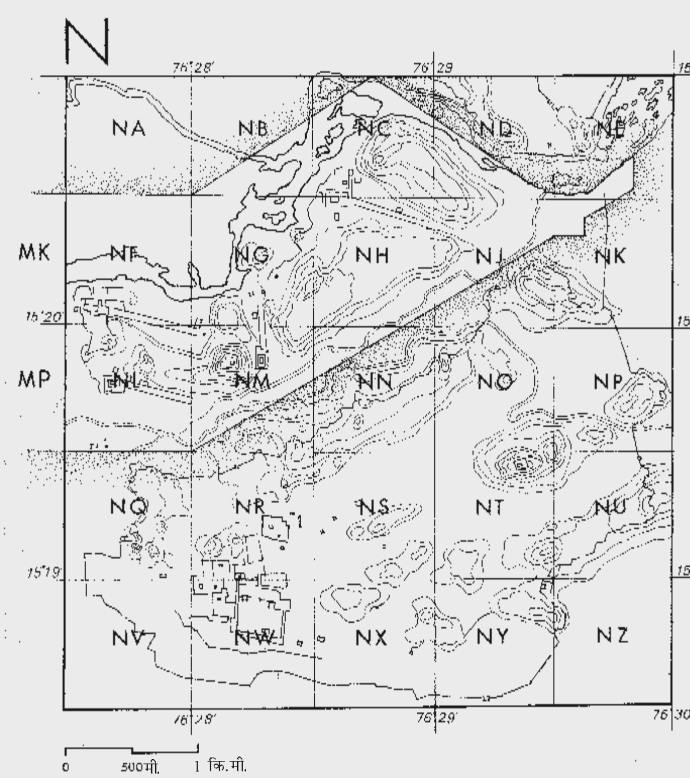

चित्र 7.28
चित्र 7.27 का वर्ग N (दाएँ)

➲ इस मानचित्र में कौन सा पैमाना प्रयोग किया गया है?

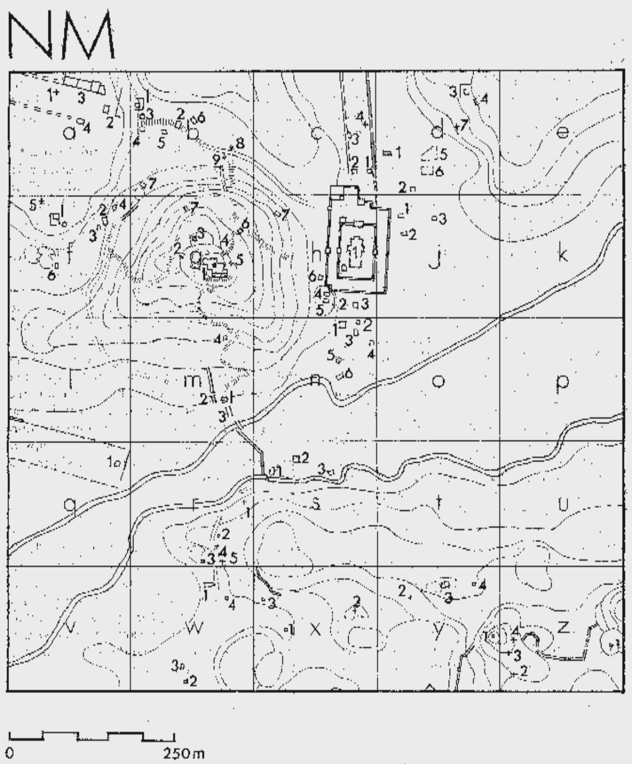

चित्र 7.29
चित्र 7.28 का वर्ग NM

➲ किसी एक मन्दिर को पहचानिए। दीवारों, एक केंद्रीय देवालय, तथा मन्दिर तक जाने वाले रास्तों के अवशेषों को खोजिए। मानचित्र पर उन वर्गों को नाम दीजिए जिनमें मन्दिर का नक्शा स्थित है।

जॉन एम. फ्रिट्ज़, जॉर्ज मिशेल तथा एम. एस. नागराज राव जिन्होंने इस स्थान पर वर्षों तक कार्य किया, ने जो लिखा वह याद रखना महत्त्वपूर्ण है: "विजयनगर के स्मारकों के अपने अध्ययन में हमें नष्ट हो चुकी लकड़ी की वस्तुओं–स्तंभ, टेक (ब्रेकेट), धरन, भीतरी छत, लटकते हुए छज्जों के अंदरूनी भाग तथा मीनारों–की एक पूरी श्रेणी की कल्पना करनी पड़ती है जो प्लास्टर से सजाए और संभवत: चटकीले रंगों से चित्रित थे।"

हालाँकि लकड़ी की संरचनाएँ अब नहीं हैं और केवल पत्थर की संरचनाएँ अस्तित्व में हैं, यात्रियों द्वारा पीछे छोड़े गए विवरण उस समय के स्पंदन से पूर्ण जीवन के कुछ आयामों को पुनर्निर्मित करने में सहायक होते हैं।

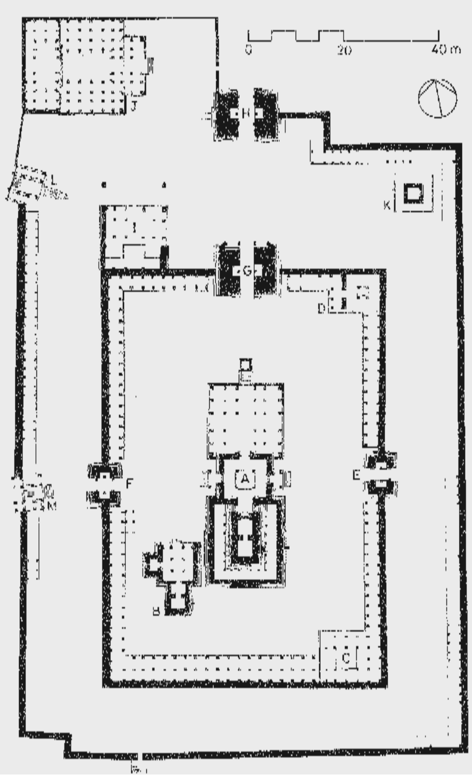

चित्र 7.30
चित्र 7.29 के मन्दिर का नक्शा

➲ गोपुरम्, सभागारों, स्तंभावलियों तथा केंद्रीय देवालय को पहचानिए। बाहरी प्रवेशद्वार से केंद्रीय देवालय तक पहुँचने के लिए आप किन भागों से होकर गुज़रेंगे।

स्रोत 5

बाज़ार

पेस बाज़ार का एक सजीव विवरण देता है:

> आगे जाने पर एक चौड़ी और सुंदर गली पाते हैं... इस गली में कई व्यापारी रहते हैं और वहाँ आप सभी प्रकार के माणिक्य, और हीरे, और पन्ने, और मोती, और छोटे मोती, और वस्त्र, और पृथ्वी पर होने वाली हर वस्तु जिसे आप खरीदना चाहेंगे, पाएँगे। फिर हर शाम को आप एक मेला देख सकते हैं जहाँ से कई सामान्य घोड़े तथा टट्टू और कई तुरंज और नींबू और संतरे और अंगूर और उद्यान में उगने वाली हर प्रकार की वस्तुएँ और लकड़ी मिलती है: इस गली में आप हर वस्तु पा सकते हैं।

और सामान्य रूप से वह शहर का वर्णन "विश्व के सबसे अच्छे संभरण वाले शहर" के रूप में करता है जहाँ बाज़ार "चावल, गेहूँ, अनाज, भारतीय मकई और कुछ मात्रा में जौ तथा सेम, मूँग, दालें, काला चना जैसे खाद्य पदार्थों से भरे रहते थे" जो सभी सस्ते दामों पर तथा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहते थे। फर्नाओ नूनिज़ के अनुसार विजयनगर के बाज़ार "प्रचुर मात्रा में फलों, अंगूरों और संतरों, नींबू, अनार, कटहल तथा आम से भरे रहते थे और सभी बहुत सस्ते।" बाज़ारों में मांस भी बड़ी मात्रा में बिकता था। नूनिज़ उल्लेख करता है कि "भेड़-बकरी का मांस, सूअर, मृगमांस, तीतर-मांस, खरगोश, कबूतर, बटेर और सभी प्रकार के पक्षी, चिड़ियाँ, चूहे तथा बिल्लियाँ और छिपकलियाँ" बिसनग (विजयनगर) के बाज़ारों में बिकती थीं।

7. उत्तरों की खोज में प्रश्न

सुरक्षित भवन हमें उन तरीकों के विषय में बताते हैं जिनसे स्थानों को व्यवस्थित किया गया और उन्हें प्रयोग में लाया गया। वह हमें यह भी बताते हैं कि किन वस्तुओं और तकनीकों से उनका निर्माण किया गया और कैसे किया गया। उदाहरण के लिए, किसी शहर की क़िलेबंदी के अध्ययन से हम उसकी प्रतिरक्षण आवश्यकताओं और सामरिक तैयारी को समझ सकते हैं। यदि हम उनकी अन्य स्थानों के भवनों से तुलना करें तो भवन हमें विचारों के फैलाव और सांस्कृतिक प्रभावों के बारे में भी बताते हैं। वे उन विचारों को ज़ाहिर करते हैं जो निर्माणकर्ता या प्रश्रयदाता व्यक्त करना चाहते थे। वे अकसर ऐसे चिह्नों से परिपूर्ण रहते हैं जो उनके सांस्कृतिक संदर्भ का परिणाम होते हैं। इन्हें हम समझ सकते हैं जब हम अन्य स्रोतों, जैसे साहित्य, अभिलेखों तथा लोकप्रचलित परंपराओं से मिली जानकारी को संयोजित करें।

कृष्णदेव राय

परिदृश्य की कुछ समस्याओं को पुनः याद करने के लिए तमिलनाडु में चिदम्बरम के मन्दिर के गोपुरम् में रखी कृष्णदेव राय की इस सुंदर प्रतिमा को देखिए।

स्वाभाविक है कि शासक इसी रूप में अपने आप को प्रस्तुत करना चाहता था।

और पेस राजा का वर्णन कुछ इस प्रकार करता है:
मझला कद, गोरा रंग और अच्छी काठी, कुछ मोटा, राजा के चेहरे पर चेचक के दाग़ हैं।

चित्र 7.31

स्थापत्य तत्वों के परीक्षण हमें यह नहीं बताते कि सामान्य पुरुष, महिलाएँ तथा बच्चे जो शहर और उसके आसपास के क्षेत्र में रहने वाली जनसंख्या का एक बड़ा भाग थे, इन प्रभावशाली भवनों के विषय में क्या सोचते थे। क्या उनकी शाही केंद्र अथवा धार्मिक केंद्र के किसी भी भाग में पहुँच हो सकती थी? क्या वे मूर्ति के सामने से तेज़ी से निकल जाते अथवा देखने के लिए रुकते, सोचते और उसके जटिल प्रतीक चित्रण को समझने का प्रयास करते? और वे लोग जिन्होंने इन विशाल निर्माण परियोजनाओं पर कार्य किया था, इन उद्यमों के विषय में क्या सोचते थे जिसके लिए उन्होंने अपना श्रम दान दिया था?

हालाँकि, क्या निर्माण करना है, स्थान, कौन-सा माल प्रयोग करना है और किस शैली का अनुसरण करना है, ये सभी निर्णय शासक लेते थे, पर इतने विशाल उद्यमों के लिए आवश्यक विशिष्ट ज्ञान किसके पास था? भवनों के नक्शे कौन बनाता था? राजगीर, पत्थर काटने वाले, मूर्तिकार जो वास्तविक निर्माण कार्य करते थे, कहाँ से आते थे? क्या उन्हें युद्ध के दौरान पड़ोसी क्षेत्रों से बंदी बनाया जाता था? उन्हें किस प्रकार के वेतन मिलते थे? निर्माण गतिविधियों का अधीक्षण कौन करता था? निर्माण के लिए कच्चा माल कैसे और कहाँ से लाया जाता था? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर हम भवनों या उनके अवशेषों को देखने मात्र से नहीं दे सकते। संभवतः अन्य स्रोतों के प्रयोग से जारी शोध कुछ और संकेत दे सकें।

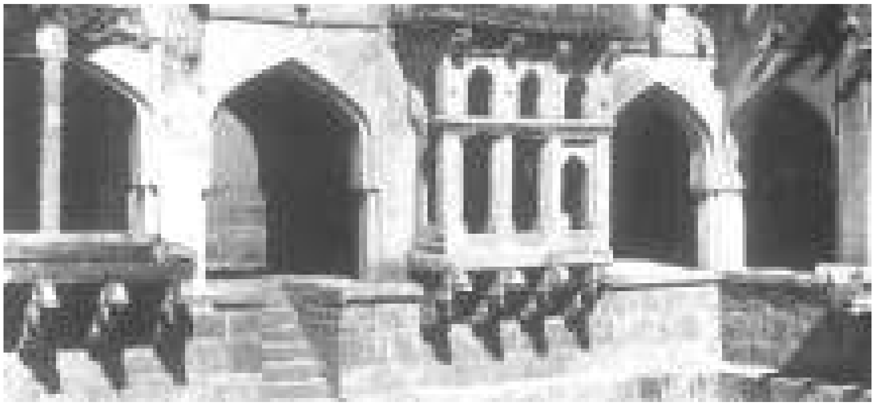

चित्र 7.32
रानी का स्नानघर नामक संरचना का एक भाग

काल-रेखा 1
महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन

लगभग 1200-1300 ईसवी	दिल्ली सल्तनत की स्थापना (1206)
लगभग 1300-1400 ईसवी	विजयनगर साम्राज्य की स्थापना (1336?); बहमनी राज्य की स्थापना (1347); जौनपुर, कश्मीर और मदुरई में सल्तनतें
लगभग 1400-1500 ईसवी	उड़ीसा के गजपति राज्य की स्थापना (1435); गुजरात और मालवा की सल्तनतों की स्थापना; अहमदाबाद, बीजापुर तथा बेरार सल्तनतों का उदय (1490)
लगभग 1500-1600 ईसवी	पुर्तगालियों द्वारा गोवा पर विजय (1510); बहमनी राज्य का विनाश; गोलकुंडा की सल्तनत का उदय (1518); बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना (1526)

नोट : प्रश्नचिह्न अनिश्चित तिथि की ओर संकेत करता है।

काल-रेखा 2
विजयनगर की खोज व संरक्षण की मुख्य घटनाएँ

1800	कॉलिन मैकेन्जी द्वारा विजयनगर की यात्रा
1856	अलेक्जैंडर ग्रनिलो ने हम्पी के पुरातात्विक अवशेषों के पहले विस्तृत चित्र लिए
1876	पुरास्थल की मंदिर की दीवारों के अभिलेखों का जे.एफ. फ्लीट द्वारा प्रलेखन आरंभ
1902	जॉन मार्शल के अधीन संरक्षण कार्य आरंभ
1986	हम्पी को यूनेस्को द्वारा विश्व पुरातत्व स्थल घोषित किया जाना

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. पिछली दो शताब्दियों में हम्पी के भवनावशेषों के अध्ययन में कौन-सी पद्धतियों का प्रयोग किया गया है? आपके अनुसार यह पद्धतियाँ विरुपाक्ष मन्दिर के पुरोहितों द्वारा प्रदान की गई जानकारी का किस प्रकार पूरक रहीं?
2. विजयनगर की जल-आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा किया जाता था?
3. शहर के क़िलेबंद क्षेत्र में कृषि क्षेत्र को रखने के आपके विचार में क्या फ़ायदे और नुकसान थे?
4. आपके विचार में महानवमी डिब्बा से संबद्ध अनुष्ठानों का क्या महत्त्व था?
5. चित्र 7.33 विरुपाक्ष मन्दिर के एक अन्य स्तंभ का रेखाचित्र है। क्या आप कोई पुष्प-विषयक रूपांकन देखते हैं? किन जानवरों को दिखाया गया है? आपके विचार में उन्हें क्यों चित्रित किया गया है? मानव आकृतियों का वर्णन कीजिए।

चित्र 7.33

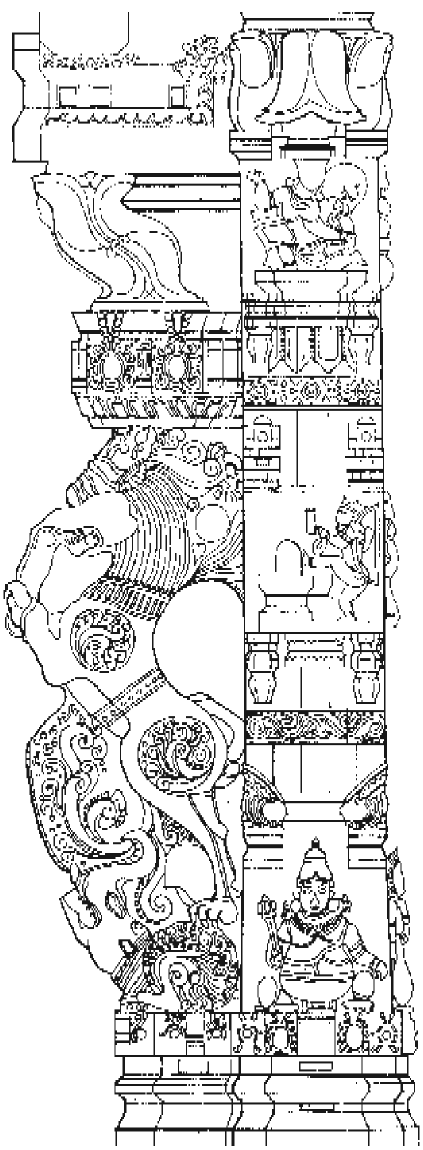

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. "शाही केंद्र" शब्द शहर के जिस भाग के लिए प्रयोग किए गए हैं, क्या वे उस भाग का सही वर्णन करते हैं।
7. कमल महल और हाथियों के अस्तबल जैसे भवनों का स्थापत्य हमें उनके बनवाने वाले शासकों के विषय में क्या बताता है?
8. स्थापत्य की कौन-कौन-सी परंपराओं ने विजयनगर के वास्तुविदों को प्रेरित किया? उन्होंने इन परंपराओं में किस प्रकार बदलाव किए?
9. अध्याय के विभिन्न विवरणों से आप विजयनगर के सामान्य लोगों के जीवन की क्या छवि पाते हैं?

मानचित्र कार्य

10. विश्व के सीमारेखा मानचित्र पर इटली, पुर्तगाल, ईरान तथा रूस को सन्निकटता से अंकित कीजिए। उन मार्गों को पहचानिए जिनका प्रयोग पृ. 176 पर उल्लिखित यात्रियों ने विजयनगर पहुँचने के लिए किया था।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. भारतीय उपमहाद्वीप के किसी एक ऐसे प्रमुख शहर के विषय में और जानकारी हासिल कीजिए जो लगभग चौदहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों में फला-फूला। शहर के स्थापत्य का वर्णन कीजिए। क्या कोई ऐसे लक्षण हैं जो इनके राजनीतिक केंद्र होने की ओर संकेत करें? क्या ऐसे भवन हैं जो आनुष्ठानिक रूप से महत्त्वपूर्ण हों? कौन-से ऐसे लक्षण हैं जो शहरी भाग को आस-पास के क्षेत्रों से विभाजित करते हैं?

12. अपने आस-पास के किसी धार्मिक भवन को देखिए। रेखाचित्र के माध्यम से छत, स्तंभों, मेहराबों, यदि हों तो, गलियारों, रास्तों, सभागारों, प्रवेशद्वारों, जलआपूर्ति आदि का वर्णन कीजिए। इन सभी की तुलना विरुपाक्ष मन्दिर के अभिलक्षणों से कीजिए। वर्णन कीजिए कि भवन का हर भाग किस प्रयोग में लाया जाता था। इसके इतिहास के विषय में पता कीजिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

बसुंधरा फिलियोजट, 2006 (पुनर्मुद्रण)
विजयनगर
नेशनल बुक ट्रस्ट, न्यू दिल्ली

जॉर्ज मिशैल, 1995
ऑर्किटैक्चर एंड आर्ट ऑफ सदर्न इंडिया
कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
कैम्ब्रिज

के.ए. नीलकंठ शास्त्री, 1955
ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

बर्टन स्टीन, 1989
विजयनगर (द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉल्यूम 1, पार्ट 2)
फाउंडेशन बुक्स, न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
http://www.museum.upenn.edu/new/kresearch/Exp_Rese_Disc/Asia/vrp/HTML/Vijay_Hist.shtml

विषय
आठ

किसान, ज़मींदार और राज्य
कृषि समाज और मुग़ल साम्राज्य
(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

चित्र 8.1
एक ग्रामीण दृश्य
सत्रहवीं शताब्दी के एक मुग़ल चित्र का ब्योरा

सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के दौरान हिंदुस्तान में करीब-करीब 85 फ़ीसदी लोग गाँवों में रहते थे। छोटे खेतिहर और भूमिहर संभ्रांत दोनों ही कृषि उत्पादन से जुड़े थे और दोनों ही फ़सल के हिस्सों के दावेदार थे। इससे उनके बीच सहयोग, प्रतियोगिता और संघर्ष के रिश्ते बने। खेती से जुड़े इन तमाम रिश्तों के ताने-बाने से गाँव का समाज बनता था।

इसी समय कई बाहरी ताकतें भी ग्रामीण दुनिया में दाखिल हुईं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण मुग़ल राज्य था जो अपनी आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा कृषि उत्पादन से उगाहता था। राज्य के नुमाइंदे - राजस्व निर्धारित करने वाले, राजस्व वसूली करने वाले, हिसाब रखने वाले - ग्रामीण समाज पर काबू रखने की कोशिश करते थे। वे तसल्ली करना चाहते थे कि खेतों की जुताई हो और राज्य को उपज से अपने हिस्से का कर समय पर मिल जाए। चूँकि कई फ़सलें बिक्री के लिए उगाई जाती थीं, इसलिए व्यापार, मुद्रा और बाज़ार भी गाँवों में घुस आए और इससे खेती वाले इलाके शहर से जुड़ गए।

1. किसान और कृषि उत्पादन

खेतिहर समाज की बुनियादी इकाई गाँव थी जिसमें किसान रहते थे। किसान साल भर अलग-अलग मौसम में वो तमाम काम करते थे जिससे फ़सल की पैदावार होती थी - जैसे कि ज़मीन की जुताई, बीज बोना और फ़सल पकने पर उसकी कटाई। इसके अलावा वे उन वस्तुओं के उत्पादन में भी शरीक़ होते थे जो कृषि-आधारित थीं जैसे कि शक्कर, तेल इत्यादि।

लेकिन सिर्फ़ मैदानी इलाकों में बसे किसानों की खेती ही ग्रामीण भारत की ख़ासियत नहीं थी। कई ऐसे क्षेत्र भी थे - जैसे कि सूखी ज़मीन के विशाल हिस्सों से पहाड़ियों वाले इलाके - जहाँ उस तरह की खेती नहीं हो सकती थी जैसी कि ज़्यादा उपजाऊ ज़मीनों पर। इसके अलावा, भूखंड का एक बहुत बड़ा हिस्सा जंगलों से घिरा था। जब हम

कृषि समाज की बात करते हैं तब हमें इन भौगोलिक विविधताओं का ख़्याल रखना चाहिए।

1.1 स्रोतों की तलाश

चूँकि किसान अपने बारे में खुद नहीं लिखा करते थे इसलिए ग्रामीण समाज के क्रियाकलापों की जानकारी हमें उन लोगों से नहीं मिलती जो खेतों में काम करते थे। नतीजतन, सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों के कृषि इतिहास को समझने के लिए हमारे मुख्य स्रोत वे ऐतिहासिक ग्रंथ व दस्तावेज़ हैं जो मुग़ल दरबार की निगरानी में लिखे गए थे (देखिए अध्याय 9)।

सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों में एक था *आइन-ए-अकबरी* (संक्षेप में *आइन*, देखिए अनुभाग 8) जिसे अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फ़ज़्ल ने लिखा था। खेतों की नियमित जुताई की तसल्ली करने के लिए, राज्य के नुमाइंदों द्वारा करों की उगाही के लिए और राज्य व ग्रामीण सत्तापोशों यानी कि ज़मींदारों के बीच के रिश्तों के नियमन के लिए जो इंतज़ाम राज्य ने किए थे, उसका लेखा-जोखा इस ग्रंथ में बड़ी सावधानी से पेश किया गया है।

आइन का मुख्य उद्देश्य अकबर के साम्राज्य का एक ऐसा खाका पेश करना था जहाँ एक मज़बूत सत्ताधारी वर्ग सामाजिक मेल-जोल बना कर रखता था। *आइन* के लेखक के मुताबिक, मुग़ल राज्य के खिलाफ़ कोई बगावत या किसी भी किस्म की स्वायत्त सत्ता की दावेदारी का असफल होना पहले ही तय था। दूसरे शब्दों में, किसानों के बारे में जो कुछ हमें *आइन* से पता चलता है वह सत्ता के ऊँचे गलियारों का नज़रिया है।

खुशकिस्मती से *आइन* की जानकारी के साथ-साथ हम उन स्रोतों का भी इस्तेमाल कर सकते हैं जो मुग़लों की राजधानी से दूर के इलाकों में लिखे गए थे। इनमें सत्रहवीं व अठारहवीं सदियों के गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान से मिलने वाले वे दस्तावेज़ शामिल हैं जो सरकार की आमदनी की विस्तृत जानकारी देते हैं। इसके अलावा, ईस्ट इंडिया कंपनी के बहुत सारे दस्तावेज़ भी हैं जो पूर्वी भारत में कृषि-संबंधों का उपयोगी खाका पेश करते हैं। ये सभी स्रोत किसानों, ज़मींदारों और राज्य के बीच तने झगड़ों को दर्ज करते हैं। लगे हाथ, ये स्रोत यह समझने में हमारी मदद करते हैं कि किसान राज्य को किस नज़रिये से देखते थे और राज्य से उन्हें कैसे न्याय की उम्मीद थी।

1.2 किसान और उनकी ज़मीन

मुग़ल काल के भारतीय-फ़ारसी स्रोत किसान के लिए आमतौर पर *रैयत* (बहुवचन, *रिआया*) या *मुज़रियान* शब्द का इस्तेमाल करते थे। साथ ही, हमें किसान या आसामी जैसे शब्द भी मिलते हैं। सत्रहवीं सदी के स्रोत

स्रोत 1

किसान बस्तियों का बसना-उजड़ना

यह हिंदुस्तानी कृषि समाज की एक ख़ासियत थी और इस ख़ासियत ने मुग़ल शासक बाबर की तेज़ निगाहों को इतना चौंकाया कि उसने इसे अपने संस्मरण *बाबरनामा* में नोट किया:

> हिंदुस्तान में बस्तियाँ और गाँव, दरअसल शहर के शहर, एक लमहे में ही वीरान भी हो जाते हैं और बस भी जाते हैं। वर्षों से आबाद किसी बड़े शहर के बाशिंदे उसे छोड़कर चले जाते हैं, तो वे ये काम कुछ इस तरह करते हैं कि डेढ़ दिनों के अंदर उनका हर नामोनिशान (वहाँ से) मिट जाता है। दूसरी ओर, अगर वे किसी जगह पर बसना चाहते हैं तो उन्हें पानी के रास्ते खोदने की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि उनकी सारी फ़सलें बारिश के पानी में उगती हैं, और चूँकि हिंदुस्तान की आबादी बेशुमार है, लोग उमड़ते चले आते हैं। वे एक सरोवर या कुआँ बना लेते हैं; उन्हें घर बनाने या दीवार खड़ी करने की भी ज़रूरत नहीं होती... खस की घास बहुतायात में पाई जाती हैं, जंगल अपार हैं, झोंपड़ियाँ बनाई जाती हैं, और यकायक एक गाँव या शहर खड़ा हो जाता है!

➲ कृषि जीवन के उन पहलुओं का विवरण दीजिए जो बाबर को उत्तर भारत के इलाके की ख़ासियत लगी।

दो किस्म के किसानों की चर्चा करते हैं – *खुद-काश्त* व *पाहि-काश्त*। पहले किस्म के किसान वे थे जो उन्हीं गाँवों में रहते थे जिनमें उनकी ज़मीन थीं। दूसरे (पाहि-काश्त) वे खेतिहर थे जो दूसरे गाँवों से ठेके पर खेती करने आते थे। लोग अपनी मर्ज़ी से भी पाहि-काश्त बनते थे (मसलन, अगर करों की शर्तें किसी दूसरे गाँव में बेहतर मिलें) और मजबूरन भी (मसलन, अकाल या भुखमरी के बाद आर्थिक परेशानी से)।

उत्तर भारत के एक औसत किसान के पास शायद ही कभी एक जोड़ी बैल और दो हल से ज़्यादा कुछ होता था; ज़्यादातर के पास इससे भी कम। गुजरात में जिन किसानों के पास 6 एकड़ के करीब ज़मीन थी वे समृद्ध माने जाते थे; दूसरी तरफ़, बंगाल में एक औसत किसान की ज़मीन की ऊपरी सीमा 5 एकड़ थी; 10 एकड़ ज़मीन वाले आसामी को अमीर समझा जाता था। खेती व्यक्तिगत मिल्कियत के सिद्धांत पर आधारित थी। किसानों की ज़मीन उसी तरह खरीदी और बेची जाती थी जैसे दूसरे संपत्ति मालिकों की।

उन्नीसवीं सदी के दिल्ली-आगरा इलाके में किसानों की मिल्कियत का यह विवरण सत्रहवीं सदी पर भी उतना ही लागू होता है:

> हल जोतने वाले खेतिहर किसान हर ज़मीन की हदों पर मिट्टी, ईंट और काँटों से पहचान के लिए निशान लगाते हैं, और ज़मीन के ऐसे हज़ारों टुकड़े किसी भी गाँव में देखे जा सकते हैं।

1.3 सिंचाई और तकनीक

ज़मीन की बहुतायत, मजदूरों की मौजूदगी, और किसानों की गतिशीलता की वजह से कृषि का लगातार विस्तार हुआ। चूँकि खेती का प्राथमिक उद्देश्य लोगों का पेट भरना था, इसलिए रोज़मर्रा के खाने की जरूरतें जैसे चावल, गेहूँ, ज्वार इत्यादि फ़सलें सबसे ज़्यादा उगाई जाती थीं। जिन इलाकों में प्रति वर्ष 40 इंच या उससे ज़्यादा बारिश होती थी, वहाँ कमोबेश चावल की खेती होती थी। कम और कमतर बारिश वाले इलाकों में क्रमशः गेहूँ व ज्वार-बाजरे की खेती ज़्यादा प्रचलित थी।

मानसून भारतीय कृषि की रीढ़ था, जैसा कि आज भी है। लेकिन कुछ ऐसी फ़सलें भी थीं जिनके लिए अतिरिक्त पानी की ज़रूरत थी। इनके लिए सिंचाई के कृत्रिम उपाय बनाने पड़े।

स्रोत 2

पेड़ों और खेतों की सिंचाई

यह *बाबरनामा* से लिया गया एक अंश है जो सिंचाई के उन उपकरणों के बारे में बताता है जो इस बादशाह ने उत्तर भारत में देखे:

हिंदुस्तान के मुल्क का ज़्यादातर हिस्सा मैदानी ज़मीन पर बसा हुआ है। हालांकि यहाँ शहर और खेती लायक ज़मीन की बहुतायत है, लेकिन कहीं भी बहते पानी (का इंतज़ाम) नहीं... वे इसलिए... कि फ़सल उगाने या बागानों के लिए पानी की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। शरद ऋतु की फ़सलें बारिश के पानी से ही पैदा हो जाती हैं; और ये हैरानगी की बात है कि बसंत ऋतु की फ़सलें तो तब भी पैदा हो जाती हैं जब बारिश बिलकुल ही नहीं होती। (फिर भी) छोटे पेड़ों तक बालटियों या रहट के ज़रिये पानी पहुँचाया जाता है...

लाहौर, दीपालपुर (दोनों ही आज के पाकिस्तान में) और ऐसी दूसरी जगहों पर लोग रहट के ज़रिये सिंचाई करते हैं। वे रस्सी के दो गोलाकार फ़ंदे बनाते हैं जो कुएँ की गहराई के मुताबिक लंबे होते हैं। इन फ़ंदों में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर वे लकड़ी के गुटके लगाते हैं और इन गुटकों पर घड़े बाँध देते हैं। लकड़ी के गुटकों और घड़ों से बँधी इन रस्सियों को कुएँ के ऊपर पहियों से लटकाया जाता है। पहिये की धुरी पर एक और पहिया। इस अंतिम पहिये को बैल के ज़रिये घुमाया जाता है; इस पहिये के दाँत पास के दूसरे पहिये के दाँतों को जकड़ लेते हैं और इस तरह घड़ों वाला पहिया घूमने लगता है। घड़ों से जहाँ पानी गिरता है, वहाँ एक संकरा नाला खोद दिया जाता है और इस तरीके से हर जगह पानी पहुँचाया जाता है।

आगरा, चाँदवर और बयाना (आज के उत्तर प्रदेश में) में और ऐसे अन्य इलाकों में भी, लोगबाग बालटियों से सिंचाई करते हैं। कुएँ के किनारे पर वे लकड़ी के कन्ने गाड़ देते हैं, इन कन्नों के बीच बेलन टिकाते हैं, एक बड़ी बालटी में रस्सी बाँधते हैं, रस्सी को बेलन पर लपेटते हैं और इसके दूसरे छोर को बैल से बाँध देते हैं। एक शख़्स को बैल हाँकना पड़ता है, दूसरा बालटी से पानी निकालता है।

➲ सिंचाई के जिन साधनों का ज़िक्र बाबर ने किया है उनकी तुलना विजयनगर की सिंचाई (अध्याय 7) व्यवस्था से कीजिए। सिंचाई की इन दोनों अलग-अलग प्रणालियों में किस-किस तरह के संसाधनों की ज़रूरत पड़ती होगी? इनमें से किन-किन प्रणालियों में कृषि तकनीक में सुधार के लिए किसानों की भागेदारी ज़रूरी होती होगी?

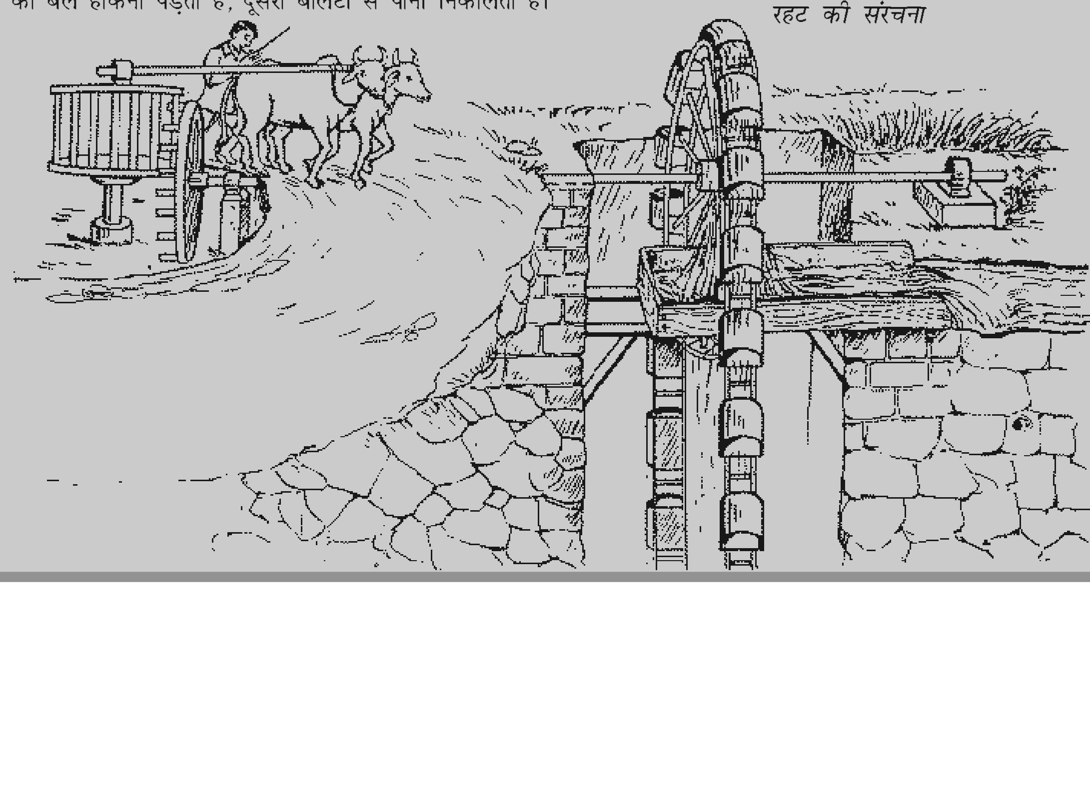

चित्र 8.2
रहट की संरचना

तम्बाकू का प्रसार

यह पौधा सबसे पहले दक्कन पहुँचा और वहाँ से सत्रहवीं सदी के शुरुआती वर्षों में इसे उत्तर भारत लाया गया। *आइन* उत्तर भारत की फ़सलों की सूची में तम्बाकू का ज़िक्र नहीं करती है। अकबर और उसके अभिजातों ने 1604 ई. में पहली बार तम्बाकू देखा। ऐसा लगता है कि इसी समय तम्बाकू का धूम्रपान (हुक्के या चिलम में) करने की लत ने ज़ोर पकड़ा। जहाँगीर इस बुरी आदत के फैलने से इतना चिंतित हुआ कि उसने इस पर पाबंदी लगा दी। यह पाबंदी पूरी तरह से बेअसर साबित हुई क्योंकि हम जानते हैं कि सत्रहवीं सदी के अंत तक, तम्बाकू पूरे भारत में खेती, व्यापार और उपयोग की मुख्य वस्तुओं में से एक था।

सिंचाई कार्यों को राज्य की मदद भी मिलती थी। मसलन, उत्तर भारत में राज्य ने कई नयी नहरें व नाले खुदवाए और कई पुरानी नहरों की मरम्मत करवाई, जैसे कि शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान पंजाब में *शाह नहर* ।

वैसे तो खेती मेहनतकशी का काम था लेकिन किसान ऐसी तकनीकों का इस्तेमाल भी करते थे जो अकसर पशुबल पर आधारित होती थीं। ऐसा एक उदाहरण लकड़ी के उस हलके हल का दिया जा सकता है जिसको एक छोर पर लोहे की नुकीली धार या फाल लगाकर आसानी से बनाया जा सकता था। ऐसे हल मिट्टी को बहुत गहरे नहीं खोदते थे जिसके कारण तेज़ गर्मी के महीनों में नमी बची रहती थी। बैलों के जोड़े के सहारे खींचे जाने वाले बरमे का इस्तेमाल बीज बोने के लिए किया जाता था। लेकिन बीजों को हाथ से छिड़क कर बोने का रिवाज ज़्यादा प्रचलित था। मिट्टी की गुड़ाई और साथ-साथ निराई के लिए लकड़ी के मूठ वाले लोहे के पतले धार काम में लाए जाते थे।

1.4 फ़सलों की भरमार

मौसम के दो मुख्य चक्रों के दौरान खेती की जाती थी: एक खरीफ़ (पतझड़ में) और दूसरी रबी (वसंत में)। यानी सूखे इलाकों और बंजर ज़मीन को छोड़ दें तो ज़्यादातर जगहों पर साल में कम से कम दो फ़सलें होती थीं। जहाँ बारिश या सिंचाई के अन्य साधन हर वक्त मौजूद थे वहाँ तो साल में तीन फ़सलें भी उगाई जाती थीं। इस वजह से पैदावार में भारी विविधता पाई जाती थी। उदाहरण के तौर पर, *आइन* हमें बताती है कि दोनों मौसम मिलाकर, मुग़ल प्रांत आगरा में 39 किस्म की फ़सलें उगाई जाती थीं जबकि दिल्ली प्रांत में 43 फ़सलों की पैदावार होती थी। बंगाल में सिर्फ चावल की 50 किस्में पैदा होती थीं।

हालाँकि दैनिक आहार की खेती पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता था मगर इसका मतलब यह नहीं था कि मध्यकालीन भारत में खेती सिर्फ़ गुज़ारा करने के लिए की जाती थी। स्रोतों में हमें अकसर जिन्स-ए-कामिल (सर्वोत्तम फ़सलें) जैसे लफ़्ज़ मिलते हैं। मुग़ल राज्य भी किसानों को ऐसी फ़सलों की खेती करने के लिए बढ़ावा देता था क्योंकि इनसे राज्य को ज़्यादा कर मिलता था। कपास और गन्ने जैसी फ़सलें बेहतरीन जिन्स-ए-कामिल थीं। मध्य भारत और दक्कनी पठार में फैले हुए ज़मीन के बड़े-बड़े टुकड़ों पर कपास उगाई जाती थी, जबकि बंगाल अपनी चीनी के लिए मशहूर था। तिलहन (जैसे सरसों) और दलहन भी नकदी फ़सलों में आती थीं। इससे पता चलता है कि एक औसत किसान की ज़मीन पर किस तरह पेट भरने के लिए होने वाले उत्पादन और व्यापार के लिए किए जाने वाले उत्पादन एक दूसरे से जुड़े हुए थे।

कृषि की समृद्धि और आबादी की बढ़ोतरी

कृषि उत्पादन के ऐसे विविध और लचीले तरीक़ों का एक बड़ा नतीजा यह निकला कि आबादी धीरे-धीरे बढ़ने लगी। आर्थिक इतिहासकारों की गणना के मुताबिक, समय-समय पर होने वाली भूखमरी और महामारी के बावजूद, 1600 से 1700 के बीच भारत की आबादी लगभग 5 करोड़ बढ़ गई। 200 वर्षों में यह करीब-करीब 33 फीसदी बढ़ोतरी थी।

सत्रहवीं सदी में दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से कई नयी फ़सलें भारतीय उपमहाद्वीप पहुँचीं। मसलन, मक्का भारत में अफ्रीका और स्पेन के रास्ते आया और सत्रहवीं सदी तक इसकी गिनती पश्चिम भारत की मुख्य फ़सलों में होने लगी। टमाटर, आलू और मिर्च जैसी सब्ज़ियाँ नयी दुनिया से लाई गईं। इसी तरह अनानास और पपीता जैसे फल वहीं से आए।

➲ चर्चा कीजिए...

इस अनुभाग में खेती संबंधी जिन क्रियाकलापों और तकनीकों की चर्चा हुई है उनमें से कौन-कौन सी अध्याय 2 में वर्णित तकनीकों और क्रियाकलापों से मिलती-जुलती हैं और कौन कौन सी भिन्न हैं?

2. ग्रामीण समुदाय

ऊपर लिखी बातों से ज़हिर है कि कृषि उत्पादन में किसानों की पुरज़ोर भागीदारी और पहल होती थी। इससे मुग़ल समाज के कृषि संबंधों पर क्या असर पड़ता था? यह पता करने के लिए आइए, हम समाज के उन समूहों पर एक नज़र डालें जो खेती के विस्तार में शरीक होते थे। साथ ही हम उनके बीच के रिश्तों और झगड़ों पर भी गौर करेंगे।

हम पहले देख चुके हैं कि किसान की अपनी ज़मीन पर व्यक्तिगत मिल्कियत होती थी। साथ ही जहाँ तक उनके सामाजिक अस्तित्व का सवाल है, कई मायनों में वे एक सामूहिक ग्रामीण समुदाय का हिस्सा थे। इस समुदाय के तीन घटक थे – खेतिहर किसान, पंचायत और गाँव का मुखिया (मुक़द्दम या मंडल)।

2.1 जाति और ग्रामीण माहौल

जाति और अन्य जाति जैसे भेदभावों की वजह से खेतिहर किसान कई तरह के समूहों में बँटे थे। खेतों की जुताई करने वालों में एक बड़ी तादाद ऐसे लोगों की थी जो नीच समझे जाने वाले कामों में लगे थे, या फिर खेतों में मज़दूरी करते थे।

हालाँकि खेती लायक ज़मीन की कमी नहीं थी, फिर भी कुछ जाति के लोगों को सिर्फ नीच समझे जाने वाले काम ही दिए जाते थे। इस तरह वे ग़रीब रहने के लिए मजबूर थे। जनगणना तो उस वक्त नहीं होती थी, पर जो थोड़े बहुत आँकड़े और तथ्य हमारे पास हैं उनसे पता चलता है कि गाँव की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे ही समूहों का था। इनके पास संसाधन सबसे कम थे और ये जाति व्यवस्था की पाबंदियों से बँधे थे। इनकी हालत कमोबेश

चित्र 8.3
आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दी का एक चित्र जिसमें पंजाब के एक गाँव को दिखाया गया है।

➲ चित्र में महिलाएँ और पुरुष क्या-क्या करते दिखाए गए हैं? गाँव की वास्तुकला का भी वर्णन कीजिए।

वैसी ही थी जैसी कि आधुनिक भारत में दलितों की। दूसरे संप्रदायों में भी ऐसे भेदभाव फैलने लगे थे। मुसलमान समुदायों में हलालख़ोरान जैसे 'नीच' कामों से जुड़े समूह गाँव की हदों के बाहर ही रह सकते थे; इसी तरह बिहार में मल्लाहज़ादाओं (शाब्दिक अर्थ, नाविकों के पुत्र), की तुलना दासों से की जा सकती थी।

समाज के निचले तबकों में जाति, गरीबी और सामाजिक हैसियत के बीच सीधा रिश्ता था। ऐसा बीच के समूहों में नहीं था। सत्रहवीं सदी में मारवाड़ में लिखी गई एक किताब राजपूतों की चर्चा किसानों के रूप में करती है। इस किताब के मुताबिक जाट भी किसान थे लेकिन जाति व्यवस्था में उनकी जगह राजपूतों के मुक़ाबले नीची थी। सत्रहवीं सदी में राजपूत होने का दावा वृंदावन (उत्तर प्रदेश) के इलाके में गौरव समुदाय ने भी किया, बावजूद इसके कि वे ज़मीन की जुताई के काम में लगे थे। पशुपालन और बागबानी में बढ़ते मुनाफ़े की वजह से अहीर, गुज्जर और माली जैसी जातियाँ सामाजिक सीढ़ी में ऊपर उठीं। पूर्वी इलाकों में, पशुपालक और मछुआरी जातियाँ, जैसे सदगोप व कैवर्त भी किसानों की सी सामाजिक स्थिति पाने लगीं।

2.2 पंचायतें और मुखिया

गाँव की पंचायत में बुज़ुर्गों का जमावड़ा होता था। आमतौर पर वे गाँव के महत्त्वपूर्ण लोग हुआ करते थे जिनके पास अपनी संपत्ति के पुश्तैनी अधिकार होते थे। जिन गाँवों में कई जातियों के लोग रहते थे, वहाँ अकसर पंचायत में भी विविधता पाई जाती थी। यह एक ऐसा अल्पतंत्र था जिसमें गाँव के अलग-अलग संप्रदायों और जातियों की नुमाइंदगी होती थी। फिर भी इसकी संभावना कम ही है कि छोटे-मोटे और "नीच" काम करने वाले खेतिहर मज़दूरों के लिए इसमें कोई जगह होती होगी। पंचायत का फ़ैसला गाँव में सबको मानना पड़ता था।

पंचायत का सरदार एक मुखिया होता था जिसे मुक़द्दम या मंडल कहते थे। कुछ स्रोतों से ऐसा लगता है कि मुखिया का चुनाव गाँव के बुज़ुर्गों की आम सहमति से होता था और इस चुनाव के बाद उन्हें इसकी मंज़ूरी ज़मींदार से लेनी पड़ती थी। मुखिया अपने ओहदे पर तभी तक बना रहता था जब तक गाँव के बुज़ुर्गों को उस पर भरोसा था। ऐसा नहीं होने पर बुज़ुर्ग उसे बर्ख़ास्त कर सकते थे। गाँव के आमदनी व खर्चे का हिसाब-किताब अपनी निगरानी में बनवाना मुखिया का मुख्य काम था और इसमें पंचायत का पटवारी उसकी मदद करता था।

पंचायत का खर्चा गाँव के उस आम ख़ज़ाने से चलता था जिसमें हर व्यक्ति अपना योगदान देता था। इस ख़ज़ाने से उन कर अधिकारियों की ख़ातिरदारी का ख़र्चा भी किया जाता था जो समय-समय पर गाँव

भ्रष्ट मंडल

मंडल अकसर अपने ओहदे का ग़लत इस्तेमाल करते थे। मुख्यत: उन पर ये आरोप था कि वे पटवारी के साथ मिलकर हिसाब-किताब में हेरा-फेरी करते थे, और यह भी कि वे अपनी ज़मीन पर कर का आकलन कम करके, अतिरिक्त बोझ छोटे किसानों पर डाल देते थे।

चित्र 8.4
प्रारंभिक उन्नीसवीं शताब्दी का चित्र जिसमें गाँव के बुज़ुर्ग कर अधिकारियों से मिल रहे हैं।

➲ चित्रकार ने गाँव के बुज़ुर्गों और कर अधिकारियों में फ़र्क कैसे डाला है?

का दौरा किया करते थे। दूसरी ओर, इस कोष का इस्तेमाल बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के लिए भी होता था और ऐसे सामुदायिक कार्यों के लिए भी जो किसान खुद नहीं कर सकते थे, जैसे कि मिट्टी के छोटे-मोटे बाँध बनाना या नहर खोदना।

पंचायत का एक बड़ा काम यह तसल्ली करना था कि गाँव में रहने वाले अलग-अलग समुदायों के लोग अपनी जाति की हदों के अंदर रहें। पूर्वी भारत में सभी शादियाँ मंडल की मौजूदगी में होती थीं। यूँ कहा जा सकता है कि "जाति की अवहेलना रोकने के लिए" लोगों के आचरण पर नज़र रखना गाँव के मुखिया की ज़िम्मेदारियों में से एक था।

पंचायतों को जुर्माना लगाने और समुदाय से निष्कासित करने जैसे ज़्यादा गंभीर दंड देने के अधिकार थे। समुदाय से बाहर निकालना एक कड़ा कदम था जो एक सीमित समय के लिए लागू किया जाता था। इसके तहत दंडित व्यक्ति को (दिए हुए समय के लिए) गाँव छोड़ना पड़ता था। इस दौरान वह अपनी जाति और पेशे से हाथ धो बैठता था। ऐसी नीतियों का मकसद जातिगत रिवाजों की अवहेलना रोकना था।

ग्राम पंचायत के अलावा गाँव में हर जाति की अपनी पंचायत होती थी। समाज में ये पंचायतें काफ़ी ताकतवर होती थीं। राजस्थान में जाति पंचायतें अलग-अलग जातियों के लोगों के बीच दीवानी के झगड़ों का निपटारा करती थीं। वे ज़मीन से जुड़े दावेदारियों के झगड़े सुलझाती थीं; यह तय करती थीं कि शादियाँ जातिगत मानदंडों के मुताबिक हो रही हैं या नहीं, और यह भी कि गाँव के आयोजन में किसको किसके ऊपर तरजीह दी जाएगी। कर्मकांडीय वर्चस्व किस क्रम में होगा। फ़ौजदारी न्याय को छोड़ दें तो ज़्यादातर मामलों में राज्य जाति पंचायत के फ़ैसलों को मानता था।

पश्चिम भारत – ख़ासकर राजस्थान और महाराष्ट्र जैसे प्रांतों– के संकलित दस्तावेज़ों में ऐसी कई अर्ज़ियाँ हैं जिनमें पंचायत से "ऊँची" जातियों या राज्य के अधिकारियों के ख़िलाफ़ ज़बरन कर उगाही या बेगार वसूली की शिकायत की गई है। आमतौर पर यह अर्ज़ियाँ ग्रामीण समुदाय के सबसे निचले तबके के लोग लगाते थे। अकसर

सामूहिक तौर पर भी ऐसी अर्ज़ियाँ दी जाती थीं। इनमें किसी जाति या संप्रदाय विशेष के लोग संभ्रांत समूहों की उन माँगों के ख़िलाफ़ अपना विरोध जताते थे जिन्हें वे नैतिक दृष्टि से अवैध मानते थे। उनमें एक थी बहुत ज़्यादा कर की माँग क्योंकि इससे किसानों का दैनिक गुज़ारा ही जोखिम में पड़ जाता था, ख़ासकर सूखे या ऐसी दूसरी विपदाओं के दौरान। उनकी नज़रों में ज़िंदा रहने के लिए न्यूनतम बुनियादी साधन उनका परंपरागत रिवाजी हक़ था। वे समझते थे कि ग्राम पंचायत को इसकी सुनवाई करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि राज्य अपना नैतिक फ़र्ज़ अदा करे और न्याय करे। "निचली जाति" के किसानों और राज्य के अधिकारियों या स्थानीय ज़मींदारों के बीच झगड़ों में पंचायत के फ़ैसले अलग-अलग मामलों में अलग-अलग हो सकते थे। अत्यधिक कर की माँगों के मामले में पंचायत अकसर समझौते का सुझाव देती थी। जहाँ समझौते नहीं हो पाते थे, वहाँ किसान विरोध के ज़्यादा उग्र रास्ते अपनाते थे, जैसे कि गाँव छोड़कर भाग जाना। जोतने लायक खाली ज़मीन अपेक्षाकृत आसानी से उपलब्ध थी जबकि श्रम को लेकर प्रतियोगिता थी। इस वजह से, गाँव छोड़कर भाग जाना खेतिहरों के हाथ में एक बड़ा प्रभावी हथियार था।

चित्र 8.5
कपड़ा उत्पादन को दर्शाती सत्रहवीं शताब्दी की एक चित्रकारी

➲ चित्र में दर्शायी गई गतिविधियों का वर्णन कीजिए।

2.3 ग्रामीण दस्तकार

अलग-अलग तरह के उत्पादन कार्य में जुटे लोगों के बीच फैले लेन-देन के रिश्ते गाँव का एक और रोचक पहलू था। अंग्रेज़ी शासन के शुरुआती वर्षों में किए गए गाँवों के सर्वेक्षण और मराठाओं के दस्तावेज़ बताते हैं कि गाँवों में दस्तकार काफ़ी अच्छी तादाद में रहते थे। कहीं-कहीं तो कुल घरों के 25 फ़ीसदी घर दस्तकारों के थे।

कभी-कभी किसानों और दस्ताकारों के बीच फ़र्क करना मुश्किल होता था क्योंकि कई ऐसे समूह थे जो दोनों किस्म के काम करते थे। खेतिहर और उसके परिवार के सदस्य कई तरह की वस्तुओं के उत्पादन में शिरकत करते थे।

मसलन–रँगरेज़ी, कपड़े पर छपाई, मिट्टी के बरतनों को पकाना, खेती के औज़ारों को बनाना या उनकी मरम्मत करना। उन महीनों में जब उनके पास खेती के काम से फ़ुरसत होती–जैसे कि बुआई और सुहाई के बीच या सुहाई और कटाई के बीच–उस समय ये खेतिहर दस्तकारी का काम करते थे।

कुम्हार, लोहार, बढ़ई, नाई, यहाँ तक कि सुनार जैसे ग्रामीण दस्तकार भी अपनी सेवाएँ गाँव के लोगों को देते थे जिसके बदले गाँव वाले उन्हें अलग-अलग तरीक़ों से उन सेवाओं की अदायगी करते थे। आमतौर पर या तो उन्हें फ़सल का एक हिस्सा दे दिया जाता था या फिर गाँव की ज़मीन का एक टुकड़ा, शायद कोई ऐसी ज़मीन जो खेती लायक होने के बावजूद बेकार पड़ी थी। अदायगी की सूरत क्या होगी ये शायद पंचायत ही तय करती थी। महाराष्ट्र में ऐसी ज़मीन दस्तकारों की *मीरास* या *वतन* बन गई जिस पर दस्तकारों का पुश्तैनी अधिकार होता था।

यही व्यवस्था कभी-कभी थोड़े बदले हुए रूप में भी पायी जाती थी जहाँ दस्तकार और हरेक खेतिहर परिवार परस्पर बातचीत करके अदायगी की किसी एक व्यवस्था पर राज़ी होते थे। ऐसे में आमतौर पर वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय होता था। उदाहरण के तौर पर, अठारहवीं सदी के स्रोत बताते हैं कि बंगाल में ज़मींदार उनकी सेवाओं के बदले लोहारों, बढ़ई और सुनारों तक को "रोज़ का भत्ता और खाने के लिए नकदी देते थे।" इस व्यवस्था को जजमानी कहते थे, हालांकि यह शब्द सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में बहुत इस्तेमाल नहीं होता था। ये सबूत मज़ेदार हैं क्योंकि इनसे पता चलता है कि गाँव के छोटे स्तर पर फ़ेर-बदल के रिश्ते कितने पेचीदा थे। ऐसा नहीं है कि नकद अदायगी का चलन बिलकुल ही नदारद था।

2.4 एक "छोटा गणराज्य"?

ग्रामीण समुदाय की अहमियत को हम कैसे समझें? उन्नीसवीं सदी के कुछ अंग्रेज़ अफ़सरों ने भारतीय गाँवों को एक ऐसे "छोटे गणराज्य" के रूप में देखा जहाँ लोग सामूहिक स्तर पर भाईचारे के साथ संसाधनों और श्रम का बँटवारा करते थे। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि गाँव में सामाजिक बराबरी थी। संपत्ति की व्यक्तिगत मिल्कियत होती थी, साथ ही जाति और जेंडर (सामाजिक लिंग) के नाम पर समाज में गहरी विषमताएँ थीं। कुछ ताकतवर लोग गाँव के मसलों पर फ़ैसले लेते थे और कमज़ोर वर्गों का शोषण करते थे। न्याय करने का अधिकार भी उन्हीं को मिला हुआ था।

इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि गाँवों और शहरों के बीच होने वाले व्यापार की वजह से गाँवों में भी नकद के रिश्ते फैल चुके थे।

गाँव में मुद्रा

सत्रहवीं सदी में फ्रांसीसी यात्री ज्यां बैप्टिस्ट तैवर्नियर को यह बात उल्लेखनीय लगी कि "भारत में वे गाँव बहुत ही छोटे कहे जाएँगे जिनमें मुद्रा की फेर बदल करने वाले, जिन्हें *सराफ़* कहते हैं, न हों। एक बैंकर की तरह *सराफ़* हवाला भुगतान करते हैं (और) अपनी मर्ज़ी के मुताबिक पैसे के मुकाबले रुपये की कीमत बढ़ा देते हैं और कौड़ियों के मुकाबले पैसे की।

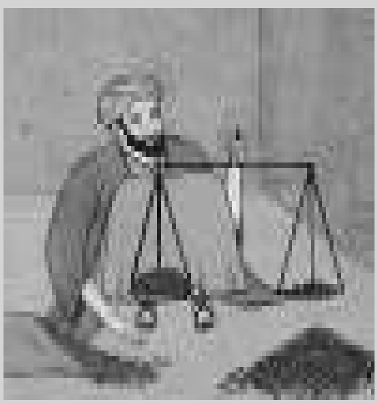

चित्र 8.6
सराफ़ अपने काम में लगा हुआ है।

चित्र 8.7
सूत कातती महिला

मुग़लों के केंद्रीय इलाकों में कर की गणना और वसूली भी नकद में की जाती थी। जो दस्तकार निर्यात के लिए उत्पादन करते थे, उन्हें उनकी मज़दूरी या पूर्व भुगतान भी नकद में ही मिलता था। इसी तरह कपास, रेशम या नील जैसी व्यापारिक फ़सलें पैदा करने वालों का भुगतान भी नकदी ही होता था।

➲ चर्चा कीजिए...

इस अनुभाग में जिन पंचायतों का ज़िक्र किया गया है, वे आपके मुताबिक किस तरह से आज की ग्राम पंचायतों से मिलती-जुलती थीं अथवा भिन्न थीं?

3. कृषि समाज में महिलाएँ

जैसा कि शायद कई समाजों में आपने गौर किया होगा, उत्पादन की प्रक्रिया में मर्द और महिलाएँ खास किस्म की भूमिकाएँ अदा करते हैं। जिस संदर्भ में हम बात कर रहे हैं, वहाँ महिलाएँ और मर्द कंधे से कंधा मिलाकर खेतों में काम करते थे। मर्द खेत जोतते थे व हल चलाते थे और महिलाएँ बुआई, निराई और कटाई के साथ-साथ पकी हुई फ़सल का दाना निकालने का काम करती थीं। जब छोटी-छोटी ग्रामीण इकाइयों का और किसान की व्यक्तिगत खेती का विकास हुआ–जो कि मध्यकालीन भारतीय कृषि की ख़ासियत थी–तब घर-परिवार के संसाधन और श्रम, उत्पादन की बुनियाद बने। स्वाभाविक तौर पर, ऐसे में लिंग बोध के आधार पर आमतौर पर किया जाने वाला फ़र्क (घर के लिए महिलाएँ और बाहर के लिए मर्द) मुमकिन नहीं था। फिर भी महिलाओं की जैव वैज्ञानिक क्रियाओं को लेकर लोगों के मन में पूर्वाग्रह बने रहे। मसलन पश्चिमी भारत में, राजस्वला महिलाओं को हल या कुम्हार का चाक छूने की इजाज़त नहीं थी; इसी तरह बंगाल में अपने मासिक-धर्म के समय महिलाएँ पान के बगान में नहीं घुस सकती थीं।

सूत कातने, बरतन बनाने के लिए मिट्टी को साफ़ करने और गूँधने, और कपड़ों पर कढ़ाई जैसे दस्तकारी के काम उत्पादन के ऐसे पहलू थे जो महिलाओं के श्रम पर निर्भर थे। किसी वस्तु का जितना वाणिज्यीकरण होता था, उसके उत्पादन के लिए महिलाओं के श्रम की उतनी ही माँग होती थी। दरअसल, किसान और दस्तकार महिलाएँ ज़रूरत पड़ने पर न सिर्फ़ खेतों में काम करती थीं बल्कि नियोक्ताओं के घरों पर भी जाती थीं और बाज़ारों में भी।

चूँकि समाज श्रम पर निर्भर था, इसलिए बच्चे पैदा करने की अपनी क़ाबिलियत की वजह से महिलाओं को महत्त्वपूर्ण संसाधन के रूप में देखा जाता था। फिर भी शादी-शुदा महिलाओं की कमी थी क्योंकि कुपोषण, बार-बार माँ बनने और प्रसव के वक़्त मौत की वजह से महिलाओं में मृत्युदर बहुत ज़्यादा था। इससे किसान और दस्तकार समाज में ऐसे सामाजिक रिवाज पैदा हुए जो संभ्रांत समूहों से बहुत अलग थे। कई ग्रामीण संप्रदायों में शादी के लिए ''दुलहन की कीमत'' अदा करने की ज़रूरत होती थी, न कि दहेज की। तलाकशुदा महिलाएँ और विधवाएँ दोनों ही कानूनन शादी कर सकती थीं।

महिलाओं की प्रजनन शक्ति को इतनी अहमियत दी जाती थी कि उस पर काबू खोने का बड़ा डर था। स्थापित रिवाजों के मुताबिक घर का मुखिया मर्द होता था। इस तरह महिला पर परिवार और समुदाय के मर्दों द्वारा पुरज़ोर काबू रखा जाता था। बेवफ़ाई के शक पर ही महिलाओं को भयानक दंड दिए जा सकते थे।

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र आदि पश्चिमी भारत के इलाकों से मिले दस्तावेज़ों में ऐसी दरख्वास्त मिली हैं जो महिलाओं ने न्याय और मुआवज़े की उम्मीद से ग्राम पंचायत को भेजी थीं। पत्नियाँ अपने पतियों की बेवफ़ाई का विरोध करती दिखाई देती हैं या फिर गृहस्थी के मर्द पर ये आरोप लगातीं कि वे पत्नी और बच्चों की अनदेखी करता है। मर्दों की बेवफ़ाई हमेशा दंडित नहीं होती थी; लेकिन राज्य और ''ऊँची'' जाति के लोग अकसर ये सुनिश्चित करने की कोशिश करते कि परिवार के भरण-पोषण का इंतज़ाम हो जाए। ज़्यादातर, जब महिलाएँ पंचायत को दरख्वास्त देतीं, उनके नाम दस्तावेज़ों में दर्ज नहीं किए जाते: दरख्वास्त करने वाली का हवाला गृहस्थी के मर्द/मुखिया की माँ, बहन या पत्नी के रूप में दिया जाता था।

भूमिहर भद्रजनों में महिलाओं को पुश्तैनी संपत्ति का हक़ मिला हुआ था। पंजाब से ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ महिलाएँ (विधवा महिलाएँ भी) पुश्तैनी संपत्ति के विक्रेता के रूप में ग्रामीण ज़मीन के बाज़ार में सक्रिय हिस्सेदारी रखती थीं। हिंदू और मुसलमान महिलाओं को ज़मींदारी उत्तराधिकार में मिलती थी जिसे बेचने अथवा गिरवी रखने के लिए वे स्वतंत्र थीं। बंगाल में भी महिला ज़मींदार पाई जाती थीं। अठारहवीं सदी की सबसे बड़ी और मशहूर ज़मींदारियों में से एक थी राजशाही की ज़मींदारी जिसकी कर्ता-धर्ता एक स्त्री थी।

➲ चर्चा कीजिए...

क्या आपके प्रांत में कृषि भूमि पर महिलाओं और मर्दों की पहुँच में कोई फ़र्क है?

चित्र 8.8 (क)
फ़तेहपुर सीकरी का निर्माण। महिलाएँ पत्थर तोड़ रही हैं।

चित्र 8.8 (ख)
बोझा ढोती महिलाएँ।
आस-पास के दूसरे गाँवों से आने वाली महिलाएँ अकसर ऐसे निर्माण-स्थलों पर काम करती थीं।

4 जंगल और कबीले

4.1 बसे हुए गाँवों के परे

ग्रामीण भारत में, बसे हुए लोगों की खेती के अलावा भी बहुत कुछ था। उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भारत की गहरी खेती वाले प्रदेशों को छोड़ दें तो ज़मीन के विशाल हिस्से जंगल या झाड़ियों (खरबंदी) से घिरे थे। ऐसे इलाके झारखंड सहित पूरे पूर्वी भारत, मध्य भारत, उत्तरी क्षेत्र (जिसमें भारत-नेपाल के सीमावर्ती इलाके की तराई शामिल हैं), दक्षिणी भारत का पश्चिमी घाट और दक्कन के पठारों में फैले हुए थे। हालाँकि इस काल में अखिल भारतीय स्तर पर जंगलों के फैलाव का औसत निकालना लगभग असंभव है, फिर भी समसामयिक स्रोतों से मिली जानकारी के आधार पर ये अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि यह औसत करीब-करीब 40 फ़ीसदी था।

चित्र 8.9
नीलगाय का शिकार करते हुए शाहजहाँ का चित्र (बादशाहनामा से)

➲ आप इस चित्र में जो देखते हैं उसका वर्णन कीजिए। इसमें ऐसा कौन सा सांकेतिक तत्व है जो शिकार और एक आदर्श न्याय व्यवस्था को जोड़ता है?

समसामयिक रचनाएँ जंगल में रहने वालों के लिए जंगली शब्द का इस्तेमाल करती है। लेकिन जंगली होने का मतलब सभ्यता का न होना बिलकुल नहीं था, वैसे आजकल इस शब्द का प्रचलित अर्थ यही है। उन दिनों इस शब्द का इस्तेमाल ऐसे लोगों के लिए होता था जिनका गुज़ारा जंगल के उत्पादों, शिकार और स्थानांतरीय खेती से होता था। ये काम मौसम के मुताबिक होते थे। उदाहरण के तौर पर भीलों में, बसंत के मौसम में जंगल के उत्पाद इकट्ठा किए जाते, गर्मियों में मछली पकड़ी जाती, मानसून के महीनों मे खेती की जाती, और शरद व जाड़े के महीनों में शिकार किया जाता था। यह सिलसिला लगातार गतिशीलता की बुनियाद पर खड़ा था और इस बुनियाद को मज़बूत भी करता था। लगातार एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहना इन जंगलों में रहने वाले कबीलों की एक खासियत थी।

जहाँ तक राज्य का सवाल है, उसके लिए जंगल उलट फेर वाला इलाका था : बदमाशों को शरण देने वाला अड्डा (मवास)। एक बार फिर हम बाबर की ओर देखते हैं जो कहता है कि जंगल एक ऐसा रक्षाकवच था "जिसके पीछे परग़ना के लोग कड़े विद्रोही हो जाते थे और कर अदा करने से मुकर जाते थे।"

4.2 जंगलों में घुसपैठ

जंगल में बाहरी ताकतें कई तरह से घुसती थीं, मसलन, राज्य को सेना के लिए हाथियों की जरूरत होती थी। इसलिए, जंगलवासियों से ली जाने वाली पेशकश में अकसर हाथी भी शामिल होते थे।

मुग़ल राजनीतिक विचारधारा में, गरीबों और अमीरों सहित सबके लिए, न्याय करने का राज्य के गहरे सरोकार का एक लक्षण था – शिकार अभियान। दरबारी इतिहासकारों की मानें, तो शिकार अभियान के नाम पर बादशाह अपने विशाल साम्राज्य के कोने-कोने का दौरा करता था और इस तरह अलग-अलग इलाकों के लोगों की समस्याओं और शिकायतों पर व्यक्तिगत रूप से गौर करता था। दरबारी कलाकारों के चित्रों में शिकार का विषय बार-बार आता था। इन चित्रों में चित्रकार अकसर छोटा-सा एक ऐसा दृश्य डाल देते थे जो सद्भावनापूर्ण शासन का संकेत देता था।

परगना मुग़ल प्रांतों में एक प्रशासनिक प्रमंडल था।

पेशकश मुग़ल राज्य के द्वारा ली जाने वाली एक तरह की भेंट थी।

स्रोत 3

कृषि बस्तियों के लिए जंगलों का सफ़ाया

यह सोलहवीं सदी में मुकुंदराम चक्रवर्ती की लिखी एक बंगाली कविता *चंडीमंगल* का एक अंश है। कविता के नायक, कालकेतु ने जंगल खाली करवा के, एक साम्राज्य की स्थापना की :

ख़बर मिलते ही, परदेसी आने लगे तमाम जगहों से।
फिर कालकेतु ने ख़रीद कर बाँटे उनमें
भारी भरकम चाकू, कुल्हाड़ी, और भाले-बरछे।
उत्तर से आए दास
सैकड़ों उमड़ते हुए।
हुए चकित देखकर कालकेतु को
जिसने दी सुपारी एक-एक को।
दक्खिन से आए फ़सल कटाई वाले
एक उद्यमी के साथ पाँच सौ।
पश्चिम से आया ज़फ़र मियाँ
साथ में बाईस हज़ार लोग।
हाथों में सुलेमानी मोती की माला
जपते हुए पीर ओ पैग़म्बर का नाम।
जंगलों को हटाने के बाद
उन्होंने बसाए बाज़ार।
सैकड़ों सैकड़ों की तादाद में बिदेसी
जंगलों को (जैसे) खा लिए, और घुस आए वहाँ।
कुल्हाड़ियों की आवाज़ सुनकर
शेर डर गए और दहाड़ते हुए भाग निकले।

➲ यह पद्यांश जंगल में घुसपैठ के कौन से रूपों को उजागर करता है? इसके संदेश की तुलना चित्र 8.9 में दिये गए लघु चित्र से कीजिए। जंगल में रहने वाले लोगों के अनुसार पद्याश में किन्हें "बिदेसी" बताया गया है?

स्रोत 4

पहाड़ी कबीलों और मैदानों के बीच व्यापार, लगभग 1595

अवध सूबे (आज के उत्तर प्रदेश का हिस्सा) के मैदानी इलाकों और पहाड़ी कबीलों के बीच होने वाले लेन-देन के बारे में अबुल फ़ज़्ल ने कुछ इस तरह लिखा है:

उत्तर के पहाड़ों से इंसानों, मोटे-मोटे घोड़ों और बकरों की पीठ पर लादकर बेशुमार सामान ले जाए जाते हैं, जैसे कि सोना, ताँबा, शीशा, कस्तूरी, सुरागाय (याक) की पूँछ, शहद, चुक (संतरे के रस और नींबू के रस को साथ उबालकर बनाया जाने वाला एक अम्ल), अनार दाना, अदरख, लंबी मिर्च, मजीठ (जिससे लाल रंग बनाया जाता है) की जड़ें, सुहागा, ज़दवार (हल्दी जैसी एक जड़), मोम, ऊनी कपड़े, लकड़ी के सामान, चील, बाज़, काले बाज़, मर्लिन (बाज़ पक्षी की ही एक किस्म), और अन्य वस्तुएँ। इसके बदले, वे सफ़ेद और रंगीन कपड़े, कहरुबा (एक पीला-भूरा धातु जिससे गहने बनाए जाते थे), नमक, हींग, गहने और शीशे व मिट्टी के बरतन वापिस ले जाते हैं।

➲ इस अनुच्छेद में परिवहन के कौन से तरीक़ों का ज़िक्र किया गया है? आपके मुताबिक, इनका इस्तेमाल क्यों किया जाता था? मैदानों से जो सामान पहाड़ ले जाए जाते थे, उनमें से हर एक वस्तु किस काम में लाई जाती होगी, इसका खुलासा कीजिए।

वाणिज्यिक खेती का असर, बाहरी कारक के रूप में, जंगलवासियों की ज़िंदगी पर भी पड़ता था। जंगल के उत्पाद–जैसे शहद, मधुमोम और लाक की बहुत माँग थी। लाक जैसी कुछ वस्तुएँ तो सत्रहवीं सदी में भारत से समुद्र पार होने वाले निर्यात की मुख्य वस्तुएँ थीं। हाथी भी पकड़े और बेचे जाते थे। व्यापार के तहत वस्तुओं की अदला-बदली भी होती थी। कुछ कबीले भारत और अफ़ग़ानिस्तान के बीच होने वाले ज़मीनी व्यापार में लगे थे, जैसे पंजाब का लोहानी कबीला। वे पंजाब के गाँवों और शहरों के बीच होने वाले व्यापार में भी शिरकत करते थे।

चित्र 8.10
सूफ़ी गायक को सुनते हुए एक किसान और एक शिकारी।

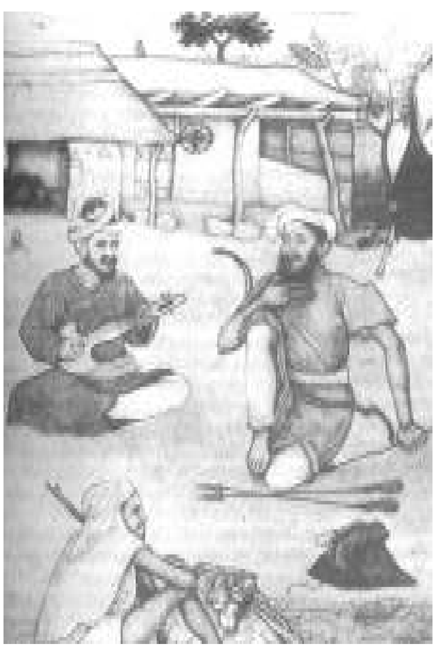

सामाजिक कारणों से भी जंगलवासियों के जीवन में बदलाव आए। कबीलों के भी सरदार होते थे, बहुत कुछ ग्रामीण समुदाय के "बड़े आदमियों" की तरह। कई कबीलों के सरदार ज़मींदार बन गए. कुछ तो राजा भी हो गये। ऐसे में उन्हें सेना खड़ी करने की ज़रूरत हुई। उन्होंने अपने ही खानदान के लोगों को सेना में भर्ती किया; या फिर अपने ही भाई-बंधुओं से सैन्य सेवा की माँग की। सिंध इलाके की कबीलाई सेनाओं में 6000 घुड़सवार और 7000 पैदल सिपाही होते थे। असम में, अहोम राजाओं के अपने *पायक* होते थे। ये वे लोग थे जिन्हें ज़मीन के बदले सैनिक सेवा देनी पड़ती थी। अहोम राजाओं ने जंगली हाथी पकड़ने पर अपने एकाधिकार का ऐलान भी कर रखा था।

हालाँकि कबीलाई व्यवस्था से राजतांत्रिक प्रणाली की तरफ़ संक्रमण बहुत पहले ही शुरू हो चुका था, लेकिन ऐसा लगता है कि सोलहवीं सदी में

आकर ही यह प्रक्रिया पूरी तरह विकसित हुई। इसकी जानकारी हमें उत्तर-पूर्वी इलाकों में कबीलाई राज्यों के बारे में *आइन* की बातों से मिलती है। उदाहरण के तौर पर, सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में कोच राजाओं ने पड़ोसी कबीलों के साथ एक के बाद एक युद्ध किया और उन पर अपना कब्ज़ा जमा लिया।

जंगल के इलाकों में नए सांस्कृतिक प्रभावों के विस्तार की भी शुरुआत हुई। कुछ इतिहासकारों ने तो दरअसल यह भी सुझाया है कि नए बसे इलाकों के खेतिहर समुदायों ने जिस तरह धीरे-धीरे इस्लाम को अपनाया उसमें सूफ़ी संतों (पीर) ने एक बड़ी भूमिका अदा की थी (अध्याय 6 भी देखिए)।

➲ चर्चा कीजिए...

पता कीजिए कि आपके प्रांत में किन क्षेत्रों को आजकल जंगल वाले इलाके के रूप में पहचाना जाता है? क्या इन इलाकों में आज ज़िंदगियाँ बदल रही हैं? इन बदलावों की वजहें वही हैं जिनका ज़िक्र हमने इस अनुभाग में किया है या उनसे अलग?

5. ज़मींदार

मुग़ल भारत में कृषि संबंधों की हमारी दास्तान तब तक अधूरी रहेगी जब तक गाँवों में रहने वाले एक ऐसे तबके की बात न कर लें जिनकी कमाई तो खेती से आती थी लेकिन जो कृषि उत्पादन में सीधे हिस्सेदारी नहीं करते थे। ये ज़मींदार थे जो अपनी ज़मीन के मालिक होते थे और जिन्हें ग्रामीण समाज में ऊँची हैसियत की वजह से कुछ खास सामाजिक और आर्थिक सुविधाएँ मिली हुई थीं। ज़मींदारों की बढ़ी हुई हैसियत के पीछे एक कारण जाति था; दूसरा कारण यह था कि वे लोग राज्य को कुछ खास किस्म की सेवाएँ (ख़िदमत) देते थे।

ज़मींदारों की समृद्धि की वजह थी उनकी विस्तृत व्यक्तिगत ज़मीन। इन्हें *मिल्कियत* कहते थे, यानी संपत्ति। मिल्कियत ज़मीन पर ज़मींदार के निजी इस्तेमाल के लिए खेती होती थी। अकसर इन ज़मीनों पर दिहाड़ी के मज़दूर या पराधीन मज़दूर काम करते थे। ज़मींदार अपनी मर्ज़ी के मुताबिक इन ज़मींनों को बेच सकते थे, किसी और के नाम कर सकते थे या उन्हें गिरवी रख सकते थे।

ज़मींदारों की ताकत इस बात से भी आती थी कि वे अकसर राज्य की ओर से कर वसूल कर सकते थे। इसके बदले उन्हें वित्तीय मुआवज़ा मिलता था। सैनिक संसाधन उनकी ताकत का एक और ज़रिया था। ज़्यादातर ज़मींदारों के पास अपने किले भी थे और अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भी जिसमें घुड़सवारों, तोपखाने और पैदल सिपाहियों के जत्थे होते थे।

इस तरह, अगर हम मुग़लकालीन गाँवों में सामाजिक संबंधों की कल्पना एक पिरामिड के रूप में करें, तो ज़मींदार इसके संकरे शीर्ष का

हिस्सा थे। अबुल फ़ज़्ल इस ओर इशारा करता है कि "ऊँची जाति" के ब्राह्मण-राजपूत गठबंधन ने ग्रामीण समाज पर पहले ही अपना ठोस नियंत्रण बना रखा था। इसमें तथाकथित मध्यम जातियों की भी ख़ासी नुमाइंदगी थी जैसा कि हमने पहले देखा है, और इसी तरह कई मुसलमान ज़मींदारों की भी।

समसामयिक दस्तावेज़ों से ऐसा लगता है कि जंग में जीत ज़मींदारों की उत्पत्ति का संभावित स्रोत रहा होगा। अकसर, ज़मींदारी फैलाने का एक तरीक़ा था ताकतवर सैनिक सरदारों द्वारा कमज़ोर लोगों को बेदखल करना। मगर इसकी संभावना कम ही है कि किसी ज़मींदार को इतने आक्रामक रुख की इजाज़त राज्य देता हो जब तक कि एक राज्यादेश (सनद) के ज़रिये इसकी पुष्टि पहले ही नहीं कर दी गई हो।

इससे भी महत्त्वपूर्ण थी ज़मींदारी को पुख्ता करने की धीमी प्रक्रिया। स्रोतों में इसके दस्तावेज़ भी शामिल हैं। ये कई तरीक़े से किया जा सकता था: नयी ज़मीनों को बसाकर (जंगल-बारी), अधिकारों के हस्तांतरण के ज़रिये, राज्य के आदेश से, या फिर खरीद कर। यही वे प्रक्रियाएँ थीं जिनके ज़रिये अपेक्षाकृत ''निचली'' जातियों के लोग भी ज़मींदारों के दर्जे में दाखिल हो सकते थे, क्योंकि इस काल में ज़मींदारी धड़ल्ले से खरीदी और बेची जाती थी।

एक समांतर सैनिक बल!

आइन के मुताबिक, मुग़ल भारत में ज़मींदारों की मिली-जुली सैनिक शक्ति इस प्रकार थी : 384,558 घुड़सवार; 4,277,057 पैदल; 1863 हाथी; 4260 तोप; और 4,500 नाव।

कई कारणों ने मिलकर परिवार या वंश पर आधारित ज़मींदारियों को पुख्ता होने का मौका दिया। मसलन, राजपूतों और जाटों ने ऐसी रणनीति अपनाकर उत्तर भारत में ज़मीन की बड़ी-बड़ी पट्टियों पर अपना नियंत्रण पुख्ता किया। इसी तरह मध्य और दक्षिण-पश्चिम बंगाल में किसान-पशुचारियों (जैसे, सदगोप) ने ताकतवर ज़मींदारियाँ खड़ी कीं।

ज़मींदारों ने खेती लायक ज़मींनों को बसाने में अगुआई की और खेतिहरों को खेती के साजो-सामान व उधार देकर उन्हें वहाँ बसने में भी मदद की। ज़मींदारी की खरीद-फ़रोख्त से गाँवों के मौद्रीकरण की प्रक्रिया में तेज़ी आई। इसके अलावा, ज़मींदार अपनी मिल्कियत की ज़मीनों की फ़सल भी बेचते थे। ऐसे सबूत हैं जो दिखाते हैं कि ज़मींदार अकसर बाज़ार (हाट) स्थापित करते थे जहाँ किसान भी अपनी फ़सलें बेचने आते थे।

हालाँकि इसमें कोई शक नहीं कि ज़मींदार शोषण करने वाला तबका था, लेकिन किसानों से उनके रिश्तों में पारस्परिकता, पैतृकवाद और संरक्षण का पुट था। दो पहलू इस बात की पुष्टि करते हैं। एक तो ये कि भक्ति संतों ने जहाँ बड़ी बेबाकी से जातिगत और दूसरी किस्मों के

अत्याचारों की निंदा की (अध्याय 6 भी देखिए), वहीं उन्होंने ज़मींदारों को (या फिर, दिलचस्प बात है, साहूकारों को) किसानों के शोषक या उन पर अत्याचार करने वाले के रूप में नहीं दिखाया। आमतौर पर राज्य का राजस्व अधिकारी ही उनके ग़ुस्से का निशाना बना। दूसरे, सत्रहवीं सदी में भारी संख्या में कृषि विद्रोह हुए और उनमें राज्य के ख़िलाफ़ ज़मींदारों को अकसर किसानों का समर्थन मिला।

➲ **चर्चा कीजिए...**
आज़ादी के बाद भारत में ज़मींदारी व्यवस्था ख़त्म कर दी गई। इस अनुभाग को पढ़िए और उन कारणों की पहचान कीजिए जिनकी वजह से ऐसा किया गया।

6. भू-राजस्व प्रणाली

ज़मीन से मिलने वाला राजस्व मुग़ल साम्राज्य की आर्थिक बुनियाद थी। इस कारण से, कृषि उत्पादन पर नियंत्रण रखने के लिए और तेज़ी से फैलते साम्राज्य के तमाम इलाक़ों में राजस्व आकलन व वसूली के लिए यह ज़रूरी था कि राज्य एक प्रशासनिक तंत्र खड़ा करे। दीवान, जिसके दफ़्तर पर पूरे राज्य की वित्तीय व्यवस्था के देख-रेख की ज़िम्मेदारी थी, इस तंत्र में शामिल था। इस तरह हिसाब रखने वाले और राजस्व अधिकारी खेती की दुनिया में दाखिल हुए और कृषि संबंधों को शक्ल देने में एक निर्णायक ताकत के रूप में उभरे।

लोगों पर कर का बोझ निर्धारित करने से पहले मुग़ल राज्य ने ज़मीन और उस पर होने वाले उत्पादन के बारे में खास किस्म की सूचनाएँ इकट्ठा करने की कोशिश की। भू-राजस्व के इंतज़ामात में दो चरण थे : पहला, कर निर्धारण और दूसरा, वास्तविक वसूली। *जमा* निर्धारित रक़म थी और *हासिल* सचमुच वसूली गई रक़म। *अमील-गुज़ार* या राजस्व वसूली करने वाले के कामों की सूची में अकबर ने यह हुक्म दिया कि जहाँ उसे (अमील-गुज़ार को) कोशिश करनी चाहिए कि खेतिहर नक़द भुगतान करे, वहीं फ़सलों में भुगतान का विकल्प भी खुला रहे। राजस्व निर्धारित करते समय राज्य अपना हिस्सा ज़्यादा से ज़्यादा रखने की कोशिश करता था। मगर स्थानीय हालात की वजह से कभी-कभी सचमुच में इतनी वसूली कर पाना संभव नहीं हो पाता था।

हर प्रांत में जुती हुई ज़मीन और जोतने लायक ज़मीन दोनों की नपाई की गई। अकबर के शासन काल में अबुल फ़ज़्ल ने *आइन* में ऐसी ज़मीनों के सभी आंकड़ों को संकलित किया। उसके बाद के बादशाहों के शासनकाल में भी ज़मीन की नपाई के प्रयास जारी रहे। मसलन, 1665 ई. में, औरंगज़ेब ने अपने राजस्व कर्मचारियों को स्पष्ट निर्देश दिया कि हर गाँव में खेतिहरों की संख्या का सालाना हिसाब रखा जाए (स्रोत 7)। इसके बावजूद सभी इलाक़ों की नपाई सफलतापूर्वक नहीं हुई। जैसाकि हमने देखा है, उपमहाद्वीप के कई बड़े हिस्से जंगलों से घिरे हुए थे और इनकी नपाई नहीं हुई।

अमीन एक मुलाज़िम था जिसकी ज़िम्मेवारी यह सुनिश्चित करना था कि प्रांतों में राजकीय नियम कानूनों का पालन हो रहा है।

स्रोत 5

अकबर के शासन में भूमि का वर्गीकरण

आइन में वर्गीकरण के मापदंड की निम्नलिखित सूची दी गई है:

अकबर बादशाह ने अपनी गहरी दूरदर्शिता के साथ ज़मींनों का वर्गीकरण किया और हरेक (वर्ग की ज़मीन) के लिए अलग-अलग राजस्व निर्धारित किया। *पोलज* वह ज़मीन है जिसमें एक के बाद एक हर फ़सल की सालाना खेती होती है और जिसे कभी खाली नहीं छोड़ा जाता है। *परौती* वह ज़मीन है जिस पर कुछ दिनों के लिए खेती रोक दी जाती है ताकि वह अपनी खोयी ताकत वापस पा सके। *चचर* वह ज़मीन है जो तीन या चार वर्षों तक खाली रहती है। *बंजर* वह ज़मीन है जिस पर पाँच या उससे ज़्यादा वर्षों से खेती नहीं की गई हो। पहले दो प्रकार की ज़मीन की तीन किस्में हैं, अच्छी, मध्यम और खराब। वे हर किस्म की ज़मीन के उत्पाद को जोड़ देते हैं, और इसका तीसरा हिस्सा मध्यम उत्पाद माना जाता है, जिसका एक-तिहाई हिस्सा शाही शुल्क माना जाता है।

➲ अपने अधीन इलाक़ों में ज़मीन का वर्गीकरण करते वक्त मुग़ल राज्य ने किन सिद्धांतों का पालन किया? राजस्व निर्धारण किस प्रकार किया जाता था?

मानचित्र 1
मुग़ल साम्राज्य का विस्तार

➲ भू-राजस्व की वसूली पर साम्राज्य के विस्तार का क्या प्रभाव पड़ा?

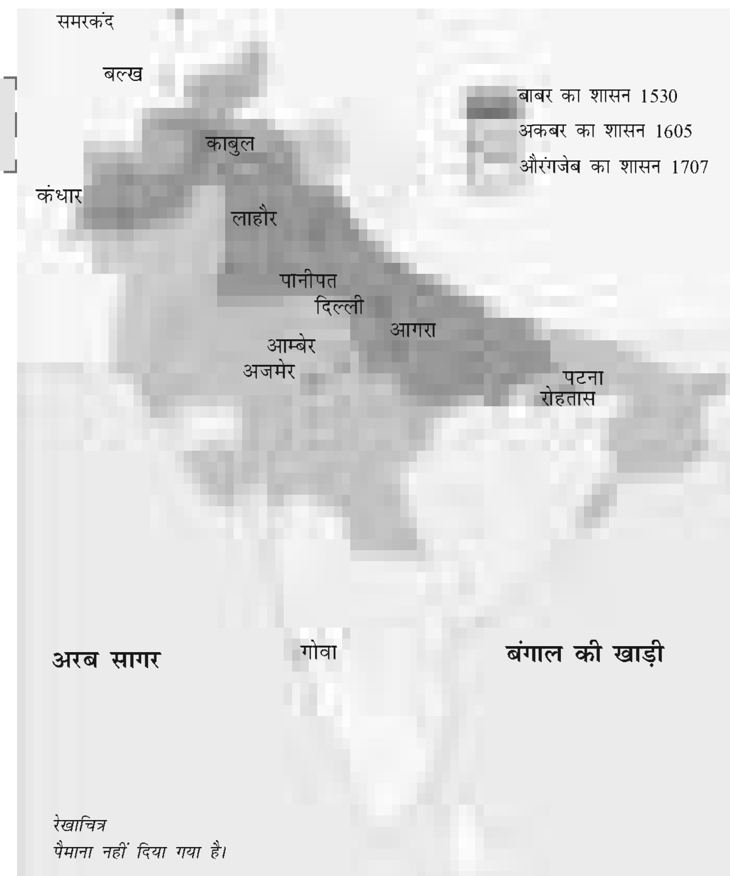

मनसबदारी व्यवस्था

मुग़ल प्रशासनिक व्यवस्था के शीर्ष पर एक सैनिक-नौकरशाही तंत्र (मनसबदारी) था जिस पर राज्य के सैनिक व नागरिक मामलों की ज़िम्मेदारी थी। कुछ मनसबदारों को नक़दी भुगतान किया जाता था, जब कि उनमें से ज़्यादातर को साम्राज्य के अलग-अलग हिस्सों में राजस्व के आबंटन के ज़रिये भुगतान किया जाता था। समय-समय पर उनका तबादला किया जाता था। अध्याय 9 देखिए।

स्रोत 6

नक़द या जीन्स ?

आइन से यह एक और अनुच्छेद है:

अमील-गुज़ार सिर्फ़ नक़द लेने की आदत न डाले बल्कि फ़सल भी लेने के लिए तैयार रहे। यह बाद वाला तरीक़ा कई तरह से काम में लाया जा सकता है। पहला, *कणकुत:* हिंदी ज़ुबान में *कण* का मतलब है, अनाज, और *कुत,* अंदाज़ा ...... अगर कोई शक हो, तो फ़सल को तीन अलग-अलग पुलिंदों में काटना चाहिए– अच्छा, मध्यम और बदतर, और इस तरह शक दूर करना चाहिए। अकसर अंदाज़ से किया गया ज़मीन का आकलन भी पर्याप्त रूप से सही नतीजा देता है। दूसरा, बटाई जिसे *भाओली* भी कहते हैं (में), फ़सल काट कर जमा कर लेते हैं, और फ़िर सभी पक्षों की मौजूदगी में व रज़ामंदी में बँटवारा करते हैं। लेकिन इसमें कई समझदार निरीक्षकों की ज़रूरत पड़ती है; वर्ना दुष्ट-बुद्धि और मक्कार धोखेबाज़ी की नीयत रखते हैं। तीसरे, खेत बटाई जब वे बीज बोने के बाद खेत बाँट लेते हैं। चौथे, लाँग बटाई; फ़सल काटने के बाद, वे उसका ढ़ेर बना लेते हैं और फिर उसे अपने में बाँट लेते हैं, और हरेक (पक्ष) अपना हिस्सा घर ले जाता है और उससे मुनाफ़ा कमाता है।

➲ राजस्व निर्धारण व वसूली की हरेक प्रणाली में खेतिहरों पर क्या फ़र्क पड़ता होगा?

स्रोत 7

जमा

1665 ई. में अपने राजस्व अधिकारी को औरंगज़ेब के द्वारा दिये गए हुक्म का एक अंश :

वे परगनाओं के अमीनों को निर्देश दें कि वे हर गाँव, हर किसान (आसामीवार) के बावत खेती के मौजूदा हालात (मौजूदात) पता करें, और बारीकी से उनकी जाँच करने के बाद सरकार के वित्तीय हितों (किफ़ायत) व किसानों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए *जमा* निर्धारित करें।

➲आपकी राय में बादशाह ने विस्तृत सर्वेक्षण पर क्यों ज़ोर दिया?

➲ चर्चा कीजिए...

क्या आप मुग़लों की भू-राजस्व प्रणाली को एक लचीली व्यवस्था मानेंगे?

7 चाँदी का बहाव

मुगल साम्राज्य एशिया के उन बड़े साम्राज्यों में एक था जो सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में सत्ता और संसाधनों पर अपनी पकड़ मज़बूत बनाने में कामयाब रहे। ये साम्राज्य थे–मिंग (चीन में), सफ़ावी (ईरान में), और ऑटोमन (तुर्की में)। इन साम्राज्यों की राजनीतिक स्थिरता ने चीन से लेकर भूमध्य सागर तक ज़मीनी व्यापार का जीवंत जाल बिछाने में मदद की। खोजी यात्राओं से, और 'नयी दुनिया' के खुलने से यूरोप के साथ एशिया के, खास कर भारत के, व्यापार में भारी विस्तार हुआ। इस वजह से भारत के समुद्र-पार व्यापार में एक ओर भौगोलिक विविधता आई तो दूसरी ओर कई नयी वस्तुओं का व्यापार भी शुरू हो गया। लगातार बढ़ते व्यापार के

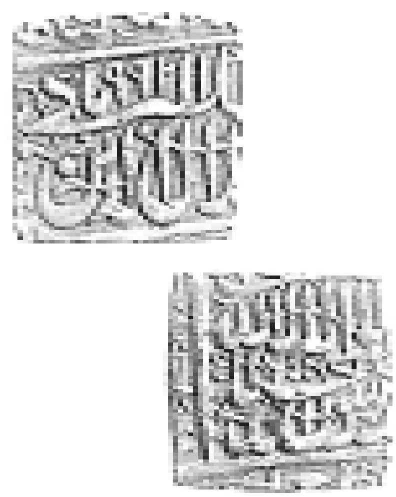

चित्र 8.11
अकबर द्वारा जारी किए गए चाँदी के रुपये की दोनों तरफ़ें

चित्र 8.12
औरंगज़ेब द्वारा जारी किया गया चाँदी का रुपया

साथ, भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं का भुगतान करने के लिए एशिया में भारी मात्रा में चाँदी आई। इस चाँदी का एक बड़ा हिस्सा भारत की तरफ़ खिंच गया। यह भारत के लिए अच्छा था क्योंकि यहाँ चाँदी के प्राकृतिक संसाधन नहीं थे। नतीजतन, सोलहवीं से अठारहवीं सदी के बीच भारत में धातु मुद्रा–खास कर चाँदी के रुपयों–की उपलब्धि में अच्छी स्थिरता बनी रही। इसके साथ ही एक तरफ़ तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा संचार और सिक्कों की ढलाई में अभूतपूर्व विस्तार हुआ, दूसरी तरफ़ मुग़ल राज्य को नकदी कर उगाहने में आसानी हुई।

इटली के एक मुसाफ़िर जोवान्नी कारेरी, जो लगभग 1690 ई. में भारत से होकर गुज़रा था, ने इस बात का बड़ा सजीव चित्र पेश किया है कि किस तरह चाँदी तमाम दुनिया से होकर भारत पहुँचती थी। उसी से हमें यह भी पता चलता है कि सत्रहवीं सदी के भारत में बड़ी अद्‌भुत मात्रा में नकद और वस्तुओं का आदान-प्रदान हो रहा था।

चित्र 8.13
यूरोपीय बाज़ारों की माँगों को पूरा करने के लिए भारतीय उपमहाद्वीप के वस्त्र उत्पादन का एक उदाहरण

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाइए कि वर्तमान में आपके राज्य में कृषि उत्पादन पर कर लगाए जाते हैं या नहीं। आज की राज्य सरकारों की राजकोषीय नीतियों और मुग़ल राजकोषीय नीतियों में समानताओं और भिन्नताओं को समझाइए।

स्रोत 8

भारत में चाँदी कैसे आई?

जोवान्नी कारेरी के लेख (बर्नियर के लेख पर आधारित) के निम्नलिखित अंश से हमें पता चलता है कि मुग़ल साम्राज्य में कितनी भारी मात्रा में बाहर से धन आ रहा था:

(मुग़ल) साम्राज्य की धन-संपत्ति का अंदाज़ा लगाने के लिए पाठक इस बात पर गौर करें कि दुनिया भर में बिचरने वाला सारा सोना-चाँदी आखिरकार यहीं पहुँच जाता है। ये सब जानते हैं कि इसका बहुत बड़ा हिस्सा अमेरिका से आता है, और यूरोप के कई राज्यों से होते हुए, (इसका) थोड़ा-सा हिस्सा कई तरह की वस्तुओं के लिए तुर्की में जाता है; और थोड़ा-सा हिस्सा रेशम के लिए स्मिरना होते हुए फ़ारस पहुँचता है। अब चूँकि तुर्की लोग कॉफ़ी से अलग नहीं रह सकते, जो कि ओमान और अरबिया से आती है..... (और) न ही फ़ारस, अरबिया और तुर्की (के लोग) भारत की वस्तुओं के बिना रह सकते हैं। (वे) मुद्रा की विशाल मात्रा लाल सागर पर बेबल मंडेल के पास स्थित मोचा भेजते हैं; (इसी तरह वे ये मुद्राएँ) फ़ारस की खाड़ी पर स्थित बसरा भेजते हैं;... बाद में ये (सारी संपत्ति) जहाज़ों से इन्दोस्तान (हिंदुस्तान) भेज दी जाती है। भारतीय जहाज़ों के अलावा जो डच, अंग्रेज़ी और पुर्तगाली जहाज़ हर साल इंदोस्तान की वस्तुएँ लेकर पेगू, तानस्सेरी (म्यांमार के हिस्से), स्याम (थाइलैंड), सीलोन (श्रीलंका)... मालदीव के टापू, मोज़ाम्बीक़ और अन्य जगहें ले जाते हैं, (इन्हीं जहाज़ों को) निश्चित तौर पर बहुत सारा सोना-चाँदी इन देशों से लेकर वहाँ (हिंदुस्तान) पहुँचाना पड़ता है। वो सब कुछ, जो डच लोग जापान की खानों से हासिल करते हैं, देर-सवेर इंदोस्तान (को) चला जाता है; और यहाँ से यूरोप को जाने वाली सारी वस्तुएँ, चाहे वो फ्रांस जाएँ या इंग्लैंड या पुर्तगाल, सभी नकद में खरीदी जाती हैं, जो (नकद) वहीं (हिंदुस्तान में) रह जाता है।

8. अबुल फ़ज़्ल की *आइन-ए-अकबरी*

आइन-ए-अकबरी आँकड़ों के वर्गीकरण के एक बहुत बड़े ऐतिहासिक और प्रशासनिक परियोजना का नतीजा थी जिसका ज़िम्मा बादशाह अकबर के हुक्म पर अबुल फ़ज़्ल ने उठाया था। अकबर के शासन के बयालीसवें वर्ष, 1598 ई. में, पाँच संशोधनों के बाद, इसे पूरा किया गया। *आइन* इतिहास लिखने के एक ऐसे बृहत्तर परियोजना का हिस्सा थी जिसकी पहल अकबर ने की थी। इस परियोजना का परिणाम था *अकबरनामा* जिसे तीन जिल्दों में रचा गया। पहली दो जिल्दों ने ऐतिहासिक दास्तान पेश की। इन हिस्सों पर हम अध्याय 9 में ज़्यादा करीबी नज़र डालेंगे। तीसरी जिल्द, *आइन-ए-अकबरी,* को शाही नियम कानून के सारांश और साम्राज्य के एक राजपत्र की सूरत में संकलित किया गया था।

आइन कई मसलों पर विस्तार से चर्चा करती है : दरबार, प्रशासन और सेना का संगठन; राजस्व के स्रोत और अकबरी साम्राज्य के प्रांतों का भूगोल; और लोगों के साहित्यिक, सांस्कृतिक व धार्मिक रिवाज। अकबर की सरकार के तमाम विभागों और प्रांतों (सूबों) के बारे में

चित्र 8.14
अबुल फ़ज़्ल अपने आश्रयदाता को अकबरनामा *की पांडुलिपि पेश कर रहे हैं*

विस्तार से जानकारी देने के अलावा, *आइन* इन सूबों के बारे में *पेचीदे* और आँकड़ेबद्ध सूचनाएँ बड़ी बारीकी के साथ देती है।

इन सूचनाओं को इकट्ठा करके, उन्हें सिलसिलेवार तरीक़े से संकलित करना एक महत्त्वपूर्ण शाही कवायद थी। इसने बादशाह को साम्राज्य के तमाम इलाकों में प्रचलित रिवाजों और पेशों की जानकारी दी। इस तरह हमारे लिए *आइन* अकबर के शासन के दौरान मुग़ल साम्राज्य के बारे में सूचनाओं की खान है। फिर भी यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि *आइन* का नज़रिया क्षेत्रों के बारे में केंद्र का नज़रिया है, या यूँ कहें कि समाज के शीर्ष से देखी हुई समाज की तसवीर।

आइन पाँच भागों (*दफ़्तर*) का संकलन है जिसके पहले तीन भाग प्रशासन का विवरण देते हैं। *मंज़िल-आबादी* के नाम से पहली किताब शाही घर-परिवार और उसके रख-रखाव से ताल्लुक रखती है। दूसरा भाग, *सिपह-आबादी* सैनिक व नागरिक प्रशासन और नौकरों की व्यवस्था के बारे में है। इस भाग में शाही अफ़सरों (मनसबदार), विद्वानों, कवियों और कलाकारों की संक्षिप्त जीवनियाँ शामिल हैं।

तीसरा, *मुल्क-आबादी*, वह भाग है जो साम्राज्य व प्रांतों के वित्तीय पहलुओं तथा राजस्व की दरों के आँकड़ों की विस्तृत जानकारी देने के बाद "बारह प्रांतों का बयान" देता है। इस खंड में सांख्यिकी सूचनाएँ तफ़सील से दी गई हैं, जिसमें सूबों और उनकी तमाम प्रशासनिक व वित्तीय इकाइयों (सरकार, परगना और महल) के भौगोलिक, स्थलाकृतिक और आर्थिक रेखाचित्र भी शामिल हैं। इसी खंड में हर प्रांत और उसकी अलग-अलग इकाइयों की कुल मापी गई ज़मीन और निर्धारित राजस्व (*जमा*) भी दी गई हैं।

सूबा स्तर की विस्तृत जानकारी देने के बाद, *आइन* हमें *सूबों* के नीचे की इकाई *सरकारों* के बारे में विस्तार से बताती है। ये सूचनाएँ तालिकाबद्ध तरीके से दी गई हैं, जहाँ हर तालिका में आठ ख़ाने हैं जो हमें निम्नलिख्ति सूचनाएँ देते हैं : (1) *परगनात/महल;* (2) *क़िला;* (3) *अराज़ी* और *जमीन-ए-पाईमूद* (मापे गए इलाके); (4) *नकदी* (नक़द निर्धारित राजस्व); (5) *सुयूरग़ाल* (दान में दिया गया राजस्व अनुदान); (6) ज़मींदार; ख़ाने 7 और 8 में ज़मींदारों की जातियाँ और उनके घुड़सवार, पैदल सिपाही *(प्यादा)* व हाथी *(फ़ील)* सहित उनके फ़ौज की जानकारी दी गई है। *मुल्क-आबादी* उत्तर भारत के कृषि समाज का विस्तृत, आकर्षक व पेचीदा चित्र पेश करती है। चौथी और पाँचवीं किताबें *(दफ़्तर)* भारत के लोगों के मज़हबी, साहित्यिक और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों से ताल्लुक रखती हैं; इनके आख़िर में अकबर के "शुभ वचनों" का एक संग्रह भी है।

स्रोत 9

"खुशकिस्मती के गुलाब बाग की सिंचाई"

नीचे दिये गए अंश में अबुल फ़ज़्ल ने बड़े साफ़ तौर पर ये खुलासा किया है कि उसने कैसे और किनसे अपनी सूचनाएँ हासिल कीं:

...अबुल फ़ज़्ल, वल्द मुबारक... को यह शानदार हुक्म दिया गया, "शानदार घटनाओं और राज्य-क्षेत्र अधीन करने वाली हमारी फ़तहों की दास्तान ईमानदारी के कलम से लिखो..."। तसल्ली से, मैंने काफ़ी खोजबीन और मिहनत करके महामहिम की गतिविधियों के सबूत और दस्तावेज़ इकट्ठे किए और बहुत समय तक राज्य के मुलाज़िमों व शाही परिवार के सदस्यों के साथ जवाब तलब किया। मैंने सच बोलने वाले समझदार बुज़ुर्गों और फ़ुर्तीले दिमाग वाले, सत्यकर्मी जवानों दोनों (की बातों) को परखा, और उनके बयानों को लिखित रूप से दर्ज किया। सूबों को शाही हुक्म जारी किया गया कि पुराने मुलाज़िमों में जिस किसी को बीते वक्त की घटनाएँ याद हों, पूरे विश्वास के साथ या मामूली शक के साथ (भी), वे अपने संस्मरण को लिखें और उसे दरबार भेज दें, (फिर) उस पाक-मौजूदगी के कक्ष से एक और हुक्म रौशन हुआ; वो ये, कि जो सामग्री जमा की जाए... उसे शाही मौजूदगी में पढ़कर सुनाया जाए, और बाद में जो कुछ भी लिखा जाना हो, उसे उस महान किताब में परिशिष्ट की शक्ल में जोड़ दिया जाए, और ये कि ऐसे ब्योरे जो जाँच-पड़ताल की बारीकियों की वजह से, या मामले की बारीकियों की वजह से, उसी समय अंजाम तक नहीं लाए जा सके, उन्हें मैं बाद में दर्ज करूँ।

ईश्वरी अध्यादेश का खुलासा करने वाले इस शाही हुक्म (की वजह) से अपनी गुप्त फ़िक्र से राहत पाकर, मैंने ऐसे कच्चे प्रारूप लिखने की शुरुआत की, जिसमें शैली या विन्यास की ख़ूबसूरती नहीं थी। मैंने इलाही संवत के उन्नीसवें साल से – जब महामहिम की दानिशमंद अक्ल से दस्तावेज़ दफ़्तर स्थापित किया गया था – घटनाओं का इतिहासवृत्त हासिल किया, और उसके भरे-पूरे पन्नों से मैंने कई मामलों का ब्योरा पाया। काफ़ी तकलीफ़ें उठाकर उन सभी हुक्मों की मूल प्रति या नकल हासिल की गई जो राज्याभिषेक से लेकर आज तक सूबों को जारी किए गए थे। काफ़ी दिक्कतों का सामना करते हुए, मैंने उनमें से कई रिपोर्टों को भी शामिल किया जो साम्राज्य के विभिन्न मामलों या दूसरे देशों में घटी घटनाओं के बारे में थीं और जिन्हें ऊँचे अफ़सरों और मंत्रियों ने भेजा था। और जवाबतलब व खोजबीन के तंत्र से मेरी मिहनतपसंद रूह संतृप्त हो गई। बड़ी कर्मठता के साथ मैंने वे कच्चे मसौदे व ज्ञापनपत्र भी हासिल किए जो जानकार और दूरदर्शी लोगों ने लिखे थे। इन तरीकों से खुशकिस्मती के इस गुलाब बाग *(अकबरनामा)* को सींचने और नमी देने के लिए मैंने हौज़ बनाया।

➲ उन सभी स्रोतों की सूची बनाएँ जिनका इस्तेमाल अबुल फ़ज़्ल ने अपनी किताब पूरी करने के लिए किया। कृषि संबंधों को समझने के लिए इनमें से कौन से स्रोत सबसे उपयोगी होते? आपके मुताबिक किस हद तक अबुल फ़ज़्ल की किताब अकबर से उसके रिश्ते से प्रभावित हुई होगी?

आइन का अनुवाद

आइन की अहमियत की वजह से, कई विद्वानों ने इसका अनुवाद किया। हेनरी ब्लॉकमेन ने इसे संपादित किया और कलकत्ता (आज का कोलकाता) के एशियाटिक सोसाइटी ने अपनी बिब्लियोथिका श्रृंखला में इसे छापा। इस किताब का तीन खंडों में अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया गया। पहले खंड का मानक अंग्रेज़ी अनुवाद ब्लॉकमेन का है (कलकत्ता, 1873), बाकी के दो खंडों के अनुवाद एच. एस. जैरेट ने किए (कलकत्ता, 1891 और 1894)।

हालाँकि बादशाह अकबर के शासन की सहूलियत के लिए *आइन* को आधिकारिक तौर पर विस्तृत सूचनाएँ जमा करने के लिए प्रायोजित किया गया था, फिर भी यह किताब आधिकारिक दस्तावेज़ों की महज नकल से कहीं बढ़ कर थी। हम जानते हैं कि इसकी पांडुलिपि को लेखक द्वारा पाँच बार संशोधित किया गया। इससे ऐसा लगता है कि प्रामाणिकता की खोज में अबुल फ़ज़्ल काफ़ी सावधानी बरत रहे थे। उदाहरण के तौर पर, मौखिक बयानों को तथ्य के रूप में किताब में शामिल करने से पहले, अन्य स्रोतों से उसकी असलियत और सच्चाई की पुष्टि करने की कोशिश की जाती थी। सांख्यिकी वाले खंडों में सभी आँकड़ों को अंकों के साथ शब्दों में भी लिखा गया ताकि बाद की प्रतियों में नकल की गलतियाँ कम से कम हों।

फिर भी जिन इतिहासकारों ने ध्यान से *आइन* का अध्ययन किया, वे बताते हैं कि यह ग्रंथ पूरी तरह समस्याओं से परे नहीं है। जोड़ करने में कई ग़लतियाँ पाई गई हैं। ऐसा माना जाता है कि या तो ये अंकगणित की छोटी-मोटी चूक है या फिर नकल उतारने के दौरान अबुल फ़ज़्ल के सहयोगियों की भूल। आमतौर पर ये ग़लतियाँ मामूली हैं और एक व्यापक स्तर पर किताबों के आंकड़ों की सच्चाई को कम नहीं करतीं।

आइन की एक और सीमा यह है कि इसके संख्यात्मक आँकड़ों में विषमताएँ हैं। सभी सूबों से आँकड़े एक ही शक्ल में नहीं एकत्रित किए गए। मसलन, जहाँ कई सूबों के लिए ज़मींदारों की जाति के मुतलिक विस्तृत सूचनाएँ संकलित की गईं, वहीं बंगाल और उड़ीसा के लिए ऐसी सूचनाएँ मौजूद नहीं हैं। इसी तरह, जहाँ सूबों से लिए गए राजकोषीय आँकड़े बड़ी तफ़सील से दिए गए हैं, वहीं उन्हीं इलाकों से कीमतों और मज़दूरी जैसे इतने ही महत्त्वपूर्ण मापदंड इतने अच्छे से दर्ज़ नहीं किए गए हैं। कीमतों और मज़दूरी की दरों की जो विस्तृत सूची *आइन* में दी भी गई है वह साम्राज्य की राजधानी आगरा या उसके इर्द-गिर्द के इलाकों से ली गई है। ज़ाहिर है कि देश के बाकी हिस्सों के लिए इन आँकड़ों की प्रासंगिकता सीमित है।

इन सीमाओं के बावजूद, आइन अपने समय के लिए एक असामान्य व अनोखा दस्तावेज़ है। मुग़ल साम्राज्य के गठन और उसकी संरचना को मंत्र-मुग्ध करने वाली झलकियाँ दिखाकर और उसके बाशिंदों व उत्पादों के बारे में सांख्यिकीय आँकड़े देकर, अबुल फ़ज़्ल मध्यकालीन इतिहासकारों की अब तक प्रचलित परंपराओं से कहीं आगे निकल गए और यह निश्चित तौर पर एक बड़ी उपलब्धि थी। गौरतलब है कि मध्यकालीन भारत में अबुल फ़ज़्ल से पहले के इतिहासकार ज़्यादातर राजनीतिक वारदातों के बारे में ही लिखते थे-जंग, फ़तह, सियासी साज़िशें, या

वंशीय उथल-पुथल। देश, उसके लोग या उत्पादों का ज़िक्र गाहे बगाहे प्रसंगवश ही आता था और वह भी एक ऐसे लेख "साज-सज्जा" के रूप में जिसकी दिशा मूलतः राजनीतिक होती थी।

भारत के लोगों और मुग़ल साम्राज्य के बारे में विस्तृत सूचनाएँ दर्ज करके *आइन* ने स्थापित परंपराओं को पीछे छोड़ दिया और इस तरह सत्रहवीं सदी के मुहाने पर भारत के अध्ययन के लिए एक संदर्भ बिंदु बन गया। जहाँ तक कृषि संबंधों का सवाल है, *आइन* के सांख्यिकीय सबूतों की अहमियत चुनौतियों के परे है। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण, लोगों, उनके पेशों और व्यवसायों, साम्राज्य की व्यवस्था और उसके उच्चाधिकारियों के बारे में जो सूचनाएँ यह ग्रंथ मुहैया कराता है, उनकी मदद से इतिहासकार समकालीन भारत के सामाजिक ताने-बाने का इतिहास पुनः रचते हैं।

काल रेखा
मुग़ल साम्राज्य के इतिहास के मुख्य पड़ाव

1526	दिल्ली के सुलतान, इब्राहिम लोदी को पानीपत में हराकर बाबर पहला मुग़ल बादशाह बनता है
1530–40	हुमायूँ के शासन का पहला चरण
1540–55	शेरशाह से हार कर हुमायूँ सफ़ावी दरबार में प्रवासी बन कर रहता है
1555–56	हुमायूँ खोये हुए राज्य को फिर से हासिल करता है
1556–1605	अकबर का शासन काल
1605–27	जहाँगीर का शासन काल
1628–58	शाहजहाँ का शासन काल
1658–1707	औरंगज़ेब का शासन काल
1739	नादिरशाह भारत पर आक्रमण करता है और दिल्ली को लूटता है
1761	अहमद शाह अब्दाली पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों को हराता है
1765	बंगाल के दीवानी अधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप दिये जाते हैं
1857	अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र को अंग्रेज़ गद्दी से हटा देते हैं और देश निकाला देकर रंगून (आज का यांगोन, म्यांमार में) भेज देते हैं।

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. कृषि इतिहास लिखने के लिए *आइन* को स्रोत के रूप में इस्तेमाल करने में कौन सी समस्याएँ हैं? इतिहासकार इन समस्याओं से कैसे निपटते हैं?
2. सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में कृषि उत्पादन को किस हद तक महज़ गुज़ारे के लिए खेती कह सकते हैं? अपने उत्तर के कारण स्पष्ट कीजिए।
3. कृषि उत्पादन में महिलाओं की भूमिका का विवरण दीजिए।
4. विचाराधीन काल में मौद्रिक कारोबार की अहमियत की विवेचना उदाहरण देकर कीजिए।
5. उन सूबतों की जाँच कीजिए जो ये सुझाते हैं कि मुग़ल राजकोषीय व्यवस्था के लिए भू-राजस्व बहुत महत्त्वपूर्ण था।

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. आपके मुताबिक कृषि समाज में सामाजिक व आर्थिक संबंधों को प्रभावित करने में जाति किस हद तक एक कारक थी?
7. सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में जंगल वासियों की ज़िंदगी किस तरह बदल गई?
8. मुग़ल भारत में ज़मींदारों की भूमिका की जाँच कीजिए।
9. पंचायत और गाँव का मुखिया किस तरह से ग्रामीण समाज का नियमन करते थे? विवेचना कीजिए।

चित्र 8.15
सुनारों को दर्शाते हुए सत्रहवीं शताब्दी का चित्र

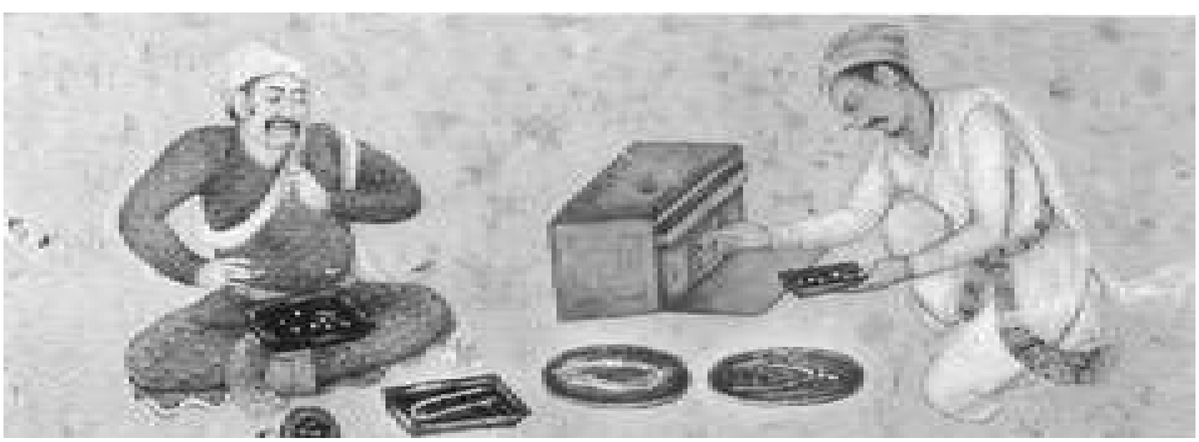

मानचित्र कार्य

10. विश्व के बहिर्रेखा वाले नक्शे पर उन इलाकों को दिखाएँ जिनका मुग़ल साम्राज्य के साथ आर्थिक संपर्क था। इन इलाकों के साथ यातायात-मार्गों को भी दिखाएँ।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. पड़ोस के एक गाँव का दौरा कीजिए। पता कीजिए कि वहाँ कितने लोग रहते हैं, कौन सी फ़सलें उगाई जाती हैं, कौन से जानवर पाले जाते हैं, कौन से दस्तकार समूह रहते हैं, महिलाएँ ज़मीन की मालिक हैं या नहीं, और वहाँ की पंचायत किस तरह काम करती है। जो आपने सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के बारे में सीखा है उससे इस सूचना की तुलना करते हुए, समानताएँ नोट कीजिए। परिवर्तन और निरंतरता दोनों की व्याख्या कीजिए।

12. *आइन* का एक छोटा सा अंश चुन लीजिए (10 से 12 पृष्ठ, दी गई वेबसाइट पर उपलब्ध)। इसे ध्यान से पढ़िए और इस बात का ब्योरा दीजिए कि इसका इस्तेमाल एक इतिहासकार किस तरह से कर सकता है?

चित्र 8.16
मिठाई बेचती हुई महिला

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

सुमित गुहा, 1999
एनवायरनमेंट एंड एथिनीसिटी इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

इरफान हबीब, 1999
द अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इंडिया 1556-1707 (सेकंड एडिशन), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

डब्ल्यू.एच. मोरलेंड, 1983 (पुनर्मुद्रण)
इंडिया एट द डेथ ऑफ अकबर: एन इकोनॉमिक स्टडी
ओरियंटल, न्यू दिल्ली

तपन रायचौधरी एंड इरफान हबीब (संपा.), 2004, द *कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वोल्यूम 1,* ओरियंट लोंगमैन, न्यू दिल्ली

डीटमर रोथरमंड, 1993
एन इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया-फ्रॉम प्री-कोलोनियल टाइम्स टू 1991, राउटलेज, लंदन

संजय सुब्रह्मण्यम (संपा.), 1994
मनी एंड दि मार्केट इन इंडिया
1100□1700
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
http://persian.packhum.orgpersianindex. jsp?serv=pf&file=00702053&ct=0

विषय
नौ

शासक और इतिवृत्तः मुग़ल दरबार (लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ)

मुग़ल साम्राज्य के शासक स्वयं को एक विशाल और विजातीय जनता पर शासन के लिए, नियुक्त मानते थे। हालाँकि असलियत में राजनीतिक परिस्थितियाँ इस भव्य दृष्टि को सीमाबद्ध कर देती थीं फिर भी ऐसी दृष्टि सदैव महत्त्वपूर्ण रही। इस दृष्टि के प्रचार-प्रसार का एक तरीका राजवंशीय इतिहास लिखना-लिखवाना था। मुग़ल राजाओं ने दरबारी इतिहासकारों को विवरणों के लेखन का कार्य सौंपा। इन विवरणों में बादशाह के समय की घटनाओं का लेखा-जोखा दिया गया। इसके अतिरिक्त उनके लेखकों ने शासकों को अपने क्षेत्र के शासन में मदद के लिए उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों से ढेरों जानकारियाँ इकट्ठी कीं।

चित्र 9.1
बाबर को राजवंशीय मुकुट सौंपता तैमूर, गोवर्धन द्वारा लगभग 1630 में चित्रित

अंग्रेज़ी में लिखने वाले आधुनिक इतिहासकारों ने मूल-पाठ की इस शैली को क्रॉनिकल्स (इतिवृत्त/इतिहास) नाम दिया। ये इतिवृत्त घटनाओं का अनवरत कालानुक्रमिक विवरण प्रस्तुत करते हैं। मुग़लों का इतिहास लिखने के इच्छुक किसी भी विद्वान के लिए ये इतिवृत्त अपरिहार्य स्रोत हैं। एक ओर तो ये इतिवृत्त मुग़ल राज्य की संस्थाओं के बारे में तथ्यात्मक सूचनाओं का ख़ज़ाना थे, जिन्हें दरबार से घनिष्ठ रूप से जुड़े व्यक्तियों द्वारा काफ़ी मेहनत से एकत्रित एवं वर्गीकृत किया गया था। दूसरी ओर इन मूल-पाठों का उद्देश्य उन आशयों को संप्रेषित करना था जिन्हें मुग़ल शासक अपने क्षेत्र में लागू करना चाहते थे। अतः ये इतिवृत्त हमें इस बात की एक झलक देते हैं कि कैसे शाही विचारधाराएँ रची तथा प्रचारित की जाती थीं। यह अध्याय मुग़ल साम्राज्य के इस समृद्ध और लुभावने आयाम की कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालेगा।

1. मुग़ल शासक और उनका साम्राज्य

मुग़ल नाम मंगोल से व्युत्पन्न हुआ है। यद्यपि आज यह नाम एक साम्राज्य की भव्यता का अहसास कराता है लेकिन राजवंश के शासकों ने स्वयं के लिए यह नाम नहीं चुना था। उन्होंने अपने को तैमूरी कहा क्योंकि पितृपक्ष से वे तुर्की शासक तिमूर के वंशज थे। पहला मुग़ल शासक बाबर मातृपक्ष से चंगेज़ ख़ाँ का संबंधी था। वह तुर्की बोलता था और उसने मंगोलों का उपहास करते हुए उन्हें बर्बर गिरोह के रूप में उल्लिखित किया है।

सोलहवीं शताब्दी के दौरान यूरोपियों ने परिवार की इस शाखा के भारतीय शासकों का वर्णन करने के लिए मुग़ल शब्द का प्रयोग किया। सोलहवीं शताब्दी से ही इस शब्द का निरंतर प्रयोग होता रहा है। यहाँ तक कि रडयार्ड किपलिंग की *जंगल बुक* के युवा नायक *मोगली* का नाम भी इससे व्युत्पन्न हुआ है।

मुग़लों व स्थानीय सरदारों के बीच राजनीतिक-मैत्रियों के ज़रिए तथा विजयों के ज़रिए भारत के विविध क्षेत्रीय राज्यों को मिलाकर साम्राज्य की रचना की गई। साम्राज्य के संस्थापक ज़हीरुद्दीन बाबर को उसके मध्य एशियाई स्वदेश फरगाना से प्रतिद्वंद्वी उज़बेकों ने भगा दिया था। उसने सबसे पहले स्वयं को काबुल में स्थापित किया और फिर 1526 में अपने दल के सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए क्षेत्रों और संसाधनों की खोज में वह भारतीय उपमहाद्वीप में और आगे की ओर बढ़ा।

इसके उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन हुमायूँ (1530-40, 1555-56) ने साम्राज्य की सीमाओं में विस्तार किया किंतु वह अफ़गान नेता शेरशाह सूर से पराजित हो गया जिसने उसे ईरान के सफ़ावी शासक के दरबार में निर्वासित होने को बाध्य कर दिया। 1555 में हुमायूँ ने सूरों को पराजित कर दिया किंतु एक वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

कई लोग जलालुद्दीन अकबर (1556-1605) को मुग़ल बादशाहों में महानतम मानते हैं क्योंकि उसने न केवल अपने साम्राज्य का विस्तार ही किया बल्कि इसे अपने समय का विशालतम, दृढ़तम और सबसे समृद्ध राज्य बनाकर सुदृढ़ भी किया। अकबर हिंदुकुश पर्वत तक अपने साम्राज्य की सीमाओं के विस्तार में सफल हुआ और उसने ईरान के सफ़ावियों और तूरान (मध्य एशिया) के उज़बेकों की विस्तारवादी योजनाओं पर लगाम लगाए रखी। अकबर के बाद जहाँगीर (1605-27), शाहजहाँ (1628-58) और औरंगज़ेब (1658-1707) के रूप में भिन्न-भिन्न व्यक्तित्वों वाले तीन बहुत योग्य उत्तराधिकारी हुए। इनके अधीन क्षेत्रीय विस्तार जारी रहा यद्यपि इसकी गति काफ़ी धीमी रही। तीनों शासकों ने शासन के विविध यंत्रों को बनाए रखा और उन्हें सुदृढ़ किया।

चित्र 9.2
हुमायूँ की पत्नी नादिरा का, राजस्थान के रेगिस्तान को पार करते दिखाता हुआ, अठारहवीं शताब्दी का चित्रण

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान शाही संस्थाओं के ढाँचे का निर्माण हुआ। इनके अंतर्गत प्रशासन और कराधान के प्रभावशाली तरीके शामिल थे। मुग़ल शक्ति का सुस्पष्ट केंद्र दरबार था। यहाँ राजनीतिक संबंध गढ़े जाते थे, साथ ही श्रेणियाँ और हैसियतें परिभाषित की जाती थीं। मुग़लों द्वारा शुरू की गई राजनीतिक व्यवस्था सैन्य शक्ति और उपमहाद्वीप की भिन्न-भिन्न परंपराओं को समायोजित करने की चेतन नीति के संयोजन पर आधारित थी।

1707 के बाद औरंगज़ेब की मृत्योपरांत राजवंश की शक्ति घट गई। दिल्ली, आगरा अथवा लाहौर जैसे भिन्न राजधानी नगरों से नियंत्रित एक विशाल साम्राज्य तंत्र की जगह क्षेत्रीय शक्तियों ने अधिक स्वायत्तता अर्जित कर ली। फिर भी सांकेतिक रूप में ही सही पर मुग़ल शासक की प्रतिष्ठा ने अभी अपनी आभा नहीं खोई थी। 1857 में इस वंश के अंतिम वंशज बहादुरशाह ज़फर द्वितीय को अंग्रेज़ों ने उखाड़ फेंका।

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाने की कोशिश कीजिए कि आप जिस राज्य में रहते हैं क्या वह मुग़ल साम्राज्य का भाग था? क्या साम्राज्य स्थापित होने के परिणामस्वरूप उस क्षेत्र में किसी तरह के परिवर्तन हुए थे? अगर आपका राज्य इस साम्राज्य का हिस्सा नहीं था तो समकालीन क्षेत्रीय शासकों, उनके उद्‌भव और उनकी नीतियों के बारे में और जानकारी प्राप्त कीजिए। वे किस प्रकार के विवरण का लेखा-जोखा रखते थे?

2. इतिवृत्तों की रचना

मुग़ल बादशाहों द्वारा तैयार करवाए गए इतिवृत्त साम्राज्य और उसके दरबार के अध्ययन के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। ये इतिवृत्त इस साम्राज्य के अंतर्गत आने वाले सभी लोगों के सामने एक प्रबुद्ध राज्य के दर्शन की प्रायोजना के उद्देश्य से लिखे गए थे। इसी तरह इनका उद्देश्य उन लोगों को, जिन्होंने मुग़ल शासन का विरोध किया था, यह बताना भी था कि उनके सारे विरोधों का असफल होना नियत है। शासक यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहते थे कि भावी पीढ़ियों के लिए उनके शासन का विवरण उपलब्ध रहे।

मुग़ल इतिवृत्तों के लेखक निरपवाद रूप से दरबारी ही रहे। उन्होंने जो इतिहास लिखे उनके केंद्रबिंदु में थीं शासक पर केंद्रित घटनाएँ, शासक का परिवार, दरबार व अभिजात, युद्ध और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ। अकबर, शाहजहाँ और आलमगीर (मुग़ल शासक औरंगज़ेब की एक पदवी) की कहानियों पर आधारित इतिवृत्तों के शीर्षक *अकबरनामा, शाहजहाँनामा, आलमगीरनामा* यह संकेत करते हैं कि इनके लेखकों की निगाह में साम्राज्य व दरबार का इतिहास और बादशाह का इतिहास एक ही था।

2.1 तुर्की से फ़ारसी की ओर

मुग़ल दरबारी इतिहास फ़ारसी भाषा में लिखे गए थे। दिल्ली के सुल्तानों के काल में उत्तर भारतीय भाषाओं विशेषकर हिंदवी व इसकी क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ फ़ारसी, दरबार और साहित्यिक रचनाओं की भाषा के रूप में, खूब पुष्पित-पल्लवित हुई। चूँकि मुग़ल चग़ताई मूल के थे

चग़ताई तुर्क स्वयं को चंगेज़ खाँ के सबसे बड़े पुत्र का वंशज मानते थे।

अत: तुर्की उनकी मातृभाषा थी। इनके पहले शासक बाबर ने कविताएँ और अपने संस्मरण इसी भाषा में लिखे थे।

अकबर ने सोच-समझकर फ़ारसी को दरबार की मुख्य भाषा बनाया। संभवतया ईरान के साथ सांस्कृतिक और बौद्धिक संपर्कों के साथ-साथ मुग़ल दरबार में पद पाने को इच्छुक ईरानी और मध्य एशियाई प्रवासियों ने बादशाह को इस भाषा को अपनाए जाने के लिए प्रेरित किया होगा। फ़ारसी को दरबार की भाषा का ऊँचा स्थान दिया गया तथा उन लोगों को शक्ति व प्रतिष्ठा प्रदान की गई जिनकी इस भाषा पर अच्छी पकड़ थी। राजा, शाही परिवार के लोग और दरबार के विशिष्ट सदस्य यह भाषा बोलते थे। कुछ और आगे यह सभी स्तरों के प्रशासन की भाषा बन गई जिससे लेखाकारों, लिपिकों तथा अन्य अधिकारियों ने भी इसे सीख लिया।

जहाँ-जहाँ फ़ारसी प्रत्यक्ष प्रयोग में नहीं थी, वहाँ भी राजस्थानी, मराठी और यहाँ तक कि तमिल में शासकीय लेखों की भाषा को इसकी शब्दावली और मुहावरों ने व्यापक रूप से प्रभावित किया था। चूँकि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान फ़ारसी का प्रयोग करने वाले लोग उपमहाद्वीप के कई अलग-अलग क्षेत्रों से आए थे और वे अन्य भारतीय भाषाएँ भी बोलते थे अत: स्थानीय मुहावरों को समाविष्ट करने से फ़ारसी का भी भारतीयकरण हो गया था। फ़ारसी के हिंदवी के साथ पारस्परिक संपर्क से उर्दू के रूप में एक नयी भाषा निकल कर आई।

अकबरनामा जैसे मुग़ल इतिहास फ़ारसी में लिखे गए थे जबकि अन्य जैसे बाबर के संस्मरणों का *बाबरनामा* के नाम से तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद किया गया था। मुग़ल बादशाहों ने *महाभारत* और *रामायण* जैसे संस्कृत ग्रंथों को फ़ारसी में अनुवादित किए जाने का आदेश दिया। महाभारत का अनुवाद *रज़्मनामा* (युद्धों की पुस्तक) के रूप में हुआ।

2.2 पांडुलिपियों की रचना

मुग़ल भारत की सभी पुस्तकें पांडुलिपियों के रूप में थीं अर्थात् वे हाथ से लिखी होती थीं। पांडुलिपि रचना का मुख्य केंद्र शाही किताबख़ाना था। हालाँकि किताबख़ाना शब्द पुस्तकालय के रूप में अनुवादित किया जा सकता है, यह दरअसल एक लिपिघर था अर्थात ऐसी जगह जहाँ बादशाह की पांडुलिपियों का संग्रह रखा जाता तथा नयी पांडुलिपियों की रचना की जाती थी।

पांडुलिपियों की रचना में विविध प्रकार के कार्य करने वाले बहुत लोग शामिल होते थे। कागज़ बनाने वालों की पांडुलिपि के पन्ने तैयार करने, सुलेखकों की पाठ की नकल तैयार करने, कोफ़्तगरों की पृष्ठों को चमकाने के लिए, चित्रकारों की पाठ से दृश्यों को चित्रित करने के लिए और जिल्दसाज़ों की प्रत्येक पन्ने को इकट्ठा कर उसे अलंकृत आवरण

लिखित शब्द की उड़ान

अबुल फ़ज़्ल के शब्दों में :

लिखित शब्द विगत युगों की बुद्धिमत्ता को मूर्त रूप दे सकता है और इस तरह वह बौद्धिक प्रगति का साधन बन सकता है। उच्चारित शब्द उनके दिलो-दिमाग में जाता है जो उसे सुनने के लिए उपस्थित होता है। लिखित शब्द न केवल पास रहने वाले लोगों बल्कि दूर स्थित लोगों को भी समझदारी सिखाता है। अगर लिखित शब्द न हो तो उच्चारित शब्द तो बहुत जल्दी ही मर जाएगा और हमारे पास उन लोगों की कोई निशानी नहीं रह जाएगी जो दिवंगत हो चुके हैं। सामान्य समझ के लोग तो अक्षरों को एक गहरी आकृति मात्र मानते हैं पर गहराई से देखने वाले लोगों को इनमें एक प्रज्ञा दीप (चिराग-ए-शिनासाई) नज़र आता है। अपने में हज़ारों किरणों को लिए होने के बावजूद लिखित शब्द काला दिखता है अथवा इस ढंग से कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा प्रकाश है जिस पर एक तिल है जो इसे बुरी नज़र से बचाता है। खत या पत्र समझदारी की तसवीर है; विचारों की दुनिया से निकाला हुआ ख़ाका है; दिन को लाने वाली गहरी रोशनी है; ज्ञान से भरा हुआ घना बादल है। पत्र मौन होते हैं फिर भी वे बोलते हैं; स्थिर होते हैं फिर भी वे सफ़र करते हैं; पन्ने पर फैले हुए, फिर भी ऊपर की ओर उड़ान भरते हैं।

में बैठाने के लिए आवश्यकता होती थी। तैयार पांडुलिपि को एक बहुमूल्य वस्तु, बौद्धिक संपदा और सौंदर्य के कार्य के रूप में देखा जाता था। इस तरह के सौंदर्य को अस्तित्व में लाकर इन पांडुलिपियों के संरक्षक मुग़ल बादशाह अपनी शक्ति को दर्शा रहे थे।

इसी तरह इन पांडुलिपियों की वास्तविक रचना में शामिल कुछ लोगों को भी पदवियों और पुरस्कारों के रूप में पहचान मिली। इनमें सुलेखकों और चित्रकारों को तो उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा मिली जबकि अन्य, जैसे कागज़ बनाने वाले अथवा जिल्दसाज़ गुमनाम कारीगर ही रह गए।

सुलेखन अर्थात् हाथ से लिखने की कला अत्यंत महत्त्वपूर्ण कौशल मानी जाती थी। इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न शैलियों में होता था। *नस्तलिक* अकबर की पसंदीदा शैली थी। यह एक ऐसी तरल शैली थी जिसे लंबे सपाट प्रवाही ढंग से लिखा जाता था। इसे 5 से 10 मिलीमीटर की नोक वाले छँटे हुए सरकंडे, जिसे कलम कहा जाता है, के टुकड़े से स्याही में डुबोकर लिखा जाता है। सामान्यतया कलम की नोक में बीच में छोटा सा चीरा लगा दिया जाता था ताकि वह स्याही आसानी से सोख ले।

➲ चर्चा कीजिए...

आज तैयार होने वाली पुस्तकें किन मायनों में मुग़ल इतिवृत्तों की रचना के तरीकों से भिन्न अथवा समान हैं?

3. रंगीन चित्र

जैसा कि हमने पिछले अनुभाग में पढ़ा, मुग़ल पांडुलिपियों की रचना में चित्रकार भी शामिल थे। एक मुग़ल बादशाह के शासन की घटनाओं का विवरण देने वाले इतिहासों में लिखित पाठ के साथ ही उन घटनाओं को चित्रों के माध्यम से दृश्य रूप में भी वर्णित किया जाता था। जब किसी पुस्तक में घटनाओं अथवा विषयों को दृश्य रूप में व्यक्त किया जाना होता था तो सुलेखक उसके आसपास के पृष्ठों को खाली छोड़ देते थे। चित्रकार शब्दों में वर्णित विषय को अलग से चित्र रूप में उतारकर वहाँ संलग्न कर देते थे। ये लघुचित्र होते थे जिन्हें पांडुलिपि के पृष्ठों पर आसानी से लगाया और देखा जा सकता था।

चित्रों को न केवल किसी पुस्तक के सौंदर्य को बढ़ावा देने वाला बल्कि उन्हें तो, लिखित माध्यम से राजा और राजा की शक्ति के विषय में जो बात कही न जा सकी हों, ऐसे विचारों के संप्रेषण का भी एक सशक्त माध्यम माना जाता था। इतिहासकार अबुल फज़्ल ने चित्रकारी का एक 'जादुई कला' के रूप में वर्णन किया है। उसकी राय में यह कला किसी निर्जीव वस्तु को भी इस रूप में प्रस्तुत कर सकती है कि जैसे उसमें जीवन हो।

चित्र 9.3

नस्तलिक़ शैली में लिखा हुआ एक पन्ना, जिसे अकबर के दरबार के सबसे अच्छे सुलेखकों में से एक काश्मीर के मुहम्मद हुसैन (लगभग 1575–1605) द्वारा तैयार किया गया था। इसके अक्षरों के विशुद्ध समानुपातिक घुमाव की कदरदानी में इसको 'ज़रीन क़लम' (सोने की क़लम) के खिताब से नवाज़ा गया। सुलेखक ने पृष्ठ के निचले भाग पर अपने हस्ताक्षर किए हैं। इस पृष्ठ का लगभग एक चौथाई हिस्सा इसी में प्रयुक्त हो गया है।

बादशाह, उसके दरबार तथा उसमें हिस्सा लेने वाले लोगों का चित्रण करने वाले चित्रों की रचना को लेकर शासकों और मुसलमान रूढ़िवादी वर्ग के प्रतिनिधियों अर्थात उलमा के बीच निरंतर तनाव बना रहा। उलमा ने कुरान के साथ-साथ हदीस, जिसमें पैगम्बर मुहम्मद के जीवन से एक ऐसा ही प्रसंग वर्णित है, में प्रतिष्ठापित मानव रूपों के चित्रण पर इस्लामी प्रतिबंध का आह्वान किया। इस प्रसंग में पैगम्बर साहब को प्राकृतिक तरीके से जीवित रूपों के चित्रण की मनाही करते हुए उल्लिखित किया गया है क्योंकि ऐसा करने से यह लगता था कि कलाकार रचना की शक्ति को अपने हाथ में लेने की कोशिश कर रहा है। यह एक ऐसा कार्य था जो केवल ईश्वर का ही था।

चित्र 9.4
एक मुग़ल किताबखाना

➲ इस लघुचित्र में चित्रित मुग़ल पांडुलिपि की रचना में संलग्न अलग-अलग कार्यों की पहचान कीजिए।

स्रोत 1

तसवीर की प्रशंसा में

अबुल फज़्ल चित्रकारी को बहुत सम्मान देता था :

किसी भी चीज़ का उसके जैसा ही रेखांकन बनाना तसवीर कहलाता है। अपनी युवावस्था के एकदम शुरुआती दिनों से ही महामहिम ने इस कला में अपनी अभिरुचि व्यक्त की है। वे इसे अध्ययन और मनोरंजन दोनों का ही साधन मानते हुए इस कला को हर संभव प्रोत्साहन देते हैं। चित्रकारों की एक बड़ी संख्या इस कार्य में लगाई गई है। हर हफ़्ते शाही कार्यशाला के अनेक निरीक्षक और लिपिक बादशाह के सामने प्रत्येक कलाकार का कार्य प्रस्तुत करते हैं और महामहिम प्रदर्शित उत्कृष्टता के आधार पर ईनाम देते तथा कलाकारों के मासिक वेतन में वृद्धि करते हैं... अब सर्वाधिक उत्कृष्ट चित्रकार मिलने लगे हैं और बिहज़ाद जैसे चित्रकारों की अत्युत्तम कलाकृतियों को तो उन यूरोपीय चित्रकारों के उत्कृष्ट कार्यों के समकक्ष ही रखा जा सकता है जिन्होंने विश्व में व्यापक ख्याति अर्जित कर ली है। ब्योरे की सूक्ष्मता, परिपूर्णता और प्रस्तुतीकरण की निर्भीकता जो अब चित्रों में दिखाई पड़ती है, वह अतुलनीय है। यहाँ तक कि निर्जीव वस्तुएँ भी प्राणवान प्रतीत होती हैं। सौ से अधिक चित्रकार इस कला के प्रसिद्ध कलाकार हो गए हैं। हिंदू कलाकारों के लिए यह बात ख़ासतौर पर सही है। उनके चित्र वस्तुओं की हमारी परिकल्पना से कहीं परे हैं। वस्तुत: पूरे विश्व में कुछ लोग ही उनके समान पाए जा सकते हैं।

➲ अबुल फज़्ल चित्रकला को महत्त्वपूर्ण क्यों मानता है? वह इस कला को वैध कैसे ठहराता है?

किंतु समय के साथ *शरिया* की व्याख्याओं में भी बदलाव आया। विभिन्न सामाजिक समूहों ने इस्लामी परंपरा के ढाँचे की अलग-अलग तरीकों से व्याख्या की। प्रायः प्रत्येक समूह ने इस परंपरा की ऐसी व्याख्या प्रतिपादित की जो उनकी राजनीतिक आवश्यकताओं से सबसे ज़्यादा मेल खाती थी। जिन शताब्दियों के दौरान साम्राज्य निर्माण हो रहा था उस समय कई एशियाई क्षेत्रों के शासकों ने नियमित रूप से कलाकारों को उनके चित्र तथा उनके राज्य के जीवन के दृश्य चित्रित करने के लिए नियुक्त किया। उदाहरण के लिए, ईरान के सफ़ावी राजाओं ने दरबार में स्थापित कार्यशालाओं में प्रशिक्षित उत्कृष्ट कलाकारों को संरक्षण प्रदान किया। बिहज़ाद जैसे चित्रकारों के नाम ने सफ़ावी दरबार की सांस्कृतिक प्रसिद्धि को चारों ओर फैलाने में बहुत योगदान दिया।

ईरान से भी कलाकार मुग़लकालीन भारत आने में सफल हुए। कुछ को मुग़ल दरबार में लाया गया जैसे मीर सैय्यद अली और अब्दुस समद को बादशाह हुमायूँ को दिल्ली तक साथ देने के लिए कहा गया। अन्य ने संरक्षण और प्रतिष्ठा के अवसरों की तलाश में प्रवास किया। बादशाह और रूढ़िवादी मुसलमान विचाराधारा के प्रवक्ताओं के बीच जीवधारियों के दृश्य निरूपण पर मुग़ल दरबार में तनाव बना हुआ था। अकबर का दरबारी इतिहासकार अबुल फज़्ल बादशाह को यह कहते हुए उद्धृत करता है, "कई लोग ऐसे हैं जो चित्रकला से घृणा करते हैं पर मैं ऐसे व्यक्तियों को नापसंद करता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि कलाकार के पास खुदा को पहचानने का बेजोड़ तरीका है। चूँकि कहीं न कहीं उसे यह महसूस होता है कि खुदा की रचना को वह जीवन नहीं दे सकता..."

➲ चर्चा कीजिए...

चित्रकार के साहित्यिक और कलात्मक रचना प्रदर्शन (चित्र 9.4) की तुलना अबुल फ़ज़्ल की साहित्यिक और कलात्मक रचना-शक्ति से कीजिए (स्रोत 1)।

4. *अकबरनामा* और *बादशाहनामा*

महत्त्वपूर्ण चित्रित मुग़ल इतिहासों में सर्वाधिक ज्ञात *अकबरनामा* और *बादशाहनामा* (राजा का इतिहास) है। प्रत्येक पांडुलिपि में औसतन 150 पूरे अथवा दोहरे पृष्ठों पर लड़ाई, घेराबंदी, शिकार, इमारत-निर्माण, दरबारी दृश्य आदि के चित्र हैं।

अकबरनामा के लेखक अबुल फज़्ल का पालन-पोषण मुग़ल राजधानी आगरा में हुआ। वह अरबी, फारसी, यूनानी दर्शन और सूफ़ीवाद में पर्याप्त निष्णात था। इससे भी अधिक वह एक प्रभावशाली विवादी तथा स्वतंत्र चिंतक था जिसने लगातार दकियानूसी उलमा के विचारों का विरोध किया। इन गुणों से अकबर बहुत प्रभावित हुआ। उसने अबुल फज़्ल को अपने सलाहकार और अपनी नीतियों के प्रवक्ता के रूप में बहुत उपर्युक्त पाया। बादशाह का एक मुख्य उद्देश्य राज्य को धार्मिक रूढ़िवादियों के नियंत्रण से मुक्त करना था। दरबारी इतिहासकार के रूप में अबुल फज़्ल ने अकबर के शासन से जुड़े विचारों को न केवल आकार दिया बल्कि उनको स्पष्ट रूप से व्यक्त भी किया।

1589 में शुरू कर अबुल फज़्ल ने *अकबरनामा* पर तेरह वर्षों तक कार्य किया और इस दौरान कई बार उसने प्रारूप में सुधार किए। यह इतिहास घटनाओं के वास्तविक विवरणों (*वाक़ई*), शासकीय दस्तावेज़ों तथा जानकार व्यक्तियों के मौखिक प्रमाणों जैसे विभिन्न प्रकार के साक्ष्यों पर आधारित है।

अकबरनामा को तीन जिल्दों में विभाजित किया गया है जिनमें से प्रथम दो इतिहास हैं। तीसरी जिल्द *आइन-ए-अकबरी* है। पहली जिल्द में आदम से लेकर अकबर के जीवन के एक खगोलीय कालचक्र तक (30 वर्ष) का मानव-जाति का इतिहास है। दूसरी ज़िल्द अकबर के 46वें शासन वर्ष (1601) पर ख़त्म होती है। अगले ही वर्ष अबुल फ़ज़्ल राजकुमार सलीम द्वारा तैयार किए गए षड्यंत्र का शिकार हुआ और सलीम के सहापराधी बीर सिंह बुंदेला द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।

अकबरनामा का लेखन राजनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण घटनाओं के समय के साथ विवरण देने के पारंपरिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया गया। इसके साथ ही तिथियों और समय के साथ होने वाले बदलावों के उल्लेख के बिना ही अकबर के साम्राज्य के भौगोलिक, सामाजिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक सभी पक्षों का विवरण प्रस्तुत करने के अभिनव तरीके से भी इसका लेखन हुआ। *आइन-ए-अकबरी* में मुग़ल साम्राज्य को हिंदुओं, जैनों, बौद्धों और मुसलमानों की भिन्न-भिन्न आबादी वाले तथा एक मिश्रित संस्कृति वाले साम्राज्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अबुल फ़ज़्ल की भाषा बहुत अलंकृत थी और चूँकि इस भाषा के पाठों को ऊँची आवाज़ में पढ़ा जाता था अतः इस भाषा में लय तथा कथन-शैली को बहुत महत्त्व दिया जाता था। इस भारतीय-फ़ारसी शैली को दरबार में संरक्षण मिला।

अबुल फज़्ल का एक शिष्य अब्दुल हमीद लाहौरी *बादशाहनामा* के लेखक के रूप में जाना जाता है। इसकी योग्यताओं के बारे में सुनकर बादशाह शाहजहाँ ने उसे *अकबरनामा* के नमूने पर अपने शासन का इतिहास लिखने के लिए नियुक्त किया। *बादशाहनामा* भी सरकारी इतिहास है। इसकी तीन जिल्दें (*दफ़्तर*) हैं और प्रत्येक जिल्द दस चंद्र वर्षों का ब्योरा देती है। लाहौरी ने बादशाह के शासन (1627-47) के पहले दो दशकों पर पहला व दूसरा दफ़्तर लिखा। इन जिल्दों में बाद में शाहजहाँ के वज़ीर सादुल्लाह ख़ाँ ने सुधार किया। बुढ़ापे की अशक्तताओं की वजह से लाहौरी तीसरे दशक के बारे में न लिख सका जिसे बाद में इतिहासकार वारिस ने लिखा।

औपनिवेशिक काल के दौरान अंग्रेज़ प्रशासकों ने अपने साम्राज्य के लोगों और संस्कृतियों (जिन पर वे लंबा शासन करना चाहते थे), को

ऐतिहासिक विवरण समयवार विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करता है जबकि *एककालिक* विवरण एक ख़ास समय की स्थिति का वर्णन करता है।

बादशाहनामा का सफ़र

मुग़लों के अधीन बहुमूल्य पांडुलिपियों की भेंट एक स्थापित राजनयिक प्रथा थी। इसी का अनुकरण करते हुए अवध नवाब ने 1799 में जार्ज तृतीय को सचित्र *बादशाहनामा* भेंट में दिया। तभी से यह विंडिसर कासल के अंग्रेज़ी शाही संग्रहों में सुरक्षित है।

1994 में हुए संरक्षण कार्य में बँधी हुई पांडुलिपि को अलग-अलग करना आवश्यक हो गया। इसी की वजह से चित्रों को प्रदर्शित करना संभव हुआ और 1997 में पहली बार *बादशाहनामा* के चित्र नयी दिल्ली, लंदन और वाशिंगटन में हुई प्रदर्शनियों में दिखाए गए।

बेहतर ढंग से समझने के लिए भारतीय इतिहास का अध्ययन तथा उपमहाद्वीप के बारे में ज्ञान का अभिलेखागार स्थापित करना शुरू किया। 1784 में सर विलियम जोन्स द्वारा स्थापित एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल ने कई भारतीय पांडुलिपियों के संपादन, प्रकाशन और अनुवाद का ज़िम्मा अपने ऊपर ले लिया।

अकबरनामा और *बादशाहनामा* के संपादित पाठान्तर सबसे पहले एशियाटिक सोसाइटी द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित किए गए। वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद बीसवीं शताब्दी के आरंभ में हेनरी बेवरिज द्वारा *अकबरनामा* का अंग्रेज़ी अनुवाद किया गया। *बादशाहनामा* के केवल कुछ ही अंशों का अभी तक अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ है, इसका मूल पाठ अपने संपूर्ण रूप में आज भी अनुवाद किए जाने की प्रतीक्षा में है।

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाने की कोशिश कीजिए कि क्या आपके कस्बे अथवा गाँव में पांडुलिपियों को चित्रित करने की परंपरा रही है? इन पांडुलिपियों को कौन तैयार करता था? इन पांडुलिपियों में किन विषयों पर विचार किया गया था? इन्हें कैसे सुरक्षित रखा जाता था?

5. आदर्श राज्य

5.1 एक दैवीय प्रकाश

दरबारी इतिहासकारों ने कई साक्ष्यों का हवाला देते हुए यह दिखाया कि मुग़ल राजाओं को सीधे ईश्वर से शक्ति मिली थी। उनके द्वारा वर्णित दंतकथाओं में से एक मंगोल रानी अलानकुआ की कहानी है जो अपने शिविर में आराम करते समय सूर्य की एक किरण द्वारा गर्भवती हुई थी। उसके द्वारा जन्म लेने वाली संतान पर इस दैवीय प्रकाश का प्रभाव था। इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह प्रकाश हस्तांतरित होता रहा।

ईश्वर (*फर-ए-इज़ादी*) से निःसृत प्रकाश को ग्रहण करने वाली चीज़ों के पदानुक्रम में मुग़ल राजत्व को अबुल फज़्ल ने सबसे ऊँचे स्थान पर रखा। इस विषय में वह प्रसिद्ध ईरानी सूफ़ी शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी (1191 में मृत) के विचारों से प्रभावित था जिसने सर्वप्रथम इस प्रकार का विचार प्रस्तुत किया था। इस विचार के अनुसार एक पदानुक्रम के तहत यह दैवीय प्रकाश राजा में संप्रेषित होता था जिसके बाद राजा अपनी प्रजा के लिए आध्यात्मिक मार्गदर्शन का स्रोत बन जाता था।

इतिवृत्तों के विवरणों का साथ देने वाले चित्रों ने इन विचारों को इस तरीके से संप्रेषित किया कि उन्होंने देखने वालों के मन-मस्तिष्क पर

प्रकाश के विचार का संप्रेषण

सुहरावर्दी दर्शन के मूल में प्लेटो की *रिपब्लिक* है जहाँ ईश्वर को सूर्य के प्रतीक द्वारा निरूपित किया गया है। सुहरावर्दी की रचनाओं को इस्लामी दुनिया में व्यापक रूप से पढ़ा जाता था। शेख मुबारक ने इसका अध्ययन किया था। इसके बारे में उसने अपने पुत्रों फैज़ी और अबुल फज़्ल को बताया जो उसके संरक्षण में प्रशिक्षित हुए थे।

चित्र 9.5
अबुल हसन द्वारा बनाए गए इस चित्र में जहाँगीर को देदीप्यमान कपड़ों और आभूषणों में अपने पिता अकबर के चित्र को हाथ में लिए दिखाया गया है।

अकबर की पोशाक सफ़ेद है। सफ़ेद रंग को सूफ़ी परंपराओं में प्रबुद्ध जीव से जोड़ा गया है। वह एक गोलक अर्पित कर रहा है जो राजवंशीय सत्ता का प्रतीक है। मुग़ल साम्राज्य में ऐसा कोई कानून नहीं था जो निर्धारित करे कि बादशाह के पुत्रों में से कौन सा पुत्र सिंहासन का उत्तराधिकारी होगा। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक राजवंशीय परिवर्तन का निर्णय भ्रातृघातक युद्ध से होने लगा। अकबर के शासन के अंतिम भाग में शहज़ादे सलीम ने अपने पिता के खिलाफ़ विद्रोह कर दिया लेकिन बाद में उसे माफ कर दिया गया।

➲ यह चित्र पिता–पुत्र के बीच के संबंध को कैसे चित्रित करता है? आपको क्यों लगता है कि मुग़ल कलाकारों ने निरंतर बादशाहों को गहरी अथवा फीकी पृष्ठभूमि के साथ चित्रित किया है? इस चित्र में प्रकाश के कौन से स्रोत हैं?

स्थायी प्रभाव डाला। सत्रहवीं शताब्दी से मुग़ल कलाकारों ने बादशाहों को प्रभामंडल के साथ चित्रित करना शुरू किया। ईश्वर के प्रकाश के प्रतीक रूप इन प्रभामंडलों को उन्होंने ईसा और वर्जिन मेरी के यूरोपीय चित्रों में देखा था।

5.2 सुलह–ए–कुल : एकीकरण का एक स्रोत

मुग़ल इतिवृत्त साम्राज्य को हिंदुओं, जैनों, ज़रतुश्तियों और मुसलमानों जैसे अनेक भिन्न–भिन्न नृजातीय और धार्मिक समुदायों को समाविष्ट किए हुए साम्राज्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सभी तरह की शांति और स्थायित्व के स्रोत रूप में बादशाह सभी धार्मिक और नृजातीय समूहों से ऊपर होता था, इनके बीच मध्यस्थता करता था, तथा यह सुनिश्चित करता था कि न्याय और शांति बनी रहे। अबुल फज़्ल सुलह–ए–कुल (पूर्ण शांति) के आदर्श को प्रबुद्ध शासन की आधारशिला बताता है। *सुलह–ए–कुल* में यूँ तो सभी धर्मों और मतों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता थी किंतु उसकी एक शर्त थी कि वे राज्य–सत्ता को क्षति नहीं पहुँचाएँगे अथवा आपस में नहीं लड़ेंगे।

सुलह–ए–कुल का आदर्श राज्य नीतियों के ज़रिए लागू किया गया। मुग़लों के अधीन अभिजात–वर्ग मिश्रित किस्म का था–अर्थात उसमें ईरानी, तूरानी, अफ़गानी, राजपूत, दक्खनी सभी शामिल थे। इन सबको दिए गए पद और पुरस्कार पूरी तरह से राजा के प्रति उनकी सेवा और

निष्ठा पर आधारित थे। इसके अलावा, अकबर ने 1563 में तीर्थयात्रा कर तथा 1564 में जज़िया को समाप्त कर दिया क्योंकि यह दोनों कर धार्मिक पक्षपात पर आधारित थे। साम्राज्य के अधिकारियों को प्रशासन में *सुलह-ए-कुल* के नियम का अनुपालन करने के लिए निर्देश दे दिए गए।

सभी मुग़ल बादशाहों ने उपासना-स्थलों के निर्माण व रख-रखाव के लिए अनुदान दिए। यहाँ तक कि युद्ध के दौरान जब मंदिरों को नष्ट कर दिया जाता था तो बाद में उनकी मरम्मत के लिए अनुदान जारी किए जाते थे। ऐसा हमें शाहजहाँ और औरंगज़ेब के शासन में पता चलता है, हालाँकि औरंगज़ेब के शासनकाल में गैर-मुसलमान प्रजा पर जज़िया फिर से लगा दिया गया।

5.3 सामाजिक अनुबंध के रूप में न्यायपूर्ण प्रभुसत्ता

अबुल फज़्ल ने प्रभुसत्ता को एक सामाजिक अनुबंध के रूप में परिभाषित किया है। वह कहता है कि बादशाह अपनी प्रजा के चार सत्त्वों की रक्षा करता है- जीवन (*जन*), धन (*माल*), सम्मान (*नामस*) और विश्वास (*दीन*) और इसके बदले में वह आज्ञापालन तथा संसाधनों में हिस्से की माँग करता है। केवल न्यायपूर्ण संप्रभु ही शक्ति और दैवीय मार्गदर्शन के साथ इस अनुबंध का सम्मान कर पाते थे।

चित्र 9.6
बादशाहनामा से एक दृश्य
कलाकार पयाग द्वारा लगभग 1640 में चित्रित इस चित्र में जहाँगीर शहज़ादे खुर्रम को पगड़ी में लगाई जाने वाली मणि दे रहा है।

चित्र 9.7
अबुल हसन नामक एक कलाकार द्वारा बनाए गए चित्र में दरिद्रता की आकृति को मारते हुए जहाँगीर। कलाकार ने यहाँ लक्ष्य को गहरे बादल के आवरण में दिखाकर यह बताने की चेष्टा की है कि यह कोई वास्तविक व्यक्ति नहीं बल्कि एक अमूर्त लक्षण को प्रतीक के रूप में दिखाता एक मानवीय रूप है। कला और साहित्य में मानवीकरण के इस ढंग को रूपक-कथा कहा जाता है। न्याय की ज़ंजीर को स्वर्ग से उतरते हुए दिखाया गया है।

जहाँगीर ने अपने संस्मरणों में न्याय की ज़ंजीर को इस प्रकार वर्णित किया है:

> राज्यारोहण के बाद मैंने जो पहला आदेश दिया वह न्याय की जंज़ीर को लगाने का था ताकि न्याय के प्रशासन में संलग्न लोगों से यदि देर हो जाए अथवा वे न्याय चाहने वाले लोगों के विषय में मिथ्याचार का व्यवहार करें तो उत्पीड़ित व्यक्ति इस ज़ंजीर के पास आ सके और इसे हिला सके और उसकी ओर ध्यान आकर्षित हो सके। इस ज़ंजीर को शुद्ध सोने से बनाया गया था। यह 30 गज़ लम्बी थी तथा इसमें 60 घंटियाँ लगी हुई थीं।

➲ इस चित्र के प्रतीकों की पहचान कर उनकी व्याख्या कीजिए और इस चित्र का सार प्रस्तुत कीजिए।

न्याय के विचार के दृश्य रूप में निरूपण हेतु अनेक प्रतीकों की रचना की गई। न्याय के विचार को मुग़ल राजतंत्र में सर्वोत्तम सद्‌गुण माना गया। कलाकारों द्वारा प्रयुक्त सर्वाधिक पसंदीदा प्रतीकों में से एक था एक दूसरे के साथ चिपटकर शांतिपूर्वक बैठे हुए शेर और बकरी (या फिर गाय)। इसका उद्देश्य राज्य को एक ऐसे क्षेत्र के रूप में दिखाना था जहाँ दुर्बल तथा सबल सभी परस्पर सद्‌भाव से रह सकते थे। सचित्र *बादशाहनामा* के दरबारी दृश्यों में ऐसे प्रतीक का अंकन बादशाह के सिंहासन के ठीक नीचे एक आले में हुआ है (चित्र 9.6 देखिए)।

➲ चर्चा कीजिए...
मुग़ल साम्राज्य में न्याय को राजतंत्र का इतना महत्त्वपूर्ण सद्‌गुण क्यों माना जाता था?

6 राजधानियाँ और दरबार

6.1 राजधानी नगर

मुग़ल साम्राज्य का हृदय-स्थल उसका राजधानी नगर था, जहाँ दरबार लगता था। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान मुग़लों की राजधानियाँ बड़ी तेज़ी से स्थानांतरित होने लगीं। हालाँकि बाबर ने लोदियों की राजधानी आगरा पर अधिकार कर लिया था तथापि उसके शासन के चार वर्षों के दौरान राजसी दरबार भिन्न-भिन्न स्थान पर लगाए जाते रहे। 1560 के दशक में अकबर ने आगरा के किले का निर्माण करवाया। इसे आसपास के क्षेत्रों की खदानों से लाए गए लाल बलुआ पत्थर से बनाया गया था।

1570 के दशक में उसने फतेहपुर सीकरी में एक नयी राजधानी बनाने का निर्णय लिया। इस निर्णय का एक कारण यह हो सकता है कि सीकरी अजमेर को जाने वाली सीधी सड़क पर स्थित था, जहाँ शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह उस समय तक एक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल बन चुकी थी। मुग़ल बादशाहों के चिश्ती सिलसिले के सूफ़ियों के साथ घनिष्ठ संबंध बने। अकबर ने सीकरी में जुम्मा मस्जिद के बगल में ही शेख सलीम चिश्ती के लिए सफेद संगमरमर का एक मकबरा बनाने का आदेश दिया। विशाल मेहराबी प्रवेशद्वार (बुलंद दरवाज़ा) के निर्माण का उद्देश्य वहाँ आने वाले लोगों को गुजरात में मुग़ल विजय की याद दिलाना था। 1585 में उत्तर-पश्चिम को और अधिक नियंत्रण में लाने के लिए राजधानी को लाहौर स्थानांतरित कर दिया गया और इस तरह तेरह वर्षों तक अकबर ने इस सीमा पर गहरी चौकसी बनाए रखी।

चित्र 9.8
बुलंद दरवाज़ा, फतहपुर सीकरी

शाहजहाँ ने विवेकपूर्ण राजकोषीय नीतियों को आगे बढ़ाया तथा इमारत निर्माण के अपने शौक को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन इकट्ठा कर लिया। जैसाकि आपने पहले के शासकों के संदर्भ में देखा, राजतंत्रीय संस्कृतियों में इमारत निर्माण-कार्य राजवंशीय सत्ता, धन तथा प्रतिष्ठा का सर्वाधिक स्पष्ट और ठोस प्रतीक था। मुसलमान शासकों के संदर्भ में इसे धर्मनिष्ठा के एक कार्य के रूप में भी देखा जाता था।

1648 में दरबार, सेना व राजसी ख़ानदान आगरा से नयी निर्मित शाही राजधानी शाहजहाँनाबाद चले गए। दिल्ली के प्राचीन रिहायशी नगर में शाहजहाँनाबाद एक नयी और शाही आबादी थी। यहाँ लाल किला,

जामा मस्जिद, चाँदनी चौक के बाज़ार की वृक्ष वीथि और अभिजात-वर्ग के बड़े-बड़े घर थे। शाहजहाँ का यह नया शहर विशाल एवं भव्य राजतंत्र की ज़्यादा औपचारिक कल्पना को व्यक्त करता था।

6.2 मुग़ल दरबार

शासक पर केंद्रित दरबार की भौतिक व्यवस्था ने शासक के अस्तित्व को समाज के हृदय के रूप में प्रदर्शित किया। इसका केंद्रबिंदु इस प्रकार राजसिंहासन अथवा तख़्त था जिसने संप्रभु के कार्यों को भौतिक स्वरूप प्रदान किया था। इसे एक ऐसे स्तंभ के रूप में देखा जाता था जिस पर धरती टिकी हुई थी। सहस्राब्दियों से भारत में राजतंत्र का प्रतीक रही छतरी, शासक की कांति को सूर्य की कांति से पृथक करने वाली मानी जाती थी।

इतिवृत्तों ने मुग़ल संभ्रांत वर्गों के बीच हैसियत को निर्धारित करने वाले नियमों को बड़ी सुस्पष्टता से सामने रखा है। दरबार में किसी की हैसियत इस बात से निर्धारित होती थी कि वह शासक के कितना पास और दूर बैठा है। किसी भी दरबारी को शासक द्वारा दिया गया स्थान बादशाह की नज़र में उसकी महत्ता का प्रतीक था। एक बार जब बादशाह सिंहासन पर बैठ जाता था तो किसी को भी अपनी जगह से कहीं और जाने की अनुमति नहीं थी और न ही कोई अनुमति के बिना दरबार से बाहर जा

स्रोत 2

दरबार-ए-अकबरी

अबुल फ़ज़्ल अकबर के दरबार का बड़ा सजीव विवरण देते हुए कहता है :

> जब भी महामहिम (अकबर) दरबार लगाते हैं तो एक विशाल ढोल पीटा जाता है और साथ-साथ अल्लाह का गुणगान होता है। इस तरह सभी वर्गों के लोगों को सूचना मिल जाती है। महामहिम के पुत्र, पौत्र, दरबारी और वे सभी जिन्हें दरबार में प्रवेश की अनुमति थी, हाज़िर होते हैं और कोर्निश कर अपने स्थान पर खड़े रहते हैं। ख्यातिप्राप्त विद्वज्जन तथा विशिष्ट कौशलों में निपुण व्यक्ति आदर व्यक्त करते हैं; तथा न्याय अधिकारी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। महामहिम अपनी सामान्य अंतर्दृष्टि के आधार पर आदेश देते हैं और सभी मामलों को संतोषजनक ढंग से निपटाते हैं। इस पूरे समय के दौरान विभिन्न देशों से आए तलवारिये व पहलवान अपने को तैयार रखते हैं और महिला तथा पुरुष गायक अपनी बारी की प्रतीक्षा में रहते हैं। चतुर बाज़ीगर और मज़ाकिया कलाबाज़ भी अपने कौशल और दक्षता का प्रदर्शन करने को उत्सुक हैं।

➲ दरबार में होने वाली मुख्य गतिविधियों का वर्णन कीजिए।

कोर्निश औपचारिक अभिवादन का एक ऐसा तरीका था जिसमें दरबारी दाएँ हाथ की तलहथी को ललाट पर रखकर आगे की ओर सिर झुकाते थे। यह इस बात का प्रतीक था कि कोर्निश करने वाला व्यक्ति अपने इंद्रिय और मन के स्थल को हाथ लगाते हुए झुककर विनम्रता के साथ शाही दरबार में अपने को प्रस्तुत कर रहा है।

सकता था। दरबारी समाज में सामाजिक नियंत्रण का व्यवहार दरबार में मान्य संबोधन, शिष्टाचार तथा बोलने के ध्यानपूर्वक निर्धारित किए गए नियमों द्वारा होता था। शिष्टाचार का ज़रा सा भी उल्लंघन होने पर ध्यान दिया जाता था और उस व्यक्ति को तुरंत ही दंडित किया जाता था।

शासक को किए गए अभिवादन के तरीके से पदानुक्रम में उस व्यक्ति की हैसियत का पता चलता था जैसे जिस व्यक्ति के सामने ज़्यादा झुककर अभिवादन किया जाता था, उस व्यक्ति की हैसियत ज़्यादा ऊँची मानी जाती थी। आत्मनिवेदन का उच्चतम रूप *सिजदा* या दंडवत लेटना था। शाहजहाँ के शासनकाल में इन तरीकों के स्थान पर चार *तसलीम* तथा *ज़मींबोसी* (ज़मीन चूमना) के तरीके अपनाए गए।

मुग़ल दरबार में राजनयिक दूतों संबंधी नयाचारों में भी ऐसी ही सुस्पष्टता थी। मुग़ल बादशाह के समक्ष प्रस्तुत होने वाले राजदूत से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अभिवादन के मान्य रूपों में से एक–या तो बहुत झुककर अथवा ज़मीन को चूमकर अथवा फ़ारसी रिवाज के मुताबिक छाती के सामने हाथ बाँधकर–तरीके से अभिवादन करेगा। जेम्स-I के अंग्रेज़ दूत टॉमस रो ने यूरोपीय रिवाज के अनुसार जहाँगीर के सामने केवल झुककर अभिवादन किया और इसके बाद बैठने के लिए कुर्सी का आग्रह कर पुनः दरबार को अचंभित कर दिया।

बादशाह अपने दिन की शुरुआत सूर्योदय के समय कुछ व्यक्तिगत धार्मिक प्रार्थनाओं से करता था और इसके बाद वह पूर्व की ओर मुँह किए एक छोटे छज्जे अर्थात झरोखे में आता था। इसके नीचे लोगों की भीड़ (सैनिक, व्यापारी, शिल्पकार, किसान, बीमार बच्चों के साथ औरतें) बादशाह की एक झलक पाने के लिए इंतज़ार करती थी। अकबर द्वारा शुरू की गई झरोखा दर्शन की प्रथा का उद्देश्य जन विश्वास के रूप में शाही सत्ता की स्वीकृति को और विस्तार देना था।

अभिवादन का *चार तसलीम* तरीका दाएँ हाथ को ज़मीन पर रखने से शुरू होता है। इसमें तलहथी ऊपर की ओर होती है। इसके बाद हाथ को धीरे-धीरे उठाते हुए व्यक्ति खड़ा होता है तथा तलहथी को सिर के ऊपर रखता है। ऐसी तसलीम चार बार की जाती है। तसलीम का शाब्दिक अर्थ आत्मनिवेदन है।

शब-ए-बारात हिजरी कैलेंडर के आठवें महीने अर्थात चौदहवें सावन को पड़ने वाली पूर्णचंद्र रात्रि है। भारतीय उपमहाद्वीप में प्रार्थनाओं और आतिशबाज़ियों के खेल द्वारा इस दिन को मनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस रात मुसलमानों के लिए आगे आने वाले वर्ष का भाग्य निर्धारित होता है और पाप माफ़ कर दिए जाते हैं।

रत्नजड़ित सिंहासन

आगरा महल के सार्वजनिक सभा भवन में रखे शाहजहाँ के रत्नजड़ित सिंहासन (*तख़्त-ए-मुरस्सा*) के बारे में *बादशाहनामा* में लिखा है:

सिंहासन की भव्य संरचना में एक छतरी है जो द्वादशकोणीय स्तंभों पर टिकी हुई है। इसकी ऊँचाई सीढ़ियों से गुंबद तक पाँच क्यूबिट (लगभग 10 फुट) है। अपने राज्यारोहण के समय महामहिम ने यह आदेश दिया कि 86 लाख रुपए के रत्न तथा बहुमूल्य पत्थर और एक लाख तोला सोना जिसकी कीमत चौदह लाख रुपए है, से इसे सजाया जाना चाहिए। सिंहासन की साज-सज्जा में सात वर्ष लग गए। इसकी सजावट में प्रयुक्त हुए बहुमूल्य पत्थरों में रूबी था जिसकी कीमत एक लाख रुपए थी और जिसे शाह अब्बास सफ़ावी ने दिवंगत बादशाह जहाँगीर को भेजा था। इस रूबी पर महान बादशाह तिमूर साहिब-ए किरान, मिर्ज़ा शाहरूख, मिर्ज़ा उलुग बेग और शाह अब्बास के साथ-साथ अकबर, जहाँगीर और स्वयं महामहिम के नाम अंकित थे।

चित्र 9.9
आगरा में विवाह से पूर्व शहज़ादे औरंगज़ेब का सम्मान करते हुए शाहजहाँ। बादशाहनामा में पयाग द्वारा की गई चित्रकारी।

➲ बादशाह की पहचान कीजिए
औरंगज़ेब को एक पीला जामा (ऊपरी वस्त्र) तथा छोटे-छोटे बौरों वाले हरे जैकेट में दिखाया गया है। वह कहाँ है और पिता के प्रति उसकी भाव-भंगिमा से क्या पता चलता है? दरबारियों को कैसे दिखाया गया है? क्या आप बाईं ओर बड़ी पगड़ियों वाली आकृतियों का पता लगा सकते हैं? ये विद्वानों के चित्रण हैं।

झरोखे में एक घंटा बिताने के बाद बादशाह अपनी सरकार के प्राथमिक कार्यों के संचालन हेतु सार्वजनिक सभा भवन (*दीवान-ए आम*) में आता था। वहाँ राज्य के अधिकारी रिपोर्ट प्रस्तुत करते तथा निवेदन करते थे। दो घंटे बाद बादशाह *दीवान-ए-ख़ास* में निजी सभाएँ और गोपनीय मुद्दों पर चर्चा करता था। राज्य के वरिष्ठ मंत्री उसके सामने अपनी याचिकाएँ प्रस्तुत करते थे और कर अधिकारी हिसाब का ब्योरा देते थे। कभी-कभी बादशाह उच्च प्रतिष्ठित कलाकारों के कार्यों अथवा वास्तुकारों (*मिमार*) के द्वारा बनाए गए इमारतों के नक्शों को देखता था।

सिंहासनारोहण की वर्षगाँठ, ईद, शब-ए-बारात तथा होली जैसे कुछ विशिष्ट अवसरों पर दरबार का माहौल जीवंत हो उठता था। सजे हुए डिब्बों में रखी सुगंधित मोमबत्तियाँ और महल की दीवारों पर लटक रहे रंग-बिरंगे बंदनवार आने वालों पर आश्चर्यजनक प्रभाव छोड़ते थे। मुग़ल शासक वर्ष में तीन मुख्य त्यौहार मनाया करते थे : सूर्यवर्ष और चंद्रवर्ष के अनुसार शासक का जन्मदिन और वसंतागमन पर फ़ारसी नववर्ष

चित्र 9.10
जश्न-ए-वज़्न *अथवा तुलादान समारोह में शहज़ादे खुर्रम को बहुमूल्य धातुओं से तौला जाना (जहाँगीर के संस्मरणों से)*

चित्र 9.11 (क) दाराशिकोह का विवाह

चित्र 9.11 (ख)

चित्र 9.11 (ग)

➲ चित्र में आप जो देख रहे हैं उसका वर्णन कीजिए।

शाही परिवारों में विवाहों का आयोजन काफ़ी खर्चीला होता था। 1633 में दाराशिकोह और नादिरा (राजकुमार परवेज़ की पुत्री) के विवाह की व्यवस्था राजकुमारी जहाँआरा और दिवंगत महारानी मुमताज़ महल की प्रमुख नौकरानी सती उन निसाखानुम द्वारा की गई। शादी के उपहारों के प्रदर्शन की व्यवस्था दीवान-ए-आम में की गई थी। बादशाह तथा हरम की स्त्रियाँ दोपहर में इसे देखने के लिए आईं तथा शाम के समय अभिजात यहाँ आए। दुलहन की माँ ने भी इसी तरह उसी विशाल कक्ष में उपहारों को सजाया था। शाहजहाँ इन्हें देखने के लिए वहाँ गया। हिनाबंदी (मेंहदी लगाना) की रस्म दीवान-ए-ख़ास में अदा की गई। दरबार में उपस्थित व्यक्तियों के बीच पान, इलायची तथा मेवे बाँटे गए। विवाह पर कुल 32 लाख रुपए खर्च हुए थे जिसमें 6 लाख रुपए शाही खज़ाने से, 16 लाख रुपए जहाँआरा (मुमताज़ महल द्वारा आरंभ में अलग से रखे गए रुपयों को मिलाते हुए) और शेष दुलहन की माँ द्वारा दिए गए थे। *बादशाहनामा* से लिए गए इन चित्रों में इस अवसर से जुड़ी कुछ गतिविधियों को दिखाया गया है।

'नौरोज़'। जन्मदिन पर शासक को विभिन्न वस्तुओं से तौला जाता था तथा बाद में ये वस्तुएँ दान में बाँट दी जाती थीं।

6.3 पदवियाँ, उपहार और भेंट

राज्याभिषेक के समय अथवा किसी शत्रु पर विजय के बाद मुग़ल बादशाह विशाल पदवियाँ ग्रहण करते थे। उद्घोषकों (*नक़ीब*) द्वारा जब इन गुंजायमान और लयबद्ध पदवियों की घोषणा की जाती थी तो वे सभा में विस्मय का माहौल बना देती थीं। मुग़ल सिक्कों पर राजसी नयाचार के साथ शासनरत बादशाह की पूरी पदवी होती थी।

योग्य व्यक्तियों को पदवियाँ देना मुग़ल राज्यतंत्र का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था। दरबारी पदानुक्रम में किसी व्यक्ति की उन्नति को उसके द्वारा धारण की जानेवाली पदवियों से जाना जा सकता था। उच्चतम मंत्रियों में से एक को दी जाने वाली आसफ ख़ाँ की पदवी का उद्भव पैगम्बर शासक सुलेमान के कल्पित मंत्री से हुआ था। औरगज़ेब ने अपने दो उच्च पदस्थ अभिजातों जयसिंह और जसवंत सिंह को मिर्ज़ा राजा की पदवी प्रदान की। पदवियाँ या तो अर्जित की जा सकती थीं अथवा इन्हें पाने के लिए पैसे दिए जा सकते थे। मीर ख़ान ने अपने नाम में अलिफ़ अर्थात 'अ' अक्षर लगाकर उसे अमीर ख़ान करने के लिए औरंगज़ेब को एक लाख रुपए देने का प्रस्ताव किया।

अन्य पुरस्कारों में सम्मान का जामा (*ख़िल्लत*) भी शामिल था जिसे पहले कभी न कभी बादशाह द्वारा पहना गया हुआ होता था। इसलिए यह समझा जाता था कि वह बादशाह के आशीर्वाद का प्रतीक है। *सरप्पा* ('सर से पाँव तक') एक अन्य उपहार था। इस उपहार के तीन हिस्से हुआ करते थे : जामा, पगड़ी और पटका। बादशाह द्वारा अकसर रत्नजड़ित आभूषण भी उपहार के रूप में दिए जाते थे। बहुत ख़ास परिस्थितियों में बादशाह कमल की मंजरियों वाला रत्नजड़ित गहनों का सेट (*पद्‌म मुरस्सा*) भी उपहार में प्रदान करता था।

एक दरबारी बादशाह के पास कभी खाली हाथ नहीं जाता था। वह या तो *नज़्र* के रूप में थोड़ा धन या पेशकश के रूप में मोटी रकम बादशाह को पेश करता था। राजनयिक संबंधों में उपहारों को सम्मान और आदर का प्रतीक माना जाता था। राजदूत प्रतिद्वंद्वी राजनीतिक शक्तियों के बीच संधि और संबंधों के ज़रिए समझौता करवाने के महत्त्वपूर्ण कार्य का संपादन करते थे। ऐसी परिस्थितियों में उपहारों की महत्त्वपूर्ण प्रतीकात्मक भूमिका होती थी। टॉमस रो को इस बात से बहुत निराशा हुई थी कि उसने आसफ ख़ाँ को जो अँगूठी भेंट की थी, वह उसे केवल इसलिए वापस कर दी गई कि वह क्यों मात्र चार सौ रुपए मूल्य की थी।

चित्र 9.12
पगड़ी रखने के काम आने वाला एक मुग़लकालीन डिब्बा

➲ **चर्चा कीजिए...**

क्या मुग़लों से जुड़े कुछ रिवाजों और व्यवहारों का अनुपालन आज के राजनेता करते हैं?

7. शाही परिवार

'हरम' शब्द का प्रयोग प्रायः मुग़लों की घरेलू दुनिया की ओर संकेत करने के लिए होता है। यह शब्द फ़ारसी से निकला है जिसका तात्पर्य है 'पवित्र स्थान'। मुग़ल परिवार में बादशाह की पत्नियाँ और उपपत्नियाँ, उसके नज़दीकी और दूर के रिश्तेदार (माता, सौतेली व उपमाताएँ, बहन, पुत्री, बहू, चाची-मौसी, बच्चे आदि) व महिला परिचारिकाएँ तथा गुलाम होते थे। बहुविवाह प्रथा भारतीय उपमहाद्वीप में विशेषकर शासक वर्गों में व्यापक रूप से प्रचलित थी।

राजपूत कुलों एवं मुग़लों, दोनों के लिए विवाह राजनीतिक संबंध बनाने व मैत्री-संबंध स्थापित करने का एक तरीका थे। विवाह में पुत्री को भेंटस्वरूप दिए जाने के साथ प्रायः एक क्षेत्र भी उपहार में दे दिया जाता था। इससे विभिन्न शासक वर्गों के बीच पदानुक्रमिक संबंधों की निरंतरता सुनिश्चित हो जाती थी। इस तरह के विवाह और उनके फलस्वरूप विकसित संबंधों के कारण ही मुग़ल बंधुता के एक व्यापक तंत्र का निर्माण कर सके। इससे वे महत्त्वपूर्ण वर्गों से जुड़े और उन्हें एक बृहद साम्राज्य को इकट्ठा रखने में मदद मिली।

मुग़ल परिवार में शाही परिवारों से आने वाली स्त्रियों (*बेगमों*) और अन्य स्त्रियों (*अगहा*), जिनका जन्म कुलीन परिवार में नहीं हुआ था, में अंतर रखा जाता था। दहेज (*मेहर*) के रूप में अच्छा-ख़ासा नकद और बहुमूल्य वस्तुएँ लेने के बाद विवाह करके आई बेगमों को अपने पतियों से स्वाभाविक रूप से *अगहाओं* की तुलना में अधिक ऊँचा दर्जा और सम्मान मिलता था। राजतंत्र से जुड़े महिलाओं के पदानुक्रम में उपत्नियों (*अगाचा*) की स्थिति सबसे निम्न थी। इन सभी को नकद मासिक भत्ता तथा अपने-अपने दर्जे के हिसाब से उपहार मिलते थे। वंश आधारित पारिवारिक ढाँचा पूरी तरह स्थायी नहीं था। यदि पति की इच्छा हो और उसके पास पहले से ही चार पत्नियाँ न हों तो अगहा और अगाचा भी बेगम की स्थिति पा सकती थीं। प्रेम तथा मातृत्व ऐसी स्त्रियों को विधिसम्मत विवाहित पत्नियों के दर्जे तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

चित्र 9.13
फतेहपुर सीकरी में आंतरिक कमरों का एक हिस्सा।

पत्नियों के अतिरिक्त मुग़ल परिवार में अनेक महिला तथा पुरुष गुलाम होते थे। वे साधारण से साधारण कार्य से लेकर कौशल, निपुणता तथा बुद्धिमता के अलग-अलग कार्यों का संपादन करते थे। गुलाम हिजड़े (*ख़्वाजासर*) परिवार के अंदर और बाहर के जीवन में रक्षक, नौकर और व्यापार में दिलचस्पी लेने वाली महिलाओं के एजेंट होते थे।

नूरजहाँ के बाद मुग़ल रानियों और राजकुमारियों ने महत्त्वपूर्ण वित्तीय स्रोतों पर नियंत्रण रखना शुरू कर दिया। शाहजहाँ की पुत्रियों, जहाँआरा

और रोशनआरा, को ऊँचे शाही मनसबदारों के समान वार्षिक आय होती थी। इसके अतिरिक्त जहाँआरा को सूरत के बंदरगाह नगर जो कि विदेशी व्यापार का एक लाभप्रद केंद्र था, से राजस्व प्राप्त होता था।

संसाधनों पर नियंत्रण ने मुग़ल परिवार की महत्त्वपूर्ण स्त्रियों को इमारतों व बागों के निर्माण का अधिकार दे दिया। जहाँआरा ने शाहजहाँ की नयी राजधानी शाहजहाँनाबाद (दिल्ली) की कई वास्तुकलात्मक परियोजनाओं में हिस्सा लिया। इनमें से आँगन व बाग के साथ एक दोमंजिली भव्य कारवाँसराय थी। शाहजहाँनाबाद के हृदय स्थल चाँदनी चौक की रूपरेखा जहाँआरा द्वारा बनाई गई थी।

➲ इस चित्र के प्रत्येक हिस्से में जिन गतिविधियों का चित्रण कलाकार ने किया है उसका वर्णन कीजिए। अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा संपादित किए जा रहे कार्यों के आधार पर आप इस दृश्य के शाही प्रतिष्ठान के सदस्यों को पहचानने की कोशिश कीजिए।

गुलबदन बेगम द्वारा लिखी गई एक रोचक पुस्तक *हुमायूँनामा* से हमें मुग़लों की घरेलू दुनिया की एक झलक मिलती है। गुलबदन बेगम बाबर की पुत्री, हूमायूँ की बहन तथा अकबर की चाची थी। गुलबदन स्वयं तुर्की तथा फ़ारसी में धाराप्रवाह लिख सकती थी। जब अकबर ने अबुल फज़्ल को अपने शासन का इतिहास लिखने के लिए नियुक्त किया तो उसने अपनी चाची से बाबर और हुमायूँ के समय के अपने पहले संस्मरणों को लिपिबद्ध करने का आग्रह किया ताकि अबुल फज़्ल उनका लाभ उठाकर अपनी कृति को पूरा कर सके।

गुलबदन ने जो लिखा वह मुग़ल बादशाहों की प्रशस्ति नहीं थी बल्कि उसने राजाओं और राजकुमारों के बीच चलने वाले संघर्षों और तनावों के साथ ही इनमें से कुछ संघर्षों को सुलझाने में परिवार की उम्रदराज़ स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं के बारे में विस्तार से लिखा।

8. शाही नौकरशाही

8.1 भर्ती की प्रक्रिया तथा पद

मुग़ल इतिहास विशेषकर *अकबरनामा* ने साम्राज्य की ऐसी कल्पना दी जिसमें क्रिया और सत्ता लगभग पूरी तरह से एकमात्र बादशाह में निहित

चित्र 9.14
फतेहपुर सीकरी में शहज़ादे सलीम का जन्म, अकबरनामा, रामदास द्वारा चित्रित

होती है जबकि शेष राज्य को बादशाह के आदेशों का अनुपालन करते हुए प्रदर्शित किया गया है। किंतु मुग़ल राज्य-तंत्र के बारे में इन इतिहासों से प्राप्त समृद्ध जानकारी को हम ध्यान से देखें तो हम उन तरीकों को समझ सकते हैं जिनसे कई भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्थाओं पर आधारित शाही संगठन प्रभावशाली ढंग से कार्य करने में सक्षम हुआ। मुग़ल राज्य का एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ इसके अधिकारियों का दल था जिसे इतिहासकार सामूहिक रूप से अभिजात-वर्ग भी कहते हैं।

अभिजात-वर्ग में भर्ती विभिन्न नृ-जातीय तथा धार्मिक समूहों से होती थी। इससे यह सुनिश्चित हो जाता था कि कोई भी दल इतना बड़ा न हो कि वह राज्य की सत्ता को चुनौती दे सके। मुग़लों के अधिकारी-वर्ग को गुलदस्ते के रूप में वर्णित किया जाता था जो वफ़ादारी से बादशाह के साथ जुड़े हुए थे। साम्राज्य के निर्माण के आरंभिक चरण से ही तूरानी और ईरानी अभिजात अकबर की शाही सेवा में उपस्थित थे। इनमें से कुछ हुमायूँ के साथ भारत चले आए थे। कुछ अन्य बाद में मुग़ल दरबार में आए थे।

1560 से आगे भारतीय मूल के दो शासकीय समूहों–राजपूतों व भारतीय मुसलमानों (शेखज़ादाओं) ने शाही सेवा में प्रवेश किया। इनमें नियुक्त होने वाला प्रथम व्यक्ति एक राजपूत मुखिया अंबेर का राजा भारमल कछवाहा था जिसकी पुत्री से अकबर का विवाह हुआ था। शिक्षा

मुग़ल अभिजात-वर्ग

चंद्रभान ब्राह्मण ने शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान लिखी अपनी पुस्तक *चार चमन* (चार बाग़) में मुग़ल अभिजात-वर्ग का इस प्रकार वर्णन किया है:

> विभिन्न जातियों (अरब, ईरानी, तुर्की, ताजिक, कुर्द, ततार, रूसी, अबिसीनियाई इत्यादि) और देशों (तुर्की, मिस्र, सीरिया, इराक, अरब, ईरान, खुरासान, तूरान) के लोगों, वस्तुत: सभी समाजों से विभिन्न समूहों और श्रेणियों के लोगों को शाही दरबार में आश्रय प्राप्त हुआ। भारत से विभिन्न समूहों, ज्ञान और शिल्प में निपुण व्यक्तियों के साथ-साथ योद्धाओं, उदाहरण के लिए बुखारी और भक्करी, विशुद्ध वंशों के सैय्यद, अभिजात वंश के शेखज़ादा, लोधी, रोहिल्ला, युसुफज़ई जैसी अफ़गान जनजातियों, राणा, राजा, राव व रायाँ अर्थात, राठौर, सिसोदिया, कछवाहा, हाड़, गौड़, चौहान, पँवार, भादुरिया, सोलंकी, बुंदेला, शेखावत नाम से संबोधित की जाने वाली राजपूत जातियों व घक्कर, खोकर, बलूची और अन्य सभी भारतीय जनजातियाँ जो तलवार चलाती थीं व 100 से 7000 ज़ात के मनसब, घास के मैदानों और पर्वतीय भागों से भू-स्वामी, कर्नाटक, बंगाल, असम, उदयपुर, श्रीनगर, कुमायूँ, तिब्बत व किश्तवाड़ इत्यादि क्षेत्रों से सभी जनजातियों और समूहों को शाही दरबार को चूमने (में आने) अथवा रोज़गार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

और लेखाशास्त्र की ओर झुकाव वाले हिंदू जातियों के सदस्यों को भी पदोन्नत किया जाता था। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण अकबर के वित्तमंत्री टोडरमल का है जो खत्री जाति का था।

जहाँगीर के शासन में ईरानियों को उच्च पद प्राप्त हुए। जहाँगीर की राजनीतिक रूप से प्रभावशाली रानी नूरजहाँ (1645) ईरानी थी। औरंगज़ेब ने राजपूतों को उच्च पदों पर नियुक्त किया। फिर भी शासन में अधिकारियों के समूह में मराठे अच्छी खासी संख्या में थे।

सभी सरकारी अधिकारियों के दर्जे और पदों में दो तरह के संख्या-विषयक ओहदे होते थे : 'ज़ात' शाही पदानुक्रम में अधिकारी (*मनसबदार*) के पद और वेतन का सूचक था और 'सवार' यह सूचित करता था कि उससे सेवा में कितने घुड़सवार रखना अपेक्षित था। सत्रहवीं शताब्दी में 1,000 या उससे ऊपर ज़ात वाले मनसबदार अभिजात (*उमरा* जो कि *अमीर* का बहुवचन है) कहे गए।

सैन्य अभियानों में ये अभिजात अपनी सेनाओं के साथ भाग लेते थे तथा प्रांतों में वे साम्राज्य के अधिकारियों के रूप में भी कार्य करते थे। प्रत्येक सैन्य कमांडर घुड़सवारों को भर्ती करता था, उन्हें हथियारों आदि से लैस करता था और उन्हें प्रशिक्षण देता था। घुड़सवारी फ़ौज मुग़ल फ़ौज का अपरिहार्य अंग थी। घुड़सवार सिपाही शाही निशान से पार्श्वभाग में दागे गए उत्कृष्ट श्रेणी के घोड़े रखते थे। निम्नतम ओहदों के अधिकारियों को छोड़कर बादशाह स्वयं सभी अधिकारियों के ओहदों, पदवियों और अधिकारिक नियुक्तियों के बदलाव का पुनरीक्षण करता था। मनसब प्रथा की शुरुआत करने वाले अकबर ने अपने अभिजात-वर्ग के कुछ लोगों को शिष्य (*मुरीद*) की तरह मानते हुए उनके साथ आध्यात्मिक रिश्ते भी कायम किए।

अभिजात-वर्ग के सदस्यों के लिए शाही सेवा शक्ति, धन तथा उच्चतम प्रतिष्ठा प्राप्त करने का एक ज़रिया थी। सेवा में आने का इच्छुक व्यक्ति एक अभिजात के ज़रिए याचिका देता था जो बादशाह के सामने तजवीज़ प्रस्तुत करता था। अगर याचिकाकर्ता को सुयोग्य माना जाता था तो उसे मनसब प्रदान किया जाता था। मीरबख़्शी (उच्चतम वेतनदाता) खुले दरबार में बादशाह के दाएँ ओर खड़ा होता था तथा नियुक्ति और पदोन्नति के सभी उम्मीदवारों को प्रस्तुत करता था जबकि उसका कार्यालय उसकी मुहर व हस्ताक्षर के साथ-साथ बादशाह की मुहर व हस्ताक्षर वाले आदेश तैयार करता था। केंद्र में दो अन्य महत्त्वपूर्ण मंत्री थे : *दीवान-ए-आला* (वित्तमंत्री) और *सद्र-उस-सुदुर* (*मदद-ए-माश* अथवा अनुदान का मंत्री और स्थानीय न्यायाधीशों अथवा काज़ियों की नियुक्ति का प्रभारी)। ये तीनों मंत्री कभी-कभी इकट्ठे एक सलाहकार निकाय के रूप में काम करते थे लेकिन ये एक दूसरे से

स्रोत 3

दरबार में अभिजात

अकबर के दरबार में ठहरा हुआ जेसुइट पादरी फादर एंटोनियो मान्सेरेट उल्लेख करता है :

> सत्ता के बेधड़क उपयोग से उच्च अभिजातों को रोकने के लिए राजा उन्हें दरबार में बुलाता है और निरंकुश आदेश देता है जैसे कि वे उसके दास हों। इन आदेशों का पालन उन अभिजातों के उच्च ओहदे और हैसियत से मेल नहीं खाता था।

➲ फादर मान्सेरेट की टिप्पणी मुग़ल बादशाह व उनके अधिकारियों के बीच संबंध के बारे में क्या संकेत देती है?

तजवीज़ एक अभिजात द्वारा बादशाह के सामने प्रस्तुत की जाने वाली ऐसी याचिका थी जिसमें किसी उम्मीदवार को मनसबदार के रूप में नियुक्त करने की सिफ़ारिश की जाती थी।

स्वतंत्र होते थे। अकबर ने इन तथा अन्य सलाहकारों के साथ मिलकर साम्राज्य की प्रशासनिक, राजकोषीय व मौद्रिक संस्थाओं को आकार प्रदान किया।

दरबार में नियुक्त (*तैनात-ए-रकाब*) अभिजातों का एक ऐसा सुरक्षित दल था जिसे किसी भी प्रांत या सैन्य अभियान में प्रतिनियुक्त किया जा सकता था। वे प्रतिदिन दो बार सुबह व शाम को सार्वजनिक सभा-भवन में बादशाह के प्रति आत्मनिवेदन करने के कर्तव्य से बँधे थे। दिन-रात बादशाह और उसके घराने की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी भी वे उठाते थे।

8.2 सूचना तथा साम्राज्य

सटीक और विस्तृत आलेख तैयार करना मुग़ल प्रशासन के लिए मुख्य रूप से महत्त्वपूर्ण था। मीर बख़्शी दरबारी लेखकों (वाकिया नवीस) के समूह का निरीक्षण करता था। ये लेखक ही दरबार में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी अर्ज़ियों व दस्तावेज़ों तथा सभी शासकीय आदेशों (*फ़रमान*) का आलेख तैयार करते थे। इसके अतिरिक्त अभिजातों और क्षेत्रीय शासकों के प्रतिनिधि (वकील) दरबार की बैठकों (*पहर*) की तिथि और समय के साथ "उच्च दरबार से समाचार" (*अख़बारात-ए-दरबार-ए-मुअल्ला*) शीर्षक के अंतर्गत दरबार की सभी कार्यवाहियों का विवरण तैयार करते थे। अख़बारात में हर तरह की सूचनाएँ होती हैं जैसे दरबार में उपस्थिति, पदों और पदवियों का दान, राजनयिक शिष्टमंडलों, ग्रहण किए गए उपहारों अथवा किसी अधिकारी के स्वास्थ्य के विषय में बादशाह द्वारा की गई पूछताछ। राजाओं और अभिजातों के सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन का इतिहास लिखने के लिए यह सूचनाएँ बहुत उपयोगी होती हैं।

समाचार वृत्तांत और महत्त्वपूर्ण शासकीय दस्तावेज़ शाही डाक के ज़रिए मुग़ल शासन के अधीन क्षेत्रों में एक छोर से दूसरे छोर तक जाते थे। बाँस के डिब्बों में लपेटकर रखे कागज़ों को लेकर हरकारों (*कसीद* अथवा *पथमार*) के दल दिन-रात दौड़ते रहते थे। काफ़ी दूर स्थित प्रांतीय राजधानियों से भी वृत्तांत बादशाह को कुछ ही दिनों में मिल जाया करते थे। राजधानी से बाहर तैनात अभिजातों के प्रतिनिधि अथवा राजपूत राजकुमार तथा अधीनस्थ शासक बड़े मनोयोग से इन उद्घोषणाओं की नकल तैयार करते थे व संदेशवाहकों के ज़रिए अपनी टिप्पणियाँ अपने स्वामियों के पास भेज देते थे। सार्वजनिक समाचार के लिए पूरा साम्राज्य आश्चर्यजनक रूप से तीव्र सूचना तंत्र से जुड़ा हुआ था।

8.3 केंद्र से परे : प्रांतीय प्रशासन

केंद्र में स्थापित कार्यों के विभाजन को प्रांतों (*सूबों*) में दुहराया गया था। यहाँ भी केंद्र के समान मंत्रियों के अनुरूप अधीनस्थ (*दीवान*, *बख़्शी* और *सद्र*) होते थे। प्रांतीय शासन का प्रमुख गवर्नर (*सूबेदार*) होता था जो सीधा बादशाह को प्रतिवेदन प्रस्तुत करता था।

प्रत्येक *सूबा* कई *सरकारों* में बँटा हुआ था। अकसर सरकार की सीमाएँ फ़ौजदारों के नीचे आने वाले क्षेत्रों की सीमाओं से मेल खाती थीं। इन इलाकों में फ़ौजदारों को विशाल घुड़सवार फ़ौज और तोपचियों के साथ रखा जाता था। *परगना* (उप-ज़िला) स्तर पर स्थानीय प्रशासन की देख-रेख तीन अर्ध-वंशानुगत अधिकारियों, कानूनगो (राजस्व आलेख का रखवाला), चौधरी (राजस्व संग्रह का प्रभारी) और काज़ी द्वारा की जाती थी।

शासन के प्रत्येक विभाग के पास लिपिकों का एक बड़ा सहायक समूह, लेखाकार, लेखा-परीक्षक, संदेशवाहक और अन्य कर्मचारी होते थे जो तकनीकी रूप से दक्ष अधिकारी थे। ये मानकीकृत नियमों और प्रक्रियाओं के अनुसार कार्य करते तथा प्रचुर संख्या में लिखित आदेश व वृत्तांत तैयार करते थे। सर्वत्र फ़ारसी को शासन की भाषा बना दिया गया लेकिन ग्राम-लेखा के लिए स्थानीय भाषाओं का प्रयोग होता था।

मुग़ल इतिहासकारों ने प्रायः बादशाह और उसके दरबार को ग्राम स्तर तक के संपूर्ण प्रशासनिक तंत्र का नियंत्रण करते हुए प्रदर्शित किया है। पर जैसा कि आपने देखा (अध्याय 8), इस प्रक्रिया का तनावमुक्त रहना असंभव सा ही था। स्थानीय ज़मींदारों और मुग़ल साम्राज्य के प्रतिनिधियों के बीच के संबंध कई बार संसाधनों और सत्ता के बँटवारों को लेकर संघर्ष का रूप ले लेते थे। ज़मींदार प्रायः राज्य के खिलाफ़ किसानों का समर्थन संघटित करने में सफल हो जाते थे।

➲ चर्चा कीजिए...

अध्याय 8 का अनुभाग 2 पुनः पढ़िए। गाँवों में बादशाह की उपस्थिति को किस हद तक महसूस किया गया होगा, इस पर चर्चा कीजिए।

9. सीमाओं के परे

इतिवृत्तों के लेखकों ने मुग़ल बादशाहों द्वारा धारण की गई कई गुंजायमान पदवियों को सूचीबद्ध किया है। इनके अंतर्गत शहंशाह (राजाओं का राजा) जैसी सामान्य पदवियाँ अथवा जहाँगीर (विश्व पर कब्ज़ा करने वाला), अथवा शाहजहाँ (विश्व का राजा) जैसे अलग-अलग राजाओं द्वारा अपनाई गई ख़ास उपाधियाँ शामिल थीं। मुग़ल बादशाहों के अविजित क्षेत्रीय व राजनीतिक नियंत्रण के दावों को दुहराने के लिए इतिहासकार प्रायः इन पदवियों और उनके अर्थों का हवाला देते थे। लेकिन यही समसामयिक इतिहास पड़ोसी राजनीतिक शक्तियों के साथ राजनयिक रिश्तों और संघर्ष का विवरण देते हैं जिसमें प्रतिस्पर्धी क्षेत्रीय हितों की वजह से कुछ तनाव और राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का पता चलता है।

चित्र 9.15
कंधार की घेराबंदी

9.1 सफ़ावी और कंधार

मुग़ल राजाओं तथा ईरान व तूरान के पड़ोसी देशों के राजनीतिक व राजनयिक रिश्ते अफ़गानिस्तान को ईरान व मध्य एशिया के क्षेत्रों से पृथक करने वाले हिंदूकुश पर्वतों द्वारा निर्धारित सीमा के नियंत्रण पर निर्भर करते थे। भारतीय उपमहाद्वीप में आने को इच्छुक सभी विजेताओं को उत्तर भारत तक पहुँचने के लिए हिंदूकुश को पार करना होता था। मुग़ल नीति का यह निरंतर प्रयास रहा कि सामरिक महत्त्व की चौकियों विशेषकर काबुल व कंधार पर नियंत्रण के द्वारा इस संभावित खतरे से बचाव किया जा सके।

कंधार सफ़ावियों और मुग़लों के बीच झगड़े की जड़ था। यह किला-नगर आरंभ में हुमायूँ के अधिकार में था जिसे 1595 में अकबर द्वारा पुनः जीत लिया गया। यद्यपि सफ़ावी दरबार ने मुग़लों के साथ अपने राजनयिक संबंध बनाए रखे तथापि कंधार पर यह दावा करता रहा। 1613 में जहाँगीर ने शाह

चित्र 9.16
जहाँगीर का स्वप्न
इस लघुचित्र के अभिलेख से पता चलता है कि जहाँगीर ने हाल ही में देखे गए एक स्वप्न को अबुल हसन से चित्र में उतारने के लिए कहा। अबुल हसन ने इस दृश्य में दो शासकों- जहाँगीर व सफ़ावी शाह अब्बास को मित्रवत् गले लगाते हुए प्रदर्शित करते हुए चित्र बनाया। दोनों ही राजाओं का चित्रण उनकी पारंपरिक पोशाकों में किया गया है। शाह की आकृति 1613 में मुग़ल राजदूत वर्ग के साथ ईरान गए बिशनदास द्वारा बनाए गए चित्रों पर आधारित है। इससे इस दृश्य को, जोकि काल्पनिक है क्योंकि दोनों शासक कभी आपस में नहीं मिले, एक तरीके की प्रामाणिकता मिली।

चित्र को ध्यान से देखिए। जहाँगीर और शाह अब्बास के संबंध को किस तरह दर्शाया गया है? इनके शरीर की बनावट तथा हाव-भाव की तुलना कीजिए। जानवरों का क्या अभिप्राय है? चित्र में मानचित्र क्या सूचित करता है?

अब्बास के दरबार में कंधार को मुग़ल अधिकार में रहने देने की वकालत करने के लिए एक राजनयिक दूत भेजा लेकिन यह शिष्टमंडल अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। 1622 की शीत ऋतु में एक फ़ारसी सेना ने कंधार पर घेरा डाल दिया। मुग़ल रक्षक सेना पूरी तरह से तैयार नहीं थी। अत: वह पराजित हुई और उसे किला तथा नगर सफ़ावियों को सौंपने पड़े।

9.2 ऑटोमन साम्राज्य : तीर्थयात्रा और व्यापार

ऑटोमन साम्राज्य के साथ मुग़लों ने अपने संबंध इस हिसाब से बनाए कि वे ऑटोमन नियंत्रण वाले क्षेत्रों में व्यापारियों व तीर्थयात्रियों के स्वतंत्र आवागमन को बरकरार रखवा सकें। यह हिजाज़ अर्थात ऑटोमन अरब के उस हिस्से के लिए विशेष रूप से सत्य था जहाँ मक्का और मदीना के महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल स्थित थे। इस क्षेत्र के साथ अपने संबंधों में मुग़ल बादशाह आमतौर पर धर्म एवं वाणिज्य के मुद्दों को मिलाने की कोशिश करता था। वह लाल सागर के बंदरगाह अदन और मोखा को बहुमूल्य वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन देता था और इनकी बिक्री से अर्जित आय को उस इलाके के धर्मस्थलों व फ़कीरों में दान में बाँट देता था। हालाँकि औरंगज़ेब को जब अरब भेजे जाने वाले धन के दुरुपयोग

का पता चला तो उसने भारत में उसके वितरण का समर्थन किया क्योंकि उसका मानना था कि “यह भी वैसा ही ईश्वर का घर है जैसा कि मक्का।”

9.3 मुग़ल दरबार में जेसुइट धर्म प्रचारक

यूरोप को भारत के बारे में जानकारी जेसुइट धर्म प्रचारकों, यात्रियों, व्यापारियों और राजनयिकों के विवरणों से हुई। मुग़ल दरबार के यूरोपीय विवरणों में जेसुइट वृत्तांत सबसे पुराने वृत्तांत हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में भारत तक एक सीधे समुद्री मार्ग की खोज का अनुसरण करते हुए पुर्तगाली व्यापारियों ने तटीय नगरों में व्यापारिक केंद्रों का जाल स्थापित किया। पुर्तगाली राजा भी सोसाइटी ऑफ़ जीसस (जेसुइट) के धर्मप्रचारकों की मदद से ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार में रुचि रखता था। सोलहवीं शताब्दी के दौरान भारत आने वाले जेसुइट शिष्टमंडल व्यापार और साम्राज्य निर्माण की इस प्रक्रिया का हिस्सा थे।

अकबर ईसाई धर्म के विषय में जानने को बहुत उत्सुक था। उसने जेसुइट पादरियों को आमंत्रित करने के लिए एक दूतमंडल गोवा भेजा। पहला जेसुइट शिष्टमंडल फतेहपुर सीकरी के मुग़ल दरबार में 1580 में पहुँचा और वह वहाँ लगभग दो वर्ष रहा। इन जेसुइट लोगों ने ईसाई धर्म के विषय में अकबर से बात की और इसके सद्‌गुणों के विषय में उलमा से उनका वाद-विवाद हुआ। लाहौर के मुग़ल दरबार में दो और शिष्टमंडल 1591 और 1595 में भेजे गए।

जेसुइट विवरण व्यक्तिगत प्रेक्षणों पर आधारित हैं और वे बादशाह के चरित्र और सोच पर गहरा प्रकाश डालते हैं। सार्वजनिक सभाओं में जेसुइट लोगों को अकबर के सिंहासन के काफ़ी नज़दीक स्थान दिया जाता था। वे उसके साथ अभियानों में जाते, उसके बच्चों को शिक्षा देते तथा उसके फुरसत के समय में वे अकसर उसके साथ होते थे। जेसुइट विवरण मुग़लकाल के राज्य अधिकारियों और सामान्य जन-जीवन के बारे में फारसी इतिहासों में दी गई सूचना की पुष्टि करते हैं।

स्रोत 4

बादशाह तक सुलभ पहुँच

पहले जेसुइट शिष्टमंडल का एक सदस्य मान्सेरेट अपने अनुभवों का विवरण लिखते हुए कहता है :

> उससे (अकबर से) भेंट करने की इच्छा रखने वाले लोगों के लिए उसकी पहुँच कितनी सुलभ है इसके बारे में अतिशयोक्ति करना बहुत कठिन है। लगभग प्रत्येक दिन वह ऐसा अवसर निकालता है कि कोई भी आम आदमी अथवा अभिजात उससे मिल सके और बातचीत कर सके। उससे जो भी बात करने आता है उन सभी के प्रति कठोर न होकर वह स्वयं को मधुरभाषी और मिलनसार दिखाने का प्रयास करता है। उसे उसकी प्रजा के दिलो-दिमाग से जोड़ने में इस शिष्टाचार और भद्रता का बड़ा असाधारण प्रभाव है।

➲ स्रोत 2 के साथ इस विवरण की तुलना कीजिए।

➲ **चर्चा कीजिए...**

वे कौन-कौन से मुद्दे और सरोकार थे जिन्होंने मुग़ल शासकों के उनके समसामायिकों के साथ संबंधों को निर्धारित किया?

10. औपचारिक धर्म पर प्रश्न उठाना

जेसुइट शिष्टमंडल के सदस्यों के प्रति अकबर ने जो उच्च आदर प्रदर्शित किया उससे वे बहुत प्रभावित हुए। ईसाई धर्म सिद्धांतों में बादशाह की स्पष्ट दिलचस्पी की व्याख्या उन्होंने अपने मत में बादशाह के धर्म-परिवर्तन के संकेत रूप में की। इसे पश्चिमी यूरोप में हावी धार्मिक असहिष्णुता के माहौल के प्रकाश में समझा जा सकता है। मान्सेरेट ने टिप्पणी की कि, "राजा ने इस बात की बहुत कम परवाह की कि सभी को उसके धर्म के अनुपालन की अनुमति देकर उसने वास्तव में सबका तिरस्कार किया।"

धार्मिक ज्ञान के लिए अकबर की तलाश ने फतेहपुर सीकरी के इबादतखाने में विद्वान मुसलमानों, हिंदुओं, जैनों, पारसियों और ईसाइयों के बीच अंतर-धर्मीय वाद-विवादों को जन्म दिया। अकबर के धार्मिक विचार, विभिन्न धर्मों व संप्रदायों के विद्वानों से प्रश्न पूछने और उनके धर्म-सिद्धांतों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने से, परिपक्व हुए। धीरे-धीरे वह धर्मों को समझने के रूढ़िवादी तरीकों से दूर प्रकाश और सूर्य पर केंद्रित दैवीय उपासना के स्व-कल्पित विभिन्नदर्शन ग्राही रूप की ओर बढ़ा। हमने देखा कि अकबर और अबुल फज़्ल ने प्रकाश के दर्शन का सृजन किया और राजा की छवि तथा राज्य की विचारधारा को आकार देने में इसका प्रयोग किया। इसमें दैवीय रूप से प्रेरित व्यक्ति का अपने लोगों पर सर्वोच्च प्रभुत्व तथा अपने शत्रुओं पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

चित्र 9.17
दरबार में धार्मिक वाद-विवाद।
पार्दे रुडोल्फ एक्वाविवा पहले जेसुइट शिष्टमंडल का नेता था। उसका नाम चित्र के ऊपरी भाग पर लिखा है।

हरम में होम

यहाँ अब्दुल कादिर बदायूँनी के *मुन्तख़ाब-उत-तवारीख* से एक अंश दिया गया है। एक धर्मविज्ञानी और दरबारी बदायूँनी अपने नियोक्ता की नीतियों का आलोचक था और अपनी पुस्तक की विषयवस्तु को वह सार्वजनिक नहीं करना चाहता था।

> युवावस्था के आरंभ से ही महामहिम अपनी पत्नियों अर्थात हिंद के राजाओं की पुत्रियों के सम्मान में *हरम* में *होम* का आयोजन कर रहे थे। यह ऐसी धर्मक्रिया है जो अग्नि-पूजा (*आतिश-परस्ती*) से व्युत्पन्न हुई है। परंतु अपने 25वें शासन वर्ष (1578) के नए वर्ष पर उसने सार्वजनिक रूप से सूर्य और अग्नि को दंडवत् प्रणाम किया। शाम को चिराग और मोमबत्तियाँ जलाए जाने पर सारे दरबार को आदरपूर्वक उठना पड़ा।

ये विचार दरबारी इतिहासकारों के परिप्रेक्ष्य से संगति रखते थे। ये इतिहासकार हमें उन प्रक्रियाओं का बोध कराते हैं जिनके द्वारा मुग़ल शासक बड़े प्रभावशाली तरीके से ऐसी विजातीय जनता को एक शाही संरचना के अंतर्गत सम्मिलित कर सके। भौगोलिक विस्तार और राजनीतिक नियंत्रण के व्यापक रूप से ह्रास के बाद भी लगभग डेढ़ शताब्दी तक इस राजवंश का नाम भारतीय उपमहाद्वीप में वैध रहा।

चित्र 9.18
ईरान के प्रवासी कलाकारों द्वारा मुल्तान के मकबरे से लाई गई नीली टाइलें।

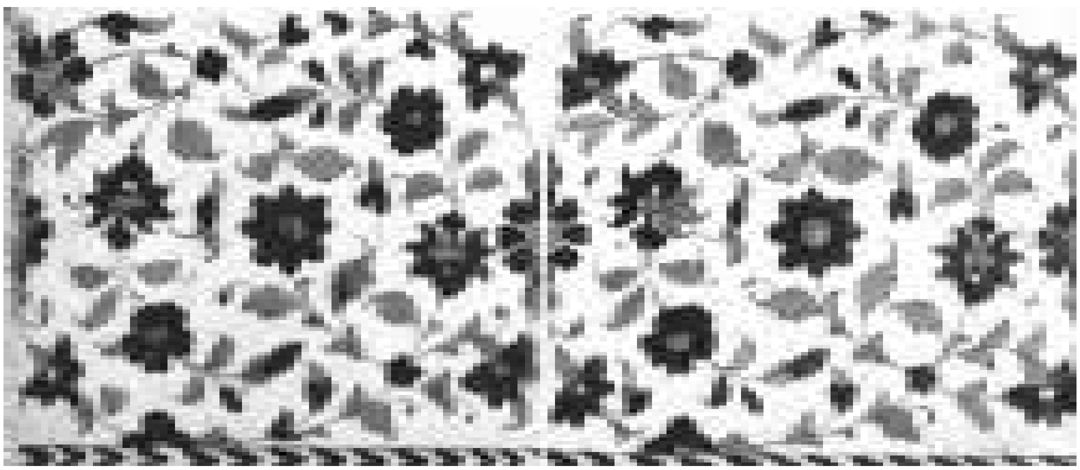

काल-रेखा

कुछ प्रमुख मुग़ल इतिवृत्त तथा संस्मरण

लगभग 1530	बाबर के संस्मरणों की पाण्डुलिपि का तिमूरियों के पारिवारिक संग्रह का हिस्सा बनना। तुर्की भाषा में लिखे गए यह संस्मरण किसी तरह एक तूफ़ान से बचा लिए गए।
लगभग 1587	गुलबदन बेगम द्वारा *हुमायूँनामा* के लेखन की शुरुआत
1589	बाबर के संस्मरणों का *बाबरनामा* के रूप में फ़ारसी में अनुवाद
1589-1602	अबुल फज़्ल द्वारा *अकबरनामा* पर कार्य करना
1605-22	जहाँगीर द्वारा *जहाँगीरनामा* नाम से अपना संस्मरण लिखना
1639-47	लाहौरी द्वारा *बादशाहनामा* के पहले दो *दफ़्तरों* का लेखन
लगभग 1650	मुहम्मद वारिस द्वारा शाहजहाँ के शासन के तीसरे दशक के इतिवृत्त लेखन की शुरुआत
1668	मुहम्मद काज़िम द्वारा औरंगज़ेब के शासन के पहले दस वर्षों के इतिहास का *आलमगीरनामा* के नाम से संकलन

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. मुग़ल दरबार में पांडुलिपि तैयार करने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
2. मुग़ल दरबार से जुड़े दैनिक-कर्म और विशेष उत्सवों के दिनों ने किस तरह से बादशाह की सत्ता के भाव को प्रतिपादित किया होगा?
3. मुग़ल साम्राज्य में शाही परिवार की स्त्रियों द्वारा निभाई गई भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. वे कौन से मुद्दे थे जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर क्षेत्रों के प्रति मुग़ल नीतियों व विचारों को आकार प्रदान किया?
5. मुग़ल प्रांतीय प्रशासन के मुख्य अभिलक्षणों की चर्चा कीजिए। केंद्र किस तरह से प्रांतों पर नियंत्रण रखता था?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों)

6. उदाहरण सहित मुग़ल इतिहासों के विशिष्ट अभिलक्षणों की चर्चा कीजिए।
7. इस अध्याय में दी गई दृश्य-साम्रगी किस हद तक अबुल फज़्ल द्वारा किए गए 'तसवीर' के वर्णन (स्रोत 1) से मेल खाती है?
8. मुग़ल अभिजात वर्ग के विशिष्ट अभिलक्षण क्या थे? बादशाह के साथ उनके संबंध किस तरह बने।
9. राजत्व के मुग़ल आदर्श का निर्माण करने वाले तत्वों की पहचान कीजिए।

चित्र 9.19
कई मुग़ल पांडुलिपियों में चिड़ियों का अंकन हुआ था।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

बैम्बर गैसकोइने, 1971,
दि ग्रेट मुगल्स,
जोनाथन केप लिमिटेड, लंदन

शीरीन मूसवी, 2006 (पुनर्मुद्रित)
एपिसोड्स इन दि लाइफ ऑफ़ अकबर
नेशनल बुक ट्रस्ट,
न्यू दिल्ली

हरबंस मुखिया, 2004
दि मुगल्स ऑफ़ इंडिया, ब्लैकवेल,
ऑक्सफोर्ड

जॉन एफ. रिचर्ड्स, 1996

दि मुग़ल एम्पायर
(दि न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री *ऑफ़* इंडिया,
वोल्यूम-1)
कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

एन्नेमेरी शीमेल, 2005
दि एम्पायर ऑफ़ दि ग्रेट मुगल्स: हिस्ट्री, आर्ट एंड कल्चर,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं।
www.mughalgardens.org

मानचित्र कार्य

10. विश्व मानचित्र के एक रेखाचित्र पर उन क्षेत्रों को अंकित कीजिए जिनसे मुग़लों के राजनीतिक व सांस्कृतिक संबंध थे?

परियोजना (कोई एक)

11. किसी मुग़ल इतिवृत्त के विषय में और जानकारी ढूँढ़िए। इसके लेखक, भाषा, शैली और विषयवस्तु का वर्णन करते हुए एक वृत्तांत तैयार कीजिए। आपके द्वारा चयनित इतिहास की व्याख्या में प्रयुक्त कम-से-कम दो चित्रों का, बादशाह की शक्ति को इंगित करने वाले संकेतों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, वर्णन कीजिए?

12. राज्यपद के आदर्शों, दरबारी रिवाजों और शाही सेवा में भर्ती की विधियों पर ध्यान केंद्रित करते हुए व समानताओं और विभिन्नताओं पर प्रकाश डालते हुए मुग़ल दरबार और प्रशासन की वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था से तुलना कर एक वृत्तांत तैयार कीजिए।

चित्र 9.20
एक पेड़ पर गिलहरियों को दर्शाती एक मुग़ल चित्रकारी

चित्रों के लिए श्रेय

विषय 5

चित्र 5.1: Ritu Topa.

चित्र 5.2 : Henri Stierlin, *The Cultural History of the Arabs,* Aurum Press, London, 1981.

चित्र 5.4, 5.13: FICCI, *Footprints of Enterprise: Indian Business Through the Ages,* Oxford University Press, New Delhi, 1999.

चित्र 5.5: Calcutta Art Gallery, printed in E.B. Havell, *The Art Heritage of India,* D.B. Taraporevala Sons & Co., Bombay, 1964.

चित्र 5.6, 5.7, 5.12: Bamber Gascoigne, *The Great Moghuls*, Jonathan Cape Ltd., London, 1971.

चित्र 5.8, 5.9: Sunil Kumar.

चित्र 5.10: Rosemary Crill, *Indian Ikat Textiles,* Weatherhill, London, 1998.

चित्र 5.11, 5.14: C.A. Bayly (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

विषय 6

चित्र 6.1: Susan L. Huntington, *The Art of Ancient India,* Weatherhill, New York, 1993.

चित्र 6.3, 6.17: Jim Masselos, Jackie Menzies and Pratapaditya Pal, *Dancing to the Flute: Music and Dance in Indian Art,* The Art Gallery of New South Wales, Sydney, Australia, 1997.

चित्र 6.4, 6.5: Benjamin Rowland, *The Art and Architecture of India,* Penguin, Harmondsworth, 1970.

चित्र 6.6: Henri Stierlin, *The Cultural History of the Arabs,* Aurum Press, London, 1981.

चित्र 6.8: http:èkèkwww.us.iis.ac.ukèkview_article.aspèkContentID=104228

चित्र 6.9: http:èkèkwww.thekkepuram.ourfamily.comèkmiskal.htm

चित्र 6.10: http:èkèka bangladesh.comèkbanglapediaèkImagesèkA_0350A.JPG

चित्र 6.11: foziaqazi@kashmirvision.com

चित्र 6.12: Stuart Cary Welch, *Indian Art and Culture 1300-1900,* The Metropolitan Museum of Art, New York, 1985.

चित्र 6.13: Bamber Gascoigne, *The Great Moghuls,* Jonathan Cape Ltd., London, 1971.

चित्र 6.15: CCRT.

चित्र 6.16: C. A. Bayly (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

चित्र 6.18: Ahmad Nabi Khan, *Islamic Architecture in Pakistan,* National Hijra Council, Islamabad, 1990.

विषय 7

चित्र 7.1, 7.11, 7.12, 7.14, 7.15, 7.16, 7.18: Vasundhara Filliozat and George Michell (eds), *The Splendours of Vijayanagara,* Marg Publications, Bombay, 1981.

चित्र 7.2: C.A. Bayly (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

चित्र 7.3: Susan L. Huntington, *The Art of Ancient India,* Weatherhill, New York, 1993.

चित्र 7.4, 7.6, 7.7, 7.20, 7. 23, 7.26, 7.27, 7.32: George Michell, *Architecture and Art of South India,* Cambridge University Press, Cambridge, 1995.

चित्र 7.5, 7.8, 7.9, 7.21 http:èkèkwww.museum.upenn.eduèknewèk researchèkExp_Rese_DiscèkAsiaèkvrpèkHTMLèkVijay_Hist.shtml

चित्र 7.10: Catherine B. Asher and Cynthia Talbot. *India Before Europe,* Cambridge University Press, Cambridge, 2006.

चित्र 7.17, 7.22, 7.24, 7.28, 7.29, 7.30, 7.31, 7.33: George Michell and M.B.Wagoner, *Vijayanagara: Architectural Inventory of the Sacred Centre,* Munshiram Manoharlal, New Delhi.

चित्र 7.25: CCRT.

विषय 8

चित्र 8.1, 8.9: Milo Cleveland Beach and Ebba Koch, *King of the World,* Sackler Gallery, New York, 1997.

चित्र 8.3: India Office Library, printed in C.A. Bailey (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

चित्र 8.4: Harvard University Art Museum, printed in Stuart Cary Welch, *Indian Art and Culture 1300-1900,* The Metropolitan Museum of Art, New York, 1985.

चित्र 8.6, 8.11, 8.12, 8.14: C.A. Bayly (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

चित्र 8.13, 8.15: Bamber Gascoigne, *The Great Moghuls*, Jonathan Cape Ltd., London, 1971.

विषय 9

चित्र 9.1, 9.2, 9.12, 9.13, 9.19: Bamber Gascoigne, *The Great Moghuls,* Jonathan Cape, London, 1971.

चित्र 9.3, 9.4, 9.17: Michael Brand and Glenn D. Lowry, *Akbar's India,* New York, 1986.

चित्र 9.5, 9.15: Amina Okada, *Indian Miniatures of the Mughal Court.*

चित्र 9.6, 9.7: *The Jahangirnama* (tr. Wheeler Thackston)

चित्र 9.8: Photograph Friedrich Huneke.

चित्र 9.9, 9.11 a, b, c : Milo Cleveland Beach and Ebba Koch, *King of the World,* Sackler Gallery, New York, 1997.

चित्र 9.10, 9.16, 9.20: Stuart Carey Welch, *Imperial Mughal Painting,* George Braziller, New York, 1978.

चित्र 9.14: Geeti Sen, *Paintings from the Akbarnama.*

चित्र 9.18: Hermann Forkl et al. (eds), *Die Gärten des Islam.*